प्रकाशिका :
श्रीमती चमेली देवी वैद्या
संचालिका
हरिदास एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमि०

अष्टम संस्करण
मूल्य १२)

मुद्रक :
ओमप्रकाश कानोडिया
ओम प्रिन्टिंग प्रेस,
मथुरा

भूमिका

प्रथम सस्करण से

एक आलङ्कारिक का कथन है—"सत्काव्य यशस्कर, अर्थकर, व्यवहार-ज्ञानदाता और अमङ्गलहर होते हैं। सत्कविता, साध्वी वनिता की भाँति, परम शान्तिदायिनी और हितोपदेशिनी होती है।"

कवि का यह वाक्य सस्कृत के चाहे जिस काव्य की प्रशसा मे निकला हो, पर यह महाराज भर्तृहरि कृत "नीति-शतक" पर पूर्ण रूप से घटित होता है, क्योकि उसके पढ़ने से मनुष्य एक अच्छा नीतिमान हो जाता है और नीतिमान व्यक्ति ही कीर्ति, धन और प्रशसा के अधिकारी होते हैं।

नीति-शतक सचमुच ही एक अपूर्व ग्रन्थ है। हम जब कभी ध्यान के साथ उसका पारायण करने बैठते हैं, तभी ऐसा मालूम होता है, मानो संसार में जो कुछ भी महान् है, जो कुछ भी सुन्दर है और जो कुछ भी नवीन, निरुपम, निर्मल और मनोहर है, वह सब एकत्र सकलन करके, जिस स्थान पर जिसका समावेश करने से उसकी सुन्दरता और निर्मलता और भी बढ़ जा सकती है, वह उसी स्थान पर उसी ढग से बैठाया गया है। "नीति-शतक" मे यद्यपि सौ श्लोक हैं*, किन्तु इन सौ श्लोको मे जो कुछ भी कहा गया है, उसकी तुलना अन्य देशो के सौ नीति-ग्रन्थ भी नही कर सकते।

ससार मे रह कर, जीवन मे जय पाने के लिये, नीतिमान बनने की नितान्त आवश्यकता है। नीति से हम, अकेले होने पर भी, अनन्त सेना को परास्त कर सकते हैं और एक स्थान पर बैठे-बैठे समस्त भूमण्डल पर शासन कर सकने हैं। जो व्यक्ति जितना अच्छा नीतिज्ञ है, वह उतना ही दुर्जय है। साराश यह, कि ससार की जटिल-से-जटिल समस्याओ का निराकरण एक मात्र नीति द्वारा ही हो सकता है। महात्मा शुक्र ने बहुत ही ठीक कहा है, व्याकरण से शब्द और अर्थ का ज्ञान होता है, न्याय और तर्कशास्त्र से जगत के पदार्थो

* इस ग्रन्थ मे ११० श्लोक हैं। 'शतक' के अर्थानुसार तो सौ श्लोक ही होने चाहिए, पर लोक मे, भर्तृहरि के ये ११० ही श्लोक प्रचलित हैं।

का ज्ञान होता है और वेदान्त से ससार की असारता और देह की अनित्यता का ज्ञान होता है, किन्तु लौकिक व्यवहार मे इन शास्त्रो से कुछ भी प्रयोजन नही निकलता । सासारिक कार्य-व्यवहार-निर्वाह करने और सुखपूर्वक जीवन-यापन करने के लिए जिस चीज की आवश्यकता है, वह "नीतिशास्त्र" है । इस शास्त्र का ज्ञान महलो मे रहने वाले राजा से लेकर कुटीर-निवासी क्षुद्र मनुष्य तक के लिए समान भाव से होना जरूरी है । अत कहना चाहिये कि नीति का अपूर्व माहात्म्य है ।

संस्कृत-साहित्य मे प्रधानत शुक्र, भर्तृहरि, विदुर और चाणक्य की नीतियो का विशेष आदर है । उनमे भी पण्डित लोग जितना आदर भर्तृहरि की नीति का करते है, उतना अन्य किसी की नीति का नही । इसी से हमने इसे अपूर्व नीतिग्रन्थ कहा है । अस्तु ।

सन् १९१५ ई० मे हमारे यहाँ से इसी 'नीति-शतक' का अनुवाद छप कर प्रकाशित हुआ था । वह अनुवाद पाण्डेय लोचनप्रसाद शर्मा और पण्डित सखाराम दुबे बी० ए०, बी० एल० ने किया था । अनुवाद सर्वांग सुन्दर होने पर भी कोरा अनुवाद ही था । उसमे बहुत सी कारीगरियो की कमी थी । हमने अनुवादक महाशयो मे से एक से टीका टिप्पणी सहित सुविस्तृत अनुवाद करने के लिए प्रार्थना भी की थी, पर उन्होने किसी वजह से हमारी बात पर ध्यान नही दिया । मजबूरन हमको यह अनुवाद प्रकाशित करना पडा । तभी हमारे दिल मे यह इच्छा पैदा हुई थी कि यद्यपि हम उतने योग्य नही, तथापि हम भी चेष्टा क्यो न करें? किन्तु अवकाश न होने की वजह से, हम उस समय अपनी इच्छा को कार्यरूप मे परिणत न कर सके ।

गत वर्ष हम पर ऐसी भीषण आपत्ति आई, कि हमे इस जीवन मे कुछ भी लिखने की आशा न रही । उस निराशा के समय मे, हमने कोई दो हफ्तो मे "वैराग्य-शतक" का अनुवाद करके प्रकाशित कर दिया । उन दिनो ईर्ष्या-द्वेष का बाजार खूब गरम था । प्राय सभी परिचित, मित्र और नातेदार हमसे नाराज-से हो रहे थे । इसीलिये हमे मनुष्यो से पशुओ का सग और नगर से वन अच्छा लगता था । एक तरह हमें संसार से विरक्ति-सी हो गयी थी । उन

दिनो हम अक्सर "वैराग्य शतक" को पढा करते थे। इसी से हमे उसी के अनुवाद की सूझ गई। यद्यपि मन मे खयाल होता था, कि तुम्हारे जैसे मामूली आदमी का अनुवाद किसी को पसन्द न आयेगा, तुम्हारा ऐसा प्रयास करना बौने के चांद छूने की चेष्टा के समान होगा, पर हमने "अकरणान्मन्द-करण श्रेय" के न्यायानुसार उसमे हाथ लगा ही तो दिया और बुरा-भला जैसा बना, उसे पूरा कर दिया।

यद्यपि आशा नही थी कि हमारे जैसे अयोग्य व्यक्ति का किया अनुवाद कोई पसन्द करेगा, पर हिन्दी के कितने ही समाचार-पत्रो ने उसकी दिल खोल कर प्रशसा की और बिना किसी प्रकार की विज्ञापनवाजी के वह कोई ८-१० मास मे ही हाथो हाथ बिक गया। यह सब क्यो हुआ ? यह अनाथ-नाथ भगवान कृष्णचन्द्र की कृपा के कारण से हुआ। क्योकि अपने किये हुए किसी भी काम को हम अपना किया हुआ नही समझते। हम तो यही समझते हैं— जो कुछ वह कराते है, हम वही करते है।

"वैराग्य-शतक" की भूरि-भूरि प्रशसा होने और पब्लिक के बडी चाह के साथ खरीद लेने से हमारा उत्साह बढा। उधर कदरदान पाठको ने लिखा कि आप "नीति-शतक" और "शृगार-शतक" का भी ऐसा अनुवाद क्यो नही करते ? इससे हमने "नीति-शतक" और शृगार-शतक" का भी अनुवाद कर डाला।

"वैराग्य-शतक" का अनुवाद हमने जिस ढग मे किया था, प्राय उसी ढग से इन दोनो शतको का भी अनुवाद किया है। सच तो यह है, हमने "वैराग्य-शतक" की अपेक्षा "नीति-शतक" मे बहुत ज्यादा परिश्रम किया है। "वैराग्य" मे पहले मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या, व्याख्या के अन्त मे अगरेजी अनुवाद किया है। "नीति-शतक" मे भी यही सब काम किये गये हैं। इतनी विशेषता है कि इसमे मौके-मौके पर पूरव-पश्चिम के अनेक नीतिकारो की नीति भी लिख दी है। यूरोपीय विद्वानो के सैकडो बहुमूल्य वचन, कहावतें और मोटो प्रभृति दी हैं। साथ ही अनेक स्थलो मे हमने अपना अनुभव भी लिखा है। इससे पाठको के चित्त पर और भी जल्दी असर होगा।

मनुष्य-जीवन मे नित्यप्रति काम मे आने वाले बहुत ही कम ऐसे नीति-वाक्य होंगे, जो पुस्तक मे पाठको को न मिलें। हमने इसका नाम "नीति-शतक" रखा है, पर असल मे यह ससार की नीति का सार है। इसी से ४०-५० पृष्ठो मे खतम होने वाला ग्रन्थ कोई ४०० पृष्ठो मे खतम हुआ है।

इस ग्रन्थ के लिखने मे हमे उस्ताद जौक, महाकवि गालिब, महाकवि दाग, गुलिस्ताँ, महाभारत, कुमारसम्भव, किराताऽर्जुनीय, रघुवंश, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र प्रभृति अनेक ग्रन्थो से सहायता लेनी पडी है। उस्ताद जौक और महाकवि दाग प्रभृति से हमे जो कुछ मदद मिली है, उसके लिये हम अपने माननीय मित्र पण्डितवर ज्वालादत्त जी शर्मा, किसरौल, मुरादाबाद के अत्यन्त कृतज्ञ हैं। पण्डित जी की पुस्तको की सामग्री से एक नवीन प्रकार की खूबसूरती आ जाती है, जिसे पब्लिक खूब पसन्द करती है। पण्डित जी की चीज को हम अपनी ही समझते हैं, अत धन्यवाद देने की जरूरत नही। अपने घनिष्ट मित्रो को बारम्बार धन्यवाद देना मैत्री का मूल्य घटाना है।

सबसे अधिक धन्यवाद हम लार्ड चेम्सफोर्ड महोदय, भूतपूर्व वायसराय और मिस्टर गोरले, एम० ए०, सी० आई० ई० आई० सी० एस०, प्राइवेट सेक्रेटरी टु हिज़ एक्सेलेन्सी दी गवर्नर आव बगाल को देते हैं, जिनकी असीम दयालुता और सहानुभूति बिना हम इस ग्रन्थ को लिख ही न सकते थे, क्योंकि उक्त दोनो परम दयालु सज्जन यदि हम पर दयादृष्टि न करते तो "चिकित्सा-चन्द्रोदय" के दो भाग और "वैराग्य-शतक" का अनुवाद ही इस जगत मे हमारे आखिरी ग्रन्थ होते। भगवान् श्रीमान लार्ड चेम्सफोर्ड और मिस्टर गोरले महोदय को शतायु करें और उन्हे अपनी बेशकीमती-से-बेशकीमती न्यामतें बखशें।

आशा है पाठक "वैराग्य-शतक" की तरह हमारे "नीति शतक" के अनुवाद को पसन्द करेंगे। उनकी कृपा रही, तो चन्द रोज मे "शृंगार-शतक" भी सजधज के साथ छपकर उनके कर-कमलो मे पहुचेगा।

विनीत,

कलकत्ता, अगस्त, १९२० ई०

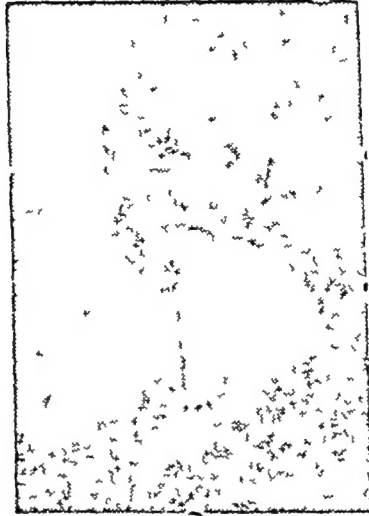
हरिदास

विषय-सूची

चित्र-सूची

महाराजा भर्तृहरि की जीवनी

नीति-शतक



आयुर्वेद पंचानन
बाबू हरिदास वैद्य

महाराजा भर्तृहरि

कहते हैं, कोई दो हजार वर्ष पहले, मध्यभारत के मालवा प्रांत की उज्जयिनी नगरी में, जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं, एक उच्च श्रेणी के विद्वान्, नीति-कुशल, न्यायपरायण, प्रजावत्सल, सर्वगुण-सम्पन्न नृपति राज करते थे। आपका शुभ नाम महाराज भर्तृहरि था। आप अपनी प्रजा को निज सन्तान से भी अधिक चाहते थे और उसी की हित-चिन्तना मे रात-दिन मशगूल रहते थे। आपकी न्यायप्रियता और प्रजा-हितैषिता की चर्चा सारे भारत में फैल गई थी, इसलिये अन्य राज्यों की भी बहुसख्य प्रजा, अपना देश छोड कर, आपके राज्य मे आ कर बस गई थी; इससे उज्जयिनी की शोभा-समृद्धि आजकल के कलकत्ता-बम्बई के समान हो गई थी। राजा के धर्मपरायण होने के कारण प्रजा भी धर्मात्मा थी। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। ठौर-ठौर यज्ञ और हवन होते थे। मेघ समय पर यथेष्ट जल बरसाते थे। मालवा प्रान्त मे लोग अकाल का नाम तक भूले गये थे। राजा-प्रजा के भण्डार सदा धन-धान्य से पूर्ण रहते थे। गरीब दोनों समय पेट भर अन्न खाते थे। प्रजा को किसी बात का दुःख, क्लेश और अभाव नही था। चोरी, जोरी, लूटमार और डकैती एवं अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार प्रभृति का नाम ही उठ गया था। कभी ही कोई ऐसा केस राजदरबार मे आता था। इन जुर्मों के मुजरिमो को महाराज सख्त सजा देते थे। न्याय, नीति और धर्म पर चलने वालो के लिये महाराज जैसे दयालु थे, दुष्ट और अन्यायियों के लिए वैसे ही कठोर थे। सारांश यह कि महाराज को सभी उत्तमोत्तम राजोचित गुण विधाता ने दिये थे। आपके राज्य मे शेर-बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। कोई किसी की ओर आँख उठा कर नही देख सकता था। निर्बल और सबल सभी अपनी-अपनी खाल मे मस्त थे।

'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ न होती थी। सच तो यह है कि मालवा प्रान्त की प्रजा, फिर से रामराज्य का सुख लूटती हुई, हृदय से महाराज की मगल-कामना और उनके दीर्घजीवन के लिए जगदीश से कर जोड प्रार्थना करती थी। उस समय प्रजा को कोई राजभक्ति का पाठ जबर्दस्ती नही पढाता था। सुखी होने के कारण, प्रजा आप ही राजा को पिता की तरह मानती थी और उसमे अचल-अटल भक्ति रखती थी।

महाराज के एक छोटे भाई भी थे। उनका नाम राजकुमार विक्रम था। विक्रम भी बडे भाई की तरह ही विद्वान, न्यायपरायण, धर्मात्मा और राजनीति-कुशल थे। यह राजकुमार विक्रम ही हमारे सुप्रसिद्ध प्रतापशाली महाराजधिराज वीर विक्रमादित्य थे, जिन्होंने भयकर युद्धो में विदेशी आक्रमणकारियो को परास्त कर भारत की रक्षा की और उन्हे इस देश से निकाल बाहर कर, अपने नाम से सम्वत् चलाया, जो आज तक विक्रम-सम्वत् के नाम से पुकारा जाता है। आप ही का चलाया सम्वत् अब तक पचागो, जन्त्रियो और साहूकारो के बही-खातो मे लिखा जाता है। यद्यपि काल की कुटिल गति, जमाने के फेर या देश के दुर्भाग्य से आजकल ईस्वी सन् की तूती बोल रही है, लोग चिट्ठी-पत्रियो, अन्यान्य कागज और दस्तावेजो मे, आपके सवत् को छोड कर, ईस्वी सन् को लिखने की मूर्खता करते हैं, पर बहुत से सज्जन अपनी भूल को सुधार कर, फिर महाराज के सवत् से ही काम लेने लगे है। आशा है, सभी भूले हुए राह पर आ जावेंगे और सवत् के कारण से महाराज का शुभ नाम यावत् चन्द्र-दिवाकर इस लोक मे अमर रहेगा।

महाराज विक्रम के समय मे बौद्ध-धर्म बडे जोरो पर था। ब्राह्मण-धर्म की नींव खोखली हो गई थी। आपने बौद्धो को मार भगाया और ब्राह्मण-धर्म की फिर से स्थापना की। आप अपने जमाने मे भारत के सर्वश्रेष्ठ नृपति समझे जाते थे। प्राय सभी राजे-महाराजे आपको अपना सम्राट या नेता मानते थे। सभी आपके इशारो पर नाचते थे। आप कहने को तो उज्जैन के राजा कहलाते थे, पर आपके राज्य की सीमा बडी लम्बी-चौडी थी। अतुल धन-वैभव और सुविस्तृत राज्य के अधीश्वर होने पर भी, आप मे अभिमान नाम को भी न

था। आप छोटे-बडे सभी से मिलते और बातें करते थे। आप एक चटाई पर सोया करते और पीने के लिए क्षिप्रा नदी से एक तूम्बा जल स्वय अपने हाथो से भर लाते थे। आप आजकल के राजाओ की तरह प्रजा के पैसे से ऐश-आराम नही करते थे। आपका सारा समय प्रजा की भलाई मे ही व्यतीत होता था। आप अधिक-से-अधिक तीन-चार घन्टे सोते थे। रात के समय भेष बदल कर, आप अक्सर शहर मे गश्त लगाया करते थे और इस बात की खोज किया करते थे कि मेरी किस प्रजा को कौन-सा दुःख है। आप जिसे दुःखी देखते थे, उसका दुःख या अभाव किसी-न-किसी तरह अवश्य ही दूर कर देते थे। अनेक मौको पर तो आपने अपनी बेशकीमत जान को खतरे मे डाल कर भी, प्रजा का दुःख दूर किया था। इसी से प्रजा आपको "परदुःख-भजन" कहती थी। भारत मे अब तक हजारो-लाखो राजा-महाराजा हो गए होगे, पर आपके सिवा और किसी को भी यह महामूल्य उपाधि नसीब नही हुई। हाँ, ईरान के खलीफा हारूँ-उल-रशीद के सम्बन्ध मे ऐसी ही बाते सुनी जाती हैं। खलीफा हारूँ रशीद भी महाराज विक्रम की तरह रात को भेष बदल कर घूमा करते और दीन-दुखियो का पता लगाकर, उनके कष्ट-मोचन किया करते थे। इस पृथ्वी पर आज तक न जाने कितने एक-से-एक बढ कर राजा-महाराजा हो गये, जिनकी हुङ्कार से पृथ्वी काँपती थी, जिनके पास असख्य सेना-सामन्त और अतुल धन-भण्डार था, पर आज उनका नाम भी कोई नही लेता। पर ऐसे प्रजावत्सल, परोपकारी, न्यायी और प्रजा-कष्ट-मोचन करने वाले महीपालो का नाम, जब तक पृथ्वी रहेगी, लोगो की जुबान पर रहेगा। इस जगत मे जिनकी कीर्त्ति है, वे मर जाने पर भी अमर हैं। कीर्तिमान मृतक नही समझा जाता। मृतक वही है, जिसकी कीर्त्ति या सुनाम नही है। महाराजा विक्रम, खलीफा हारूँ रशीद, नौशेरवाँ और सम्राट अकबर प्रभृति आज इस नापायेदार दुनिया मे नही हैं, पर उनका सुनाम लोगो की जुबान पर है। अतः वे सशरीर न रहने पर भी अमर हैं। धन्य हैं ऐसे नरपाल! ऐसे भूपालो से ही मही की शोभा है!

हमे यहाँ महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे नही लिखना है। लिखना है महाराजा भर्तृहरि के सम्बन्ध मे। प्रसगवश, हम महाराजा विक्रमादित्य के

विषय मे इतना लिख गये। अब फिर असली मुकाम पर आते हैं। सुनिये, प्रात स्मरणीय महाराजा विक्रम छोटे थे और महाराजा भर्तृहरि, बड़े होने के कारण, राज करते थे। महाराजा विक्रम बड़े भाई के प्रधान मन्त्री का काम करते थे। दोनों भाइयो मे बड़ा प्रेम और सद्भाव था। राम-लक्ष्मण की सी जोड़ी थी। राम, लक्ष्मण को जिस तरह चाहते थे, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि भाई विक्रम को प्यार करते थे। लक्ष्मण, राम मे जैसी श्रद्धा और भक्ति रखते थे, वैसी ही श्रद्धा और भक्ति विक्रमादित्य, महाराजा भर्तृहरि मे रखते थे। दोनों ही दोनो को जी-जान से चाहते थे। बड़े भाई छोटे को निज पुत्रवत् समझते थे और छोटे बड़े को पितृवत् मानते थे। महाराजा भर्तृहरि यद्यपि निरालसी और राज-कार्य-दक्ष थे, तथापि उन्होने राज-काज का विशेष भार विक्रम पर ही छोड़ रखा था। पिता जिस तरह सुपुत्र पर गृहस्थी का सारा भार छोड़ कर एक तरह निश्चिन्त हो जाता है, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि विक्रम पर राज-काज का भार छोड़ कर निश्चिन्त हो गये थे। महाराज विक्रम भी अपनी कुशाग्र बुद्धि और राजनीतिज्ञता से सारे काम सुचारु रूप से चलाते थे और राजकाज की जटिल समस्याओ के सुलझाने मे महाराज के दाहिने हाथ बने हुए थे। प्रजा सब तरह सुखी और प्रसन्न थी। राज मे आनन्द की बाँसुरी बज रही थी, पर परमात्मा की इच्छा या होनहार के कारण, आगे चल कर एक विष-वृक्ष पैदा हो गया। उसने इन दोनो भाइयो मे मनोमालिन्य करा दिया। इतना ही नहीं, दोनो को एक दूसरे से जुदा करा दिया। जिसका लोगो को स्वप्न मे भी खयाल नहीं था, जिसका होना लोग असम्भव समझते थे, वही हुआ। सच है, भावी बड़ी बलवती है, होनी होकर रहती है।

महाराजा भर्तृहरि की दो या तीन शादियाँ हो चुकी थी। फिर भी, आपने किसी देश की अपूर्व रूप-लावण्य-सम्पन्ना, परम सुन्दरी, रतिमानमर्दिनी, मुनि-मन-मोहिनी, अप्सराओ को भी शर्माने वाली एक राजकुमारी से शादी कर ली। नयी महारानी का नाम पिंगला था। महारानी पिंगला के असाधारण रूपवती होने के कारण, महाराज उनके रूप पर ऐसे मोहित हुए कि अपनी विद्या बुद्धि, विवेक और विचार प्रभृति को ताक पर रख कर, उनके हाथो विक-

गये—उनके क्रीत-दास हो गये। ठीक शाहंशाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँ का-सा हाल हुआ। जिस तरह नूरजहाँ के बिना दिल्लीश्वर जहाँगीर को एक क्षण भी कल न पडती थी, उसी तरह महाराज भर्तृहरि को भी महारानी पिंगला बिना चैन नहीं था। जिस तरह जहाँगीर की नकेल नूरजहाँ के हाथो मे थी, उसी तरह महाराज भर्तृहरि की नकेल पिंगला के हाथो मे थी। जिस तरह बादशाह जहाँगीर नूरजहाँ के हाथों की कठपुतली थे, उसी तरह महाराज भर्तृहरि भी पिंगला के हाथो की कठपुतली थे। बादशाह जहाँगीर नाम के बादशाह थे, नूरजहाँ ही बादशाहत की असल संचालिका थी। वह जो चाहती थी सो करती थी; बादशाह सिर्फ दस्तखत और मुहर भर कर देते थे। महाराज भर्तृहरि की भी वही दशा थी। महारानी पिंगला जो चाहती थी, वही महाराज से करा लेती थी। महाराज बिना कुछ सोचे-समझे, बिना आगा-पीछा देखे, आँखें बन्द करके, रानी पिंगला की इच्छानुसार चलते थे। उन दिनों महाराज सच्चे स्त्रैण हो गये थे। रानी पिंगला ने ऐसा जादू कर दिया था, कि महाराज अपने होश-हवाश खो कर पूरी तौर से उनके जर-खरीद गुलाम हो गये थे।

स्त्रैण होना अच्छा नहीं, स्त्री का गुलाम होना उचित नहीं, स्त्री के वश मे होना सर्वनाश का बीज होना है; पर इन मोहनियो के आगे प्राय सभी की सिट्टी गुम हो जाती है। हम महाराज को ही दोषी क्यों ठहरावें, जब कि बड़े-बडे योगीश्वर, मोहनियो के रूप-जाल मे फँस कर, अपनी बुद्धि खो बैठे ? इन योगिजन-मनोहरा कामिनियो ने किसका मन हरण नहीं किया ? इन मोहिनियों की मोहिनी-शक्ति के आगे किसने हार नही मानी ? इनके मोहन-मन्त्र से कौन पागल नही हुआ ? इनकी मोहिनी माया में कौन नही फँसा ? शिव-जैसे परम योगीश्वर, मोहिनी की रूपच्छटा, चटक-मटक और नाज-नखरो पर पागल हो गये। विश्वामित्र जैसे महामुनि, मेनका के रूप-जाल मे फँस कर, अपना तप भंग कर बैठे। मरीचि और शृंगी जैसे महर्षि, इनकी मनोमुग्धकर रूप-माधुरी पर सुध-बुध खोकर, तपस्या छोड बैठे, तब साधारण मनुष्यो की कौन बात है ? बड़े-बडे शूर-वीर, जो जगत को परास्त कर सकते हैं, वे भी इनके सामने कायर हो जाते है। किसी कवि ने कहा है—

व्याकीर्णकेशरकरालमुखा मृगेन्द्रा
नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः ।
मेधाविनश्च पुरुषा समरेषु शूरा.
स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति ॥

गर्दन पर विखरे हुए वालो वाला कराल मुखी सिंह, अत्यन्त मद वाला हाथी और बुद्धिमान समर-शूर पुरुष भी स्त्रियों के आगे परम कायर हो जाते है।

परमात्मा ने भी स्त्रियो के साथ पक्षपात किया है। उसने इन्हें अपूर्व क्षमता प्रदान की है। उसी क्षमता से ये पुरुषो को उसी तरह अपने अधीन कर लेती हैं, जिस तरह मनुष्य, गाय-वैल, घोडे-घोडी प्रभृति पशुओ को अपने अधीन कर लेते हैं। जो काम वडे-वडे धनुर्धारी अपनी वाण-विद्या से सिद्ध नही कर सकते, उसे ये अपने एक कटाक्ष से सिद्ध कर लेती हैं। इनके कटाक्ष-वाणों के लगने से वडे-वडे युद्धो को जीतने वाले, कभी भी हार न खाने वाले योद्धा सुन्न हो जाते हैं—भेड-वकरी की तरह इनके वश मे हो जाते हैं। ये मोहिनी नजरो मे मार लेती हैं, मधुर-मधुर वोलने से चित्त को चुरा लेती हैं, हाव-भाव या नाज-नखरो से हृदय को मोह लेती हैं। मामूली आदमियो का तो जिक्र ही क्या, ये हवा और राख खा कर जिन्दगी वसर करने वाले महात्माओं को भी मोहित कर लेती हैं। इसी से लोग इन्हे मुनि-मन-मोहिनी भी कहते हैं।

स्त्रियाँ आशिक-रूपी हिरनो के वाँधने के लिए मजवूत रस्सी और हृदय-रूपी मदमत्त गजराज को वन्धन में फँसा रखने के लिए जवर्दस्त जजीर हैं। ये अवला होने पर भी सवला हैं, गौ होने पर भी वाघ है; कोमलांगी होने पर भी वज्रांगी हैं और निर्मला होने पर भी कुमला हैं। ये अपने ऊपर अनुरक्त हुए अपने पति या आशिक को अपने वश मे कर लेती हैं। जव वह इनके वश मे हो जाता हैं, तव उसका ज्ञान काफूर हो जाता है। ज्ञान-विहीन अज्ञानी पति, अपनी स्त्री के सामने मूक पशुवत हो जाता है। वह अपनी स्त्री की हॉं-मे-हॉं मिलाता है, उसके कुकर्म देख कर भी नही वोलता, क्योकि स्त्रियाँ अपने चाहने वालो को ऐसा ही वना लेने की सामर्थ्य रखती हैं। किसी ने कहा है,—

अलक्तको यथा रक्तो निष्पीड्य पुरुषस्तथा ।
अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ॥

जिस तरह स्त्रियाँ लाख के रंग को जोर से दबा कर अपने चरणों मे लगाती है, उसी तरह वे अपने अनुरागी या चाहने वालो को अपने चरणो मैं डाल लेती हैं।

पर इन मोहिनियो पर जी-जान से लट्टू होने वालों और इन पर सम्पूर्ण रूप से विश्वास कर लेने वालो और इनकी अन्धभक्ति करने वालो को अन्त मे दुःख पाना, धोखा खाना और पछताना पडता है, इसमे जरा भी शक नही। अत. इनको मध्य अवस्था से सेवन करना चाहिए, क्योंकि यदि पुरुष इनसे दूर रहे, तो फल नही मिलता और एकदम इनका हो ले, तो ये सर्वनाश का कारण हो जाती हैं। सो पुरुष स्त्रैण या स्त्री के गुलाम हो जाते हैं, जो इनको सिर पर चढ़ा लेते हैं, जो इनके ही मत पर चलते हैं, उनको दुःख भोगने पड़ते हैं और ये उन्हे खूब नाच नचाती और स्वयं स्वतन्त्र हो कर मनमाने दुष्कर्म करती हैं। कहा है —

तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरूण्यपि ।
करोति यः कृती लोके लघुत्वं याति सर्वत ॥
नातिप्रसंगः प्रमदासु कार्यो नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम् ।
अतिप्रसक्तैः पुरुषैर्यतास्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः ॥

जो कृती पुरुष स्त्रियो की छोटी-बडी या थोडी-बहुत बातो को मानता है, वह सब तरह से नीचा देखता है।

स्त्रियो से अति प्रसंग न करना चाहिए, क्योकि अति आसक्त हुए पुरुषो से वह पंख-नुचे हुए कोवे के समान खेल करती हैं।

अनुभवी विद्वानो और त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियों ने जो कहा है, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। जो शास्त्रकारो के अमूल्य उपदेशों पर ध्यान नही देते, उन्हे दु,ख के गहरे गड्ढे मे गिर कर कष्ट उठाना ही पड़ता है। हमारे महाराज भर्तृहरि यद्यपि असाधारण विद्वान और बुद्धिमान थे, पर भावी के वश होने के कारण, उन्होने शास्त्रोपदेश पर ध्यान न देकर, महारानी पिंगला को सिर पर

चढ़ा लिया। उसकी प्रत्येक बात मानने और हरेक काम उसकी इच्छानुसार करने लगे। नतीजा यह हुआ कि उसने महाराज को अपने ऊपर पूर्ण रूप से अनुरक्त पा, उनको खेल का पक्षी-सा जान लिया और उन्हें अपनी इच्छानुसार नचाने लगी। साथ ही निर्भय होकर कुकर्म करने पर उतारू हो गई। वह क्या कुकर्म करने लगी, उसका क्या नतीजा हुआ, ये सब बातें पाठकों को आगे चल कर मालूम हो जायँगी। यहाँ हमे यही विचारना है कि महाराज भर्तृहरि जैसे चतुर-चूड़ामणि और विद्वान राजा ने ऐसा मौका क्यों दिया?

पाठक! जैसी भावी होती है, मनुष्य की बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। अगर भावी के अनुसार बुद्धि न हो जाय, तो भावी कैसे हो? दशरथनन्दन महाराज रामचन्द्र तो विष्णु के अवतार माने जाते हैं; वे कुटिया में सीता को छोड़ कर, सोने के हिरन के पीछे तीर-कमान लेकर क्यों भागे? साधारण आदमी भी समझ सकता है कि सोने का हिरन नहीं हो सकता—सुवर्ण मृग का होना असम्भव है। पर भगवान रामचन्द्र जी को इतना भी खयाल न हुआ। हो कैसे? होनी तो कुछ और ही थी। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि रामचन्द्रजी की हो गई। उनके और लक्ष्मण जी के, सीता सूनी छोड़ जाने से, रावण को मौका मिला और वह यति का भेष धर कर सीता को लंका में ले गया। परिणाम मे घोर युद्ध हुआ, रावण मारा गया।

हमारे प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरि की बुद्धि यदि नहीं मारी जाती, वे पिंगला के हाथ की कठपुतली न हो जाते, तो पिंगला को व्यभिचारिणी होने का मौका कैसे मिलता? प्राण-प्यारे भाई विक्रम से वियोग कैसे होता? शेष मे अपनी प्राण-प्रिया के कुकर्म का हाल जान कर महाराज को विरक्ति कैसे होती और वे राजपाट त्याग कर आदर्श योगिराज कैसे होते? कहते हैं, संसार में एक पत्ता भी बिना परमेश्वर की मर्जी के नहीं हिलता। इस जगत में जो कुछ होता है, वह जगदीश की इच्छा से होता है, जगदीश जो चाहते हैं, सो करते हैं। पर जगदीश जो करते हैं वह प्राणी की भलाई के लिए करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जगदीश की इच्छा से ही, कई रानियों के होते हुए भी, महाराज ने पिंगला का पाणि-ग्रहण किया। जगदीश की इच्छा से ही, वह सब विद्या-बुद्धि बिसरा कर,

रानी के क्रीत दास हुए । इससे महाराज का बड़ा उपकार हुआ। ऐसा मेला हुआ, जिसकी तुलना नहीं। उनको संसार से विरक्ति न होती, तो क्या आज उनका नाम इस जगत में अमर रहता है ? उनकी कीर्ति अचल होती ? उन्होने जिस महोच्च पद—परमपद—की प्राप्ति कर ली, उसकी प्राप्ति कर सकते ? हरगिज नही। इसी से कहना पड़ता है कि, महाराज और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनो के आरम्भ मे, परले सिरे के विषयी और स्त्रैण होने से ही उन्हे वैराग्य हुआ। बुराई से भलाई हुई और जो परमात्मा करता है, वह मनुष्य की भलाई के लिए ही करता है, यह बात सत्य प्रमाणित हुई। विष-वृक्ष से अमृत फल की उत्पत्ति हुई। ठीक गोस्वामी तुलसीदास जी की सी घटना घटी। गुसाईंजी को भी स्त्री के ही कारण से वैराग्य हुआ था और हमारे महाराज को भी स्त्री के ही कारण से। हाँ, घटना-क्रम मे थोड़ा अन्तर अवश्य है।

स्त्रियो के स्वभाव की कोई बात समझ मे नही आती। ये अपने व्याहता, सुन्दर, खूबसूरत, नौजवान, बलवान, वीर्यवान, चतुर, काम-कला-कुशल पति को त्याग कर, एक नीच-कुलोत्पन्न, गँवार, बदसूरत, काले-कलूटे, अधेड़ और बूढे पर मरने लगती हैं। ये पुरुषमात्र को भोगने की इच्छा रखती हैं। इन्हे वयस और रूप-कुरूप से कोई मतलब नही। इन्हे न कोई प्यारा है, न कुप्यारा। जिस तरह गाय नई-नई घास पसन्द करती है, उसी तरह ये नित नये पुरुषों को चाहती है। जब तक इन्हे कोई चाहने वाला नही मिलता या मौका हाथ नही आता, तभी तक ये सती बनी रहती है। ये अपने सच्चे प्रेमी को नही चाहतीं, उससे घृणा करती हैं अथवा उदासीन रहती हैं, किन्तु जो इन्हे नही चाहता, जो इनके साथ चालें चलता है, जो परले सिरे का धूर्त और दगाबाज होता है, जो दुर्गुणो की मूर्ति और दुष्टता की खान होता है, उसके लिए ये लालायित रहती हैं।

जो पुरुष स्त्रियो को सद्गुणशालिनी और उत्तम स्वभाव वाली समझते हैं, वे बड़ी गलती करते हैं। ये इतनी चालाक और मायाविनी होती है, कि अच्छे-से-अच्छे चालाक को भी अपने कुकर्मों का पता नही लगने देती। ये किसी की भी बात को जान-बूझ कर पेट मे नही पचा सकती, पर अपनी बात को छिपाना खूब जानती है। जब ये कुकर्मों पर उतर पड़ती हैं, तब इन्हे लोक-लाज, लोक-

निन्दा प्रभृति की परवा नही रहती। दुनिया बुराई करे, करो, माता-पिता, भाई और जेठ-ससुर प्रभृति की नाक-कटाई हो, तो हो—यहाँ तक कि, इनके जीवन मे सन्देह हो जाय, तो हो जाय, पर ये जिस बात को धार लेती हैं, उससे पीछे कदम नही रखती। ये देखने मे पुष्पवत् कोमल दीखती हैं, पर इनका हृदय वज्रवत् कठोर होता है। इनको किसी पर दया-माया नही। इन्हे तो अपनी कुवासना पूरी करने से मतलब। अपनी कुवासना पूरी करने के लिये, ये सब सुखो के देने वाले पति के प्राणनाश कर देती हैं, अपने जेठ-ससुर को मरवा डालती हैं। यहाँ तक कि अपनी पेट की औलाद तक की हत्या पर उतारू हो जाती हैं। कहा है—

आस्ता तावत्किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम्।
विधृत स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्र स्वक क्रुधा॥

स्त्रियो के दौरात्म्य की बात कहाँ तक कहें? ये क्रोध मे आकर अपने पेट के पुत्र को भी मार डालती हैं।

महारानी पिंगला पर महाराज भर्तृहरि जान देते थे, अष्ट पहर चौंसठ घडी उसी का ध्यान रखते थे। महारानी रात को दिन और दिन को रात कहती, तो महाराज भी वैसा ही कहते। हर तरह उसी की आज्ञा पालन करने और हाँ मे हाँ मिलाने को तैयार रहते थे। महाराज मे कोई दोष भी न था। आप पूर्ण विद्वान, बलवान, वीर्यवान और सर्व कला-कुशल पुरुष थे, पर महारानी ऊपर से आपके चाहने का ढोंग करती थी और भीतर से आप से उदासीन रह कर, एक नीच को चाहती थी। महारानी जैसी रूपवती थी, वैसी ही चालाक, मक्कारा और दुश्चरित्रा थी। ऊपर से गोरी और भीतर से काली, प्रत्यक्ष मे सुन्दर और अप्रत्यक्ष मे असुन्दर, प्रकट मे सती और अप्रकट में असती थी। उसने लोक-निन्दा और कुल की कान की परवा न करके, एक नीच नमकहराम, अस्तबल के दरोगा से आशनाई कर ली। यह बात उसने बहुत दिनो तक महाराज से छिपाई। महाराज जब महलो मे आते, तब वह अपने हाव-भाव और नाज-नजरो से महाराज का मन हाथो मे कर लेती। उनसे ऐसी-ऐसी बातें करती, जिनसे महाराज यही समझते, कि मेरी रानी सच्ची सती-साध्वी है। इस जमाने की दूसरी सावित्री

है। पर उनके पीठ फेरते ही वह दरोगा को बुलवा कर, उसके साथ ऐश-आराम करती। महाराज वेचारे इस त्रिया-चरित्र को समझ न सकते थे।

किसी ने ठीक ही कहा है —

नृपस्य चित्त कृपणस्य वित्त मनोरथ दुर्जनमानवानाम्।
स्त्रियश्चरित्र पुरुषस्य भाग्य देवो न जानाति कुतो मनुष्य ॥

राजा के चित्त को, कृपण के धन को, दुष्टो के मनोरथ को, स्त्रियो के चरित्र को और पुरुष के भाग्य को देवता भी नही जानते, मनुष्य कौन चीज है?

बहुत दिनो तक यह कलक-कथा छिपी रही। मनुष्य अपने पापो को कितना ही छिपावे, पर एक-न-एक दिन वे प्रकट हो ही जाते है, एक-न-एक दिन ससार उनको जान ही जाता है। मनुष्य, मनुष्य के गुप्त कामो को नही देख सकता; मनुष्य, मनुष्य के दिल का हाल नही जान सकता, पर परमात्मा से कुछ नहीं छिपता। उसकी नजर हर जगह पहुँचती है। वह सात कोटो के अन्दर भी मनुष्य के कुकर्मों को देख लेता है। वह घट-घट निवासी अन्तर्यामी, मनुष्य मात्र के हृदय के भीतर की बात को जानता है। जब तक उसकी इच्छा नही होती, मनुष्य के कुकर्म छिपे रहते है, उसकी इच्छा होते ही उन्हें जगत जान जाता है। मनुष्य, मनुष्य की आंखो मे धूल झोक सकता है, पर परमात्मा की आँखो मे धूल नही झोक सकता। जब तक समय नही आया, महारानी की पाप-लीला छिपी रही। समय आते ही, पहले-पहल वह गुप्त रहस्य राजकुमार विक्रम को मालूम हुआ। महारानी के कुकर्म की बात उनके कानो तक पहुँच गई। हाँ, महाराज अँधेरे ही मे रहे।

भौजाई के पर-पुरुष रता होने की बात से राजकुमार विक्रम को असह्य मनोवेदना हुई। उनका खाना-पीना, सोना-बैठना सब छूट गया। सोते-जागते हरदम वही खयाल उनके नेत्रो के सामने चक्कर लगाने लगा। अपने सुप्रसिद्ध उच्च कुल मे दाग लगने और पूज्य भाई के अनिष्ट की आशका से उनकी नीद हराम हो गई। करवटें बदलते और छत की कड़ियाँ गिनते रातो पर-रातें गुजरने लगीं। उन्होने अनेक बार महाराज से यह बात कहने का विचार किया, पर महाराज का महारानी पर निश्छल विश्वास और अटल प्रेम देख कर साहस न हुआ। शेष मे,

थे, राजकुमार के विरुद्ध उनके कान भर दिये। कह दिया,—"आप बुरा न मानियेगा, आपके छोटे भाई की नीयत बड़ी खराब है। मैं उनकी माता के समान हूँ, पर वे इस बात को न समझ कर, मुझे बुरी दृष्टि से देखते हैं। और कोई होती तो उनके फंदे में फँस जाती, पर मुझ पर उनका फंदा कोई काम नहीं कर सकता। परमात्मा ऐसे कुकर्मी का मुँह न दिखावे। मैंने सुना है, कि वह अपने नगर-सेठ की पुत्र-वधू पर भी आशिक हैं। उसके पीछे उन्होंने बहुत दिनो से दूतियाँ लगा रखी हैं। उस बेचारी को अनेक प्रकार से फुसलाया, तरह-तरह के लालच दिए, पर वह भी मेरी तरह सच्ची पतिव्रता है, इसलिए आज तक उनके जाल मे न फँसी। अब सुनती हूँ, उन्होंने नगर-सेठ को धमकी दी है। नहीं जानती, यह बात कहाँ तक सच है। वे आपके सुनाम मे बट्टा लगाते हैं। अत मेरी विनीत प्रार्थना है, कि आप उन पर नजर रखें, उनसे सावधान रहें।"

महारानी की इन बातो को सुन कर महाराज सन्न हो गये, मुँह सूख गया, चेहरा तमतमा आया, आँखे लाल हो गई। उनका मन कभी कहता था, "नही, नही, ये सब नितान्त अमूलक बातें हैं। तुम्हारा भाई विक्रम ऐसा नही है। वह पण्डित है, वह पर-स्त्रियो को अपनी निज जननी के समान समझता है।" कभी उनका मन कहता था, "हो सकता है, विक्रम का चरित्र खराब हो। पिंगला-सी सती नारी मिथ्या दोष नहीं लगा सकती। इसे उससे क्या वैर है? हाय! भर्तृहरि का भाई और ऐसा दुराचारी!" इस तरह उधेड़ बुन करते करते, ताना-बाना बुनते-बुनते, कभी इधर कभी उधर भटकते-भटकते, शेष में महाराजा का मन महारानी पिंगला की बातो पर ही ठहर गया। उन्हें विश्वास हो गया, कि विक्रम सचमुच ही दुराचारी और व्यभिचारी है, पर इतने पर भी, उन्होने प्रकाश मे भाई से कुछ न कहा।

इधर तो रानी ने महाराज को यह पट्टी पढ़ाई, उधर नगर-सेठ को बुलवा कर उससे कहलवाया कि तुमसे कहूँ सो करो, नही तो तुम्हारी जान की खैर नही। राजा मेरी मुट्ठी मे है। मैं तुम्हारे बच्चे-बच्चे को कोल्हू मे पिलवा कर तुम्हारा सर्वस्व अपहरण करा लूँगी।

नगर-सेठ ही क्यो—सारा नगर जानता था कि महाराज पिंगला के हाथ

जाय, तो स्त्रियों के सतीत्व का विश्वास हो। महाराज, स्त्रियों की मीठी बातों में न भूलना चाहिए। इनकी बातें जैसी हैं, वैसा दिल नहीं है। कहा है—

सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येन शितेन चेतसा।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदये तु हलाहलं विषम्॥

"स्त्रियाँ सुन्दर मुँह से मनोहर-मनोहर बातें करती हैं और तीक्ष्ण चित्त से प्रहार करती हैं। इनकी बातों में मधु और हृदय में हलाहल विष रहता है।"

राजकुमार विक्रम की सारी बातें चुपचाप सुन कर महाराज ने कहा—"भाई, तुमको भ्रम हुआ है। तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गई है; तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। महारानी पिंगला आदर्श सती हैं। इस समय उनके जैसी सती बिरली हैं। वह रात-दिन मेरे लिये प्राण देती हैं, मेरा ही जप-तप और ध्यान करती हैं, मेरे सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहती हैं। ऐसी सती को असती कह कर, उन पर कलंक-कालिमा पोत कर तुम अच्छा नहीं करते। खैर, जो हुआ सो हुआ। तुम छोटे भाई हो, इससे क्षमा करता हूँ, अगर और कोई होता तो अभी शूली पर चढ़वा देता। आज तो कहा सो कहा, किन्तु भविष्य में फिर कभी ऐसी बेहूदा बात जुबान से न निकालना।"

राजकुमार ने, महाराज के इतना कहने पर भी, उन्हें बहुत कुछ समझाया, कुछ प्रमाण भी दिये, पर पिंगला के रंग में रंगे हुए महाराज पर कुछ भी असर न हुआ। अन्त में जब राजकुमार ने इससे सुफल की सम्भावना न देखी, तब मन में यह समझ कर कि, समय आये बिना कोई काम नहीं होता, समय आने पर भाई की आखें आप ही खुल जायँगी, उस समय चुप रह जाना ही उचित समझा।

कह चुके हैं कि, महारानी पिंगला बड़ी चालाक थी। उन्हें यह बात पहले ही मालूम हो गई, कि मेरे कुकर्म की बात—मेरे पाप-कर्म का रहस्य राजकुमार जान गये हैं। इसलिए उन्होंने पहले से ही चाल चलनी शुरू कर दी। वे महाराज के प्रति पहले से भी अधिक प्रेम-भाव दिखाने लगी। जब उन्हें अच्छी तरह से मालूम हो गया, कि महाराज के दिल में उनकी ओर से जरा भी वहम नहीं है, उनका उन पर सोलह आने विश्वास है, तो उन्होंने एक दिन उन्हें खुद ही राजी

एक दिन मौका पाकर, एकान्त मे उनसे बात छेड ही तो दी । वे बोले, "पूज्य अग्रज ! आप मेरे पिता के समान ज्येष्ठ भ्राता हैं । आप सब तरह से चतुर, होशियार और परले सिरे के बुद्धिमान हैं, पर एक जगह आप धोखा खा रहे हैं । मेरा ऐसा कहना, छोटे मुँह बडी बात करना है । इच्छा तो नही होती कि आपसे अर्ज करूँ । पर सोचता हूँ दर्द की सी बात हो रही है, कहूँ तो खराबी, और न कहने से कुल मे दाग लगता है, बदनामी होती है और आपके जीवन मे सन्देह होता है । कहने से आप का भय लगता है । आशा नही कि आप मेरी सच्ची बात पर विश्वास करें । दिल को बहुत रोका, बहुत समझाया, पर आज वह न माना, तब मजबूर होकर आप से अर्ज करने का मन्सूबा किया । चाहिए, क्या आप अपने प्यारे छोटे भाई और अपने तुच्छातितुच्छ सेवक की बात पर ध्यान दीजिएगा ?

"सुनिए भाई साहब ! क्या कहूँ कहा नही जाता, गला रुका आता है, जुबान लडखडाती है, पर लाचारी से कहना पडता है । मैंने भाभी के सम्बन्ध मे एक कलकपूर्ण बात सुनी है । सुनते ही मैंने उसे ठीक नही मान लिया, उसकी पूरी तरह से, पोशीदा तौर पर तहकीकात भी की । जाँच मे बात के सच्ची उतरने पर, मैंने आप से कहने का संकल्प किया है । आप से मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप सावधान होकर चलें । अधिक विश्वास अच्छा नही । शास्त्रकारो ने कहा है—

नदीना च नखीना च शृगीणा शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्य. स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

"यह राई रत्ती सच है । इसमे जरा भी झूठ नही । यह सुभाषित बडे भारी अनुभव के बाद कहा गया है । महाराज ! आप भाभी की माया मे भूल रहे हैं । स्त्रियो का जो विश्वास करते हैं, उनको सती-साध्वी मान रहते हैं, उन पर सन्देह भी नही करते, वे बडी भूल करते हैं । किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

यदि स्यात्पावक शीत प्रोष्णो वा शशलाछन ।
स्त्रीणा तदा सतीत्व स्याद्यदि स्याद् दुर्जनो हित ॥

"अगर आग शीतल हो जाय, चन्द्रमा गर्म हो जाय, दुर्जन हितकारी हो

"शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य अनित्य है, और मृत्यु सदैव पास है, इसलिये धर्म करो।" और भी कहा है—

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च ससारे धर्म एको हि निश्चल.॥

"इस चराचर जगत मे धन-प्राण सभी चलायमान हैं, केवल धर्म ही निश्चल है। अत सेठजी! धर्म को न छोडो। धर्म से डर कर, आप अपनी बात को वापिस लीजिये। आप किसी के बहकाने से मुझ पर मिथ्या दोष लगा रहे हैं। जब इस बात की जाँच की जायगी, तब सारा भण्डा फूट जायगा—आपका जाल खुल जायगा। उस समय आपकी क्या दशा होगी, जानते हो?"

राजकुमार की ये बातें सुनते ही महाराज भर्तृहरि लाल-पीली आँखें करके बोले—"कुलागार! नीच! अधम! पापी! तू मेरे सामने ज्यादा बातें न बना। मैं तेरे सब हालो को जानता हूँ। अब तेरी चालाकी और मक्कारी न चलेगी। यदि अपनी जीवन-रक्षा चाहता है तो इसी-क्षण मेरे नगर से निकल जा। शीघ्र काला मुँह कर। मैं तेरा काला मुँह देखना पसन्द नही करता। शीघ्र ही मेरी नजर के सामने से हट जा, नही तो तुझे अभी शूली पर चढवा दूँगा! राजा पिता है प्रजा पुत्र-समान है। राजा ही यदि ऐसा अन्याय करे, तो प्रजा किसके पास जाय? मैं प्रजा के सुख से सुखी और प्रजा के दुख से दुखी रहता हूँ। दूर हो मेरे सामने से! दूर हो!!"

भाई की ये बातें सुनकर राजकुमार विक्रम ने कहा—भाई! मैं तो अभी-इसी क्षण चला जाऊँगा। आपके राज्य मे जल भी न पीऊँगा। पर आप क्रोधान्ध होकर क्या कर रहे हैं? आपको कम-से-कम इस मुकदमे की जाँच तो करनी थी। इस तरह इकतरफा फैसला देना, किसी भी राजा या विचारक को शोभा नही देता। अगर आप इस तरह न्याय करेंगे, तो आपकी प्राणप्यारी प्रजा का नाश हो जायगा, वह आपसे दुखी होकर, और राज्यो मे जा बसेगी। आप जिसके हाथ की कठपुतली बन रहे हैं, वह आपके साथ छल कर रही है। उसके सुख में मैं ही एक काँटा हूँ, इसलिये वह मुझे निकलवाने की गरज से ही ये जाल

"सेठजी ! भगवान का भय करो। मनुष्य से मत डरो। इस बुढापे में स्वार्थ के लिए झूठ बोल कर क्यों पाप की गठरी बांधते हो ? परमात्मा सब देखता है। उसकी नजरों से कुछ भी नहीं छिपा है। मैं तुम्हारी पुत्र-वधू को जानता भी नहीं। मैं नहीं जानता, वह काली है या गोरी, भली या बुरी। मेरी तो वह माता के समान है। मैं पर-स्त्रियों को अपनी जननी के समान समझता हूं, जिसमें आपका पुत्र तो मेरा मित्र है। मित्र की स्त्री तो सच्ची माता ही होती है। कहा है—

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः॥

"राजा की स्त्री, गुरु की स्त्री, मित्र की स्त्री, स्त्री की माता और अपनी मां—ये पांच माता कहलाती हैं। इसके सिवा, मैं अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ कर, जगत की सभी नारियों को माता समझता हूं, क्योंकि जो पराई स्त्रियों को माता के समान नहीं मानता, वह महा मूर्ख है। उसके पाप का प्रायश्चित्त नहीं। पर-स्त्री-गामी को नरकों की असह्य यन्त्रणा सहनी पड़ती है। शास्त्रों में कहा है—

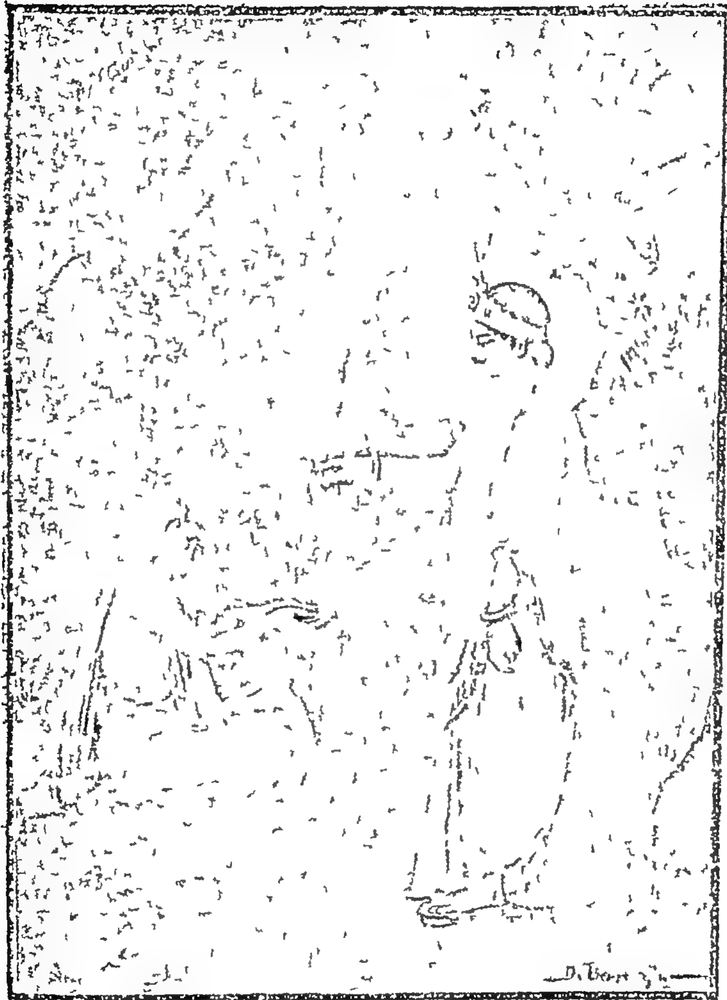
मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

"पर-स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान समझता है, वही देखता है और तो अन्धे या अज्ञानी हैं।

आप धर्म से डरिये, धर्म के सिवा कोई सच्चा साथी नहीं है। और सब जीते जी के साथी हैं, मरने पर कोई साथ न देगा। आप मुझ पर वृथा दोषारोप करके यदि अपना मतलब बना लेंगे, तो क्या होगा ? पार्थिव धन-वैभव आपके साथ न जायेंगे। धन-वैभव का क्या ठिकाना ? आज है, कल नष्ट हो जाय। कहा है—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

चित्र नं० १



देवता ब्राह्मण की तपस्या से सन्तुष्ट होकर, उसे अमरफल प्रदान कर रहे है।

नीतिशतक

चित्र न० ७



तपस्वी ब्राह्मण महाराजा भर्तृहरि को अमरफल दे रहा है।

से भी निकम्मा है। हम लोग दरिद्रता के मारे यों ही इस जिन्दगी से आरी आ रहे है, अब तो अपना कष्ट और भी बढ जायगा। अब तक यह आशा तो थी, कि कभी मृत्यु आकर हमारे कष्टो का अन्त कर देगी, पर जब यह फल खा लिया जायगा, तब तो अनन्त काल तक महादारिद्रय-कष्ट भोगना पडेगा। सारी जिन्दगी, जिसका ओर-छोर नही, दरिद्रावस्था मे ही व्यतीत करनी पडेगी। यह फल तो उनके लिये अच्छा है, जिन्हे परमात्मा ने धन-रत्न, राज-पाट प्रभृति सभी ससारी सुख दिये है। आप यदि मेरी सलाह मानें, तो इसे महाराजा भर्तृहरि को दीजिये और उनसे बदले मे धन लेकर, सुख से शेष जीवन व्यतीत कीजिये।"

बहुत कुछ तर्क-वितर्क और सोच-विचार के बाद ब्राह्मण देवता भी इसी बात पर जम गये। उन्हे ब्राह्मणी की बात ही सोलह आने ठीक जँची। इस-लिये वह कपडे पहन, फल हाथ मे ले, महाराज की सभा मे पहुँचे। चोबदार ने खबर दी। महाराज ने उस ब्राह्मण को अपने निकट बुला लिया और पूछा—"देवता! क्या चाहते हो? आज्ञा कीजिये, इसी क्षण आपकी आज्ञा पालन की जायगी।" ब्राह्मण ने उस अमरफल की सारी कहानी सुनाकर, वह फल राजा के हाथ मे दे दिया। राजा ने उसे खुशी से ले लिया और ब्राह्मण को कई लक्ष सुवर्ण मुद्रा देने का हुक्म दिया। ब्राह्मण अशर्फियाँ लेकर हँसता-हँसता अपने घर आया।

अब महाराज मन-ही-मन विचार करते लगे—वास्तव मे यह फल परमात्मा ने ही दया करके मेरे पास भिजवाया है। पर अब यह समझ मे नही आता, कि इस फल को मैं खाऊँ या अपनी प्राणप्रतिमा, प्राणाधिका, प्राणप्रदा रानी पिंगला को खिलाऊँ। अगर मैं इसे खाऊँगा, तो सदा अमर रहूँगा, मेरा रूप-यौवन सदा स्थिर रहेगा, दुखदायी बुढापा पास न आयेगा, पर मेरी प्यारी पिंगला, मेरे सुखो की मूल पिंगला तो कुछ दिन बाद ही बूढी हो जायगी—उसका यह रूप-लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशा मे, मैं किस के साथ सुख-उपभोग करूँगा? इसलिये मैं इसे पिंगला को ही खिलाऊँगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढी न होगी यदि उसकी सौन्दर्य प्रभा ज्यो-की-त्यो

रहेगी, तो मैं उसी के साथ ससारी सुखो का आनन्द-उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचार पर दृढ हो महाराजा फल को हाथ मे लेकर रनवास को चल दिये।

महाराज के महल के द्वार पर पहुँचते ही, दासियो ने जाकर महारानी को महाराज के आगमन की सूचना दी। पिंगला शीघ्र ही तैयार हो, उन्हें लेने के लिये द्वार तक आई और उनके गले मे हाथ डाल, उन्हे अन्दर लिवा ले गई। उन्हे एक परमोत्कृष्ट आसन पर विठा, आप भी उनकी वगल मे बैठ गई और अपने हाव-भाव और नाज-नखरो से उनका मन अपने हाथो मे करने लगी। शेष मे पूछा—"महाराज ! आज असमय मे इस दासी पर कैसे कृपा की ?" महाराज ने कहा—"प्रिये ! आज एक अपूर्व फल मेरे हाथ लगा है। उसी को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानी ने कहा—"महाराज ! वह फल मुझे दिखाइये और यह भी वताइये, कि उसमे ऐसा कौन-सा गुण है, जिससे आप उसकी इतनी लम्बी-चौडी तारीफ करते हैं।"

राजा ने कहा—"रानी, यह फल, जिसे तुम मेरे हाथ मे देख रही हो, अमरफल है। इसे एक देवता ने एक ब्राह्मण को, उसके तप से सन्तुष्ट होकर, दिया था। ब्राह्मण ने इसे मुझे दिया। इसमे यह गुण है कि इसका खाने वाला न कभी बूढा होता है और न कभी मरता है, सदा नौजवान वना रहता है। मैं चाहता हूँ कि इस फल को तुम खाओ जिससे तुम सदा नवयुवती वनी रहो—तुम्हारा रूप-लावण्य सदा आज जैसा ही वना रहे।" यह कहकर राजा ने वह अमरफल रानी के हाथ मे दे दिया।

रानी उस फल को हाथ मे लेकर कहने लगी—"नही, प्राणनाथ ! आप ही इस फल को खायें, क्योंकि आप ही मेरी माँग के सिन्दूर हैं, आप ही से मेरा सौभाग्य है, आप ही मेरे सूर्य और चाँद हैं, आप ही से मुझे जगत मे उजियाला है। परमात्मा सदा आपको अजर-अमर रखे, इसी मे मेरा सुख-सौभाग्य है।" रानी की ये वातें वनावटी थी। मुँह मे राम और वगल मे छुरी वाली वात थी। उसके पेट मे कपट की कतरनी चल रही थी। राजा उसके जाल मे पूर्ण रूप से

चित्र नं० २०



'महाराजा भर्तृहरि अमरफल जैसे दुर्लभ फल को आप न खाकर अपनी प्यारी रानी पिंगला को देते हैं।

सोचने लगा—"इस कुलटा को मैंने अच्छा चकमा दिया। मैं इस फल को खाऊँगा तो क्या फायदा होगा ? यदि मैं अपनी आशना को खिलाऊँगा, तो सचमुच ही बड़ा लाभ होगा। मेरी प्राणप्यारी इसके खाने से सदा आज जैसी रूप-लावण्य-सम्पन्ना नवयुवती बनी रहेगी और मैं सदा उसके साथ आनन्द-उपभोग करूँगा।" यह सोचता हुआ वह अपनी आशना—वेश्या के मकान पर जा पहुँचा। उस समय वह वेश्या एक तकिये के सहारे बैठी हुई थी। उसके चन्द यार उसकी सेवा मे बैठे थे। दारोगा साहब को वेश्या ने आदर से सामने बिठाया और आने का कारण पूछा।

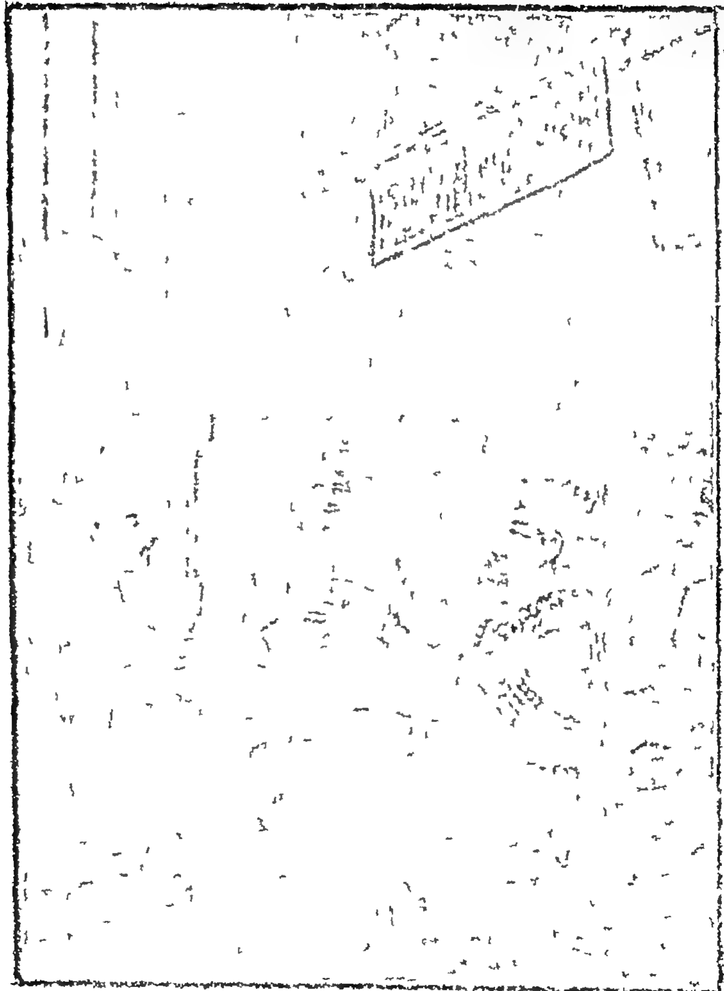
दारोगा ने कहा—"प्रिये ! आज मुझे एक अद्भुत फल मिला है। इसको खाने वाला कभी बूढा नही होता और मृत्यु उसका बाल भी बाँका नही कर सकती। मैं चाहता हूँ, इस फल को तुम खाओ। तुम्हारे सदा सर्वदा आज जैसी नवयुवती बनी रहने से मेरी जिन्दगी सुख से कटेगी।"

वेश्या ने कहा—"अच्छा प्यारे ! आपकी आज्ञा मैं टाल नही सकती। मैं स्नान करके इस फल को खा लूगी।"

वेश्या की यह बात सुनते ही दारोगा ने वह अमरफल उसे दे दिया और आप अपने डेरे को चला आया। उसके जाते ही वेश्या सोचने लगी—"मुझे सारी उम्र पाप कमाते बीती। न जाने इतने पापो का ही मुझे क्या-क्या दण्ड भोगना होगा। यदि मैं इस फल को खाऊँगी, तो अनन्त काल तक इस तरह पापो की गठरियाँ बटोरती रहूँगी, अत मुझे यह फल खाना हरगिज मुनासिब नही। इसे तो मेरे प्यारे महाराज भर्तृहरि खायँ, तो अच्छा। उनके अजर-अमर रहने से मेरी आत्मा को सन्तोष होगा। ऐसे राजा के राज्य मे प्रजा सदा सुखी रहेगी। हमारे महाराज आदर्श राजा है। ऐसे राजा बहुत कम हैं।" यह सोच कर, वह कपडे लत्तो से टिचन हो, फल लेकर राजसभा की ओर चली। सभा मे पहुँचते ही चोबदार ने महाराज को खबर दी, कि बाईजी साहिबा तशरीफ लाई हैं। महाराज ने वेश्या को सामने बुलाया और उसके बेवक्त आने का सबब पूछा।

वेश्या ने कहा, "महाराज ! आज मुझे एक अपूर्व फल मिला है। यह फल

नीतिशतक



…अनिष्ट होता है। स्त्रियो के मोह-जाल मे फँसकर पुरुष उसी तरह …होता है, जिस तरह दीपक की ज्योति पर भूलकर पतगा नष्ट होता है। …किसी ने खब कहा है —

काके शौच द्यूतकारे च सत्य सर्पे क्षान्ति स्त्रीषु कामोपशान्ति ।
क्लीबे धैर्य्यं मद्यपे तत्वचिन्ता राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा ॥

कव्वे मे पवित्रता, जूए मे सत्य, सर्प मे सहनशीलता, स्त्रियो मे कामशान्ति, नपुन्सक मे धीरज, शराबी मे तत्त्व-चिन्ता और राजा मे मैत्री किसने देखी या सुनी ?

इन सब बातो को जान कर भी, हमारे प्रातःस्मरणीय योगिराज रानी पिंगला के मोह-जाल मे फँस गये। भाई विक्रम के समझाने से भी न समझे। जब वेश्या के हाथ से उन्हें अमरफल मिला, तब उनके होश ठिकाने आ गये, आँखें खुल गई। उन्हे मालूम हो गया कि शास्त्रो मे स्त्रियो के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, वह राई-रत्ती सच है—वह लाखो करोडो वर्षों के अनुभव का निचोड है।

राजा अपनी प्यारी रानी का कुलटापन देखकर मन-ही मन कहने लगे—"ससार मे कोई किसी को नही चाहता—यहाँ किसी को किसी से प्रेम और मुहब्बत नही। मैं झूठे मोह से अन्धा हो रहा था, परमात्मा की दया और पूर्व जन्म के सुकर्मों के प्रभाव से मेरी आँखो के आगे से पर्दा हट गया। समय तो हाथ आने वाला नही, अब मुझे आगे को सम्हालना चाहिये और शेष जीवन को परमात्मा की भक्ति मे लगाना चाहिए। ये राज-पाट, धन दौलत प्रभृति चिर-स्थायी नही—ये सब असार और मिथ्या हैं। धिक्कार है उस वेश्या को, जो अपने यार को न चाह कर मुझे प्यार करती है! धिक्कार है उस रानी के यार को, जो रानी को न चाह कर वेश्या से प्रेम करता है! धिक्कार है मेरी प्यारी रानी को, जो मुझसे विरक्त होकर दूसरे को प्यार करती है! धिक्कार है मुझे जो इस कुलटा को सती और अपनी अनुरागिन समझे हुए था और धिक्कार है उस कामदेव को, जो इतने प्रपच कराता है!" यह कहते हुए महाराज ने, अपने राज-वस्त्र और मुकुट प्रभृति मन्त्री को सौंप कर, वन की राह ली।

महाराज ने जो आदर्श ससार के सामने रखा है, उससे भारत का मस्तक उन्नत होता है। ससार के इतिहास मे ऐसे आदर्श अति विरले हैं।

नोट—स्त्रियो की माया के सम्बन्ध मे और भी अधिक जानने की इच्छा हो, तो हमारा अनुवाद किया हुआ "शृगार-शतक" देखिए।

जाकी मेरे चाह, वह मोसो विरक्त मन।
और पुरुष सो प्रीति, पुरुप वह चहत और धन॥
मेरे कृत पर रीझ रही, कोऊ इक औरहि।
यहि विचित्र गति देख, चित्त ज्यो तजत न ठौरहि॥

सब भाँति राज्यपत्नी सुधिक, जार पुरुप को परमधिक।
धिक काम, याहि धिक, मोहि धिक, अब ब्रजनिधि की शरण इक॥२॥

2 The woman I constantly adore does not care for me. She has given her heart to another man, and that other man has some other sweet-heart I again am the object of affection of a third woman Fie on her and him and Cupid and this woman and me !



अज्ञ सुखमाराध्य· सुखतरमाराध्यते विशेपज्ञ।
ज्ञानलवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि तं नर न रजयति॥३॥

हिताहित ज्ञानशून्य नासमझ को समझाना वहुत आसान है; उचित और अनुचित को जानने वाले ज्ञानवान को राजी करना और भी आसान है, किन्तु थोडे से ज्ञान से अपने तई पण्डित समझने वाले को स्वय विधाता भी सन्तुप्ट नहो कर सकता॥३॥

ससार मे तीन तरह के मनुष्य होते हैं—(१) अज्ञ, (२) गुज्ञ और (३) अल्पज्ञ। जिसे अपने बुरे-भले का ज्ञान नहीं होता, जो निरा मूर्ख होता

यदि महाराज भर्तृहरि चाहते, तो रानी पिंगला को जीती ही जमीन मे गड़वा देते, उस दारोगा को तोप के मुँह मे बँधवा कर उड़वा देते तथा और शादी कर लेते, पर आपको तो निर्मल ज्ञान हो गया था, आप ससार की असलियत को समझ गये थे, इसी से आपको ससार से घृणा हो गई। आपने उपभोग, वस्त्र, चन्दन, वनिता, रत्न और राज-पाट सबको तृण के समान समझकर एक क्षण मे त्याग दिया। ऐसा सब किसी से नही हो सकता। ऐसा उनसे ही होता है, जिन पर जगदीश की दया होती है, या पूर्व सचित पुण्यो का उदय होता है। मनुष्य से टूटे-फूटे हाँडी बर्तन और गुदड़े ही नही छोड़े जाते, कोरी इच्छाओ का भी त्याग नही होता, तब राज-पाट और धन-दौलत का छोड़ना तो बड़ी बात है!

महाराजा भर्तृहरि भूपालो मे आदर्श भूपाल हो गये हैं। उन्होने जो किया है वह शायद ही कोई भूपाल उनके बाद कर सका हो। जब तक सूर्य-चन्द्रमा रहेगे, जब तक यह दुनिया रहेगी, तब तक महाराजा का प्रात स्मरणीय पुण्य-श्लोक नाम लोगो की जबान पर रहेगा।*

---

* हमने महाराजा भर्तृहरि और महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, वह एक थियेट्रिकल कम्पनी के तमाशे और एक पुरानी पुस्तक के आधार पर लिखा है, जो हमने कोई ५५ साल पहले एक पल्टन की लाइ-ब्रेरी मे अँग्रेजी और हिन्दी मे देखी थी। हमे जो याद था, वही लिखा है। इस समय न तो हमारे पास वह पुस्तक ही है और न हमे उसका नाम ही याद है।

नीति-शतक



दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येकसाराय नम शान्ताय तेजसे ॥१॥

दशो दिशाओ और तीनो कालो मे परिपूर्ण अनन्त और चैतन्य-स्वरूप, अपने ही अनुभव से प्रत्यक्ष होने योग्य, शान्त और तेजोरूप परब्रह्म को नमस्कार है ॥१॥

भारतीय कवि या ग्रन्थकार, अक्सर, अपने ग्रन्थ के बिना विघ्न-बाधा, सुख से समाप्त होने के लिये, ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त मे मगलाचरण किया करते हैं। इस 'नीति-शतक' के कर्त्ता, योगिराज राजर्षि भर्तृहरि महोदय भी अनन्त, अविनाशी और आत्मज्ञान से प्रत्यक्ष होने योग्य परब्रह्म परमात्मा की वन्दना करके ग्रन्थारम्भ करते हैं।

सर्व दिशा सब काल, पूरि रह्यो चैतन्य धन ।
सदा एक रस चाल, वन्दन वा परब्रह्म को ॥१॥

1 To One unlimited by time or space, to the Boundless, to Him, Who is all consciousness, to One Who is the essense of self-contemplation and to the Supreme Peace and Light, I bow in prayer



या चिन्तयामि सतत मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जन स जनोऽन्यसक्त ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् ता च त च मदन च इमा च मा च ॥२॥

मैं जिसके प्रेम मे रात-दिन डूबा रहता हूँ—किसी क्षण भी जिसे नही भूलता, वह मुझे नही चाहती, किन्तु किसी और ही पुरुष को चाहती है। वह पुरुष किसी और स्त्री को चाहता है। इसी तरह वह स्त्री मुझे प्यार करती है। इसलिये उस स्त्री को, मेरी प्यारी के यार को, प्यारी को, मुझको और उस कामदेव को, जिसकी प्रेरणा से ऐसे-ऐसे काम होते हैं; अनेक धिक्कार है! ॥२॥

इस श्लोक मे महाराज अपनी प्यारी रानी पिंगला पर इशारा करते हैं। यद्यपि महाराज पूर्ण विद्वान और चतुर नरेश थे, तथापि इस रानी के एकदम वशीभूत हो गये थे। स्त्रियाँ जितेन्द्रिय मुनियो को भी वशीभूत करके विषयाभिलाषी बना देती हैं, तब अजितात्माओं का तो कहना ही क्या? कहते हैं—धनी होकर किसने गर्व नही किया? किस विषयी की आपत्ति नष्ट हुई? राजा का प्यारा कौन हुआ? काल से किसका नाश न हुआ? किस माँगने वाले का मन रहा? दुष्टो की संगति मे किसकी कुशल हुई, और स्त्रियो से किसका मन खण्डित न हुआ? स्त्रियो के सम्बन्ध मे शास्त्रो मे लिखा है—

स्त्री किसी के साथ बात करती है, किसी को विलास-पूर्वक देखती है और दिल मे किसी का विचार करती है। स्त्रियों का प्यारा कोई नही। जब तक स्त्री पुरुष को अपने ऊपर मोहित नही कर लेती, तब तक उसे हर तरह मे प्रसन्न करती और मधुर भाषण करती है। ज्योंही उसे काम के वशीभूत देखती है, त्योंही उसे माँस ग्रहण करने वाली मछली की तरह उठा लेती है। जब पुरुष उसके वश मे हो जाता है,—जब उसका बल बढ जाता है, तब वह पख-नुचे हुए कव्वे की तरह उससे खेल करती है।

स्त्रियाँ मुँह से मनोहर बातें करती हैं और तीक्ष्ण नेत्रो से चोट करती हैं। इनके सामने कराल-मुख सिंह, मदमत्त गजराज और बुद्धिमान समर-शूर भी कायर हो जाते हैं।

स्त्रियाँ शम्बर की माया, नमुचि की माया तथा बलि और कुम्भीनस की

माया को जानती हैं। जिन शास्त्रों को बृहस्पति और शुक्र जानते है, उन्हे ये स्वभाव से ही जानती हैं।

स्त्रियाँ मोहित करती, मद पैदा करती, प्रसन्न करती, घुटकियाँ देती, रमण करती, विषाद करती, हँसते के साथ हँसती, रोते के साथ रोती, समय-योग से अनुरक्त को प्यारी-प्यारी बातो से ग्रहण कर लेती एव असत्य को सत्य और सत्य को असत्य करती हैं—इनकी माया अपरम्पार है। झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अति लोभ, अपवित्रता और निर्दयता—ये तो इनके स्वाभाविक दोष हैं।

अपना पति कैसा ही बलवान और रूपवान हो, वह हर तरह से प्यार करता हो, दास की तरह आज्ञा पालन करता हो, घर मे सब तरह के सुखैश्वर्य के सामान हो, पर असती स्त्री इन सबको तिनके के समान समझती है। अगर उसे एकान्त मे नीच, लँगड़ा, लूला और कोढ़ी भी मिल जाय, तो वह अपने सुन्दर पति को न भज कर, उस नीच को ही चाहती है। कुलटा को अपने कुल की हीनता, लोक-निन्दा और अपने बन्धन प्रभृति की कोई परवाह नहीं रहती। और तो और, वह अपने प्राणनाश की भी परवाह नही करती।

स्त्रियो को कोई अगम्य नही, बूढे और जवान, कुरूप और सुरूप, धनी और निर्धन, नीच और ऊँच का कोई ख्याल नही—ये तो पुरुषमात्र को भजती है। कुलटायें गाय की तरह होती हैं। जिस तरह गाय नई-नई घास खाना चाहती है, उसी तरह ये नये-नये पुरुषो को चाहती हैं। ये दण्ड, शस्त्र, दान और स्तुति किसी से भी वश मे नही रहती। अगर इन्हे मौका नही मिलता या चाहने वाला नही मिलता, तब तो यह सती बनी रहती हैं। कहा है—एकान्त नही, अवकाश नही और प्रार्थी नही, हे नारद! इसी से सती का सतीत्व रहता है। जो कोई स्त्री से प्रार्थना करता है, उसके पास जाता है और थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्री उसी की हो जाती है। आग की काठ से, सागर की नदियो से, काल की प्राणियो से और स्त्री की पुरुषो से तृप्ति नही होती। जो पुरुष अज्ञान से यह जानता है कि यह स्त्री मुझे प्यार करती है, वह स्त्री के वशीभूत होकर खेल के पक्षी की तरह हो जाता है। जो स्त्री के फन्दो मे फँसता है और उनका विश्वास करता है, उसका

अवश्य अनिष्ट होता है। स्त्रियो के मोह-जाल मे फँसकर पुरुष उसी तरह नष्ट होता है, जिस तरह दीपक की ज्योति पर भूलकर पतगा नष्ट होता है। किसी ने खब कहा है —

काके शौच द्यूतकारे च सत्य सर्पे क्षान्ति. स्त्रीषु कामोपशान्ति।
क्लीबे धैर्य्यं मद्यपे तत्वचिन्ता राजा मित्रं केन दृष्ट श्रुत वा ॥

कव्वे मे पवित्रता, जुए मे सत्य, सर्प मे सहनशीलता, स्त्रियो मे कामशान्ति, नपुन्सक मे धीरज, शरावी मे तत्त्व-चिन्ता और राजा मे मैत्री किसने देखी या सुनी ?

इन सब बातो को जान कर भी, हमारे प्रात स्मरणीय योगिराज रानी पिंगला के मोह-जाल मे फँस गये। भाई विक्रम के समझाने से भी न समझे। जब वेश्या के हाथ से उन्हें अमरफल मिला, तब उनके होश ठिकाने आ गये, आँखें खुल गईं। उन्हे मालूम हो गया कि शास्त्रो मे स्त्रियो के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, वह राई-रत्ती सच है—वह लाखो करोडो वर्षों के अनुभव का निचोड है।

राजा अपनी प्यारी रानी का कुलटापन देखकर मन-ही मन कहने लगे—"ससार मे कोई किसी को नही चाहता—यहाँ किसी को किसी से प्रेम और मुहब्बत नही। मैं झूठे मोह से अन्धा हो रहा था, परमात्मा की दया और पूर्व जन्म के सुकर्मों के प्रभाव से मेरी आँखो के आगे से पर्दा हट गया। समय तो हाथ आने वाला नही, अब मुझे आगे को सम्हालना चाहिये और शेष जीवन को परमात्मा की भक्ति मे लगाना चाहिए। ये राज-पाट, धन दौलत प्रभृति चिर-स्थायी नही—ये सब असार और मिथ्या है। धिक्कार है उस वेश्या को, जो अपने यार को न चाह कर मुझे प्यार करती है! धिक्कार है उस रानी के यार को, जो रानी को न चाह कर वेश्या से प्रेम करता है! धिक्कार है मेरी प्यारी रानी को, जो मुझसे विरक्त होकर दूसरे को प्यार करती है! धिक्कार है मुझे जो उस कुलटा को सती और अपनी अनुरागिनी समझे हुए था और धिक्कार है उन कामदेव को, जो इतने प्रपच कराता है!" यह कहते हुए महाराज ने, अपने राज-वस्त्र और मुकुट प्रभृति मन्त्री को सौंप कर, वन की राह ली।

महाराज ने जो आदर्श ससार के सामने रखा है, उससे भारत का मस्तक उन्नत होता है। ससार के इतिहास मे ऐसे आदर्श अति विरले हैं।

नोट—स्त्रियो की माया के सम्बन्ध मे और भी अधिक जानने की इच्छा हो, तो हमारा अनुवाद किया हुआ "शृगार-शतक" देखिए।

जाकी मेरे चाह, वह मोसो विरक्त मन।
और पुरुष सो प्रीति, पुरुष वह चहत और धन॥
मेरे कृत पर रीझ रही, कोऊ इक औरहि।
यहि विचित्र गति देख, चित्त ज्यो तजत न ठौरहि॥

सब भाँति राज्यपत्नी सुधिक, जार पुरुष को परमधिक।
धिक काम, याहि धिक, मोहि धिक, अब व्रजनिधि की शरण इक॥२॥

2 The woman I constantly adore does not care for me. She has given her heart to another man, and that other man has some other sweet-heart I again am the object of affection of a third woman Fie on her and him and Cupid and this woman and me !



अज्ञ सुखमाराध्य सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ।
ज्ञानलवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि त नर न रजयति॥३॥

हिताहित ज्ञानशून्य नासमझ को समझाना बहुत आसान है; उचित और अनुचित को जानने वाले ज्ञानवान को राजी करना और भी आसान है, किन्तु थोडे से ज्ञान से अपने तई पण्डित समझने वाले को स्वय विधाता भी सन्तुष्ट नही कर सकता॥३॥

ससार मे तीन तरह के मनुष्य होते हैं—(१) अज्ञ, (२) जुज्ञ और (३) अल्पज्ञ। जिसे अपने बुरे-भले का ज्ञान नहीं होता, वो निरा मूर्ख होता

है, उसे 'अज्ञ' कहते हैं। जिसे युक्तायुक्त, उचित और अनुचित का ज्ञान होता है, उसे 'सुज्ञ' कहते हैं। जो अज्ञ और सुज्ञ के बीच का होता है, जिसे थोड़ा-सा ज्ञान होता है, न वह पूरा पण्डित ही होता है, निरा मूर्ख ही, उसे 'अल्पज्ञ' कहते हैं। अल्पज्ञ को बहुत थोडा ज्ञान होता है, पर वह अपने तईं बडा भारी पण्डित समझता और इस नशे मे चूर रहता है—थोडे-से ज्ञान से उसका सिर घूम जाता है। इसी से कहते हैं—"कम इल्म बुरा।" शुक्र ने भी कहा है—"ज्ञानलव-दौर्विदग्ध्यादज्ञता प्रवरा मता", अर्थात् अल्पज्ञता से मूर्खता भली।

कोरा अज्ञानी अपनी अज्ञानता—मूर्खता को समझता है। उसे अपनी पण्डिताई का घमड नही होता, इसी से वह विद्वानो की बात कान देकर सुनता और उनके उपदेशो को ग्रहण करके राह पर आ जाता है। युक्तायुक्त का जानने वाला विद्वान उचित-अनुचित को समझता है—युक्ति और तर्क को मानता है, इसलिये वह और भी आसानी से अपने से अधिक बुद्धिमान की बात को मान लेता है, परन्तु जिसे जरा से ज्ञान से घमण्ड हो जाता है, उसे मनुष्य तो क्या चीज है, उसके और ससार के रचने वाला ब्रह्मा भी नही समझा सकता।

सब अनर्थों की जड खुदी या अहङ्कार है। अहङ्कार मनुष्य को ऊँचा होने नही देता। अहङ्कार के कारण से ही मूर्ख मूर्ख ही रह जाता है। मनुष्य के बडप्पन और सच्चे सुख मे अहङ्कार ही बाधक है। जो अहङ्कार को जीत लेता है, वह निश्चय ही एक-न-एक दिन सच्चे सुख और महत् पद का अधिकारी होता है। अल्पज्ञो मे अक्सर घमण्ड होता ही है, इसी से वे पराया उत्तम से उत्तम उपदेश भी नही मानते। अपनी शान मे बट्टा लगने के खयाल से, वे जिस बात को नही जानते, उसे किसी से पूछते भी नही, इसी मे उनकी उन्नति नही होती। दुनिया में जो अपने तईं सबसे छोटा और तुच्छ समझते हैं एव जो वास्तव मे बुद्धि रखते हैं, वे अवश्य चतुर-चूडामणि हो जाते हैं। मूर्ख और घमण्डी किसी का उपदेश ग्रहण नही करते। कहा है—

असम्भव है। फिर भी, तैराक ऐसा नही करने का प्रयत्न करे तो कर सकता है, शायद कामयाबी हो जाय। कुपित भयानक सर्प को माला की तरह मस्तक पर धारण करना महा कठिन काम है। कोई तेजस्वी पुरुष, शिवजी की तरह, सर्प को सिर पर धारण करने का उद्योग करे, तो भले ही करे, कदाचित् वह सर्प को मस्तक पर रख सके। कोई भी मनुष्य इन तीनो कामो को कर नही सकता, पर कदाचित् कोई पुरुष इन अघटित—असम्भव को सम्भव करने मे समर्थ हो जाय। लेकिन दुराग्रही—अपने हठ पर चढे हुए मूर्ख मनुष्य के चित्त को अपने काबू मे करने की कोई भी चेष्टा न करे—भूल कर भी इस बात का वृथा प्रयास न करे।

साराश यह, कि जिद पर चढा हुआ मूर्ख किसी के भी समझाये नहीं समझता। वह जिस बात पर जम जाता है, उससे नही हटता। मिस्टर लावेल नामक एक यूरोपीय विद्वान कहते हैं—"केवल मूर्ख और मृतक अपनी राय नही बदलते*।" लेवेटर नामक एक विद्वान ने कहा—"जो शख्स किसी बात पर जमे हुए मनुष्य के चित्त को युक्ति और तर्क से अपने काबू मे करने की आशा रखता है, वह मानव-जाति के सम्बन्ध मे बहुत कम ज्ञान रखता है*।" निस्सन्देह, हठ पर चढा हुआ मूर्ख विधाता के समझाये भी नही समझता।

दुर्योधन ने अन्याय और अनीति से पाण्डवो का सारा राज्य छीन लिया, उनके ऊपर अनगिनती अत्याचार किये। विदुर, भीष्म और सजय प्रभृति राज्य के सच्चे शुभचिन्तको ने उसे बहुत समझाया, पर वह किसी की भी बात से टस-से-मस न हुआ। शेष मे, सर्वशक्तिमान त्रिलोकीनाथ कृष्ण, लोकरीति पूरी करने के लिये, उसे समझाने गये, पर वह उनकी भी नीतिपूर्ण और दोनो पक्षो के लिए भी बातो से न पसीजा। अज्ञानी उल्टा उनका ही अपमान करने पर

---

* The foolish and the dead alone never change their opinion—*Lowell*

* He knows very little of mankind who expects, by tact or reasoning, to convince a determined partyman

Lavater

सम्भव करने मे जो परिश्रम किया जाय, शायद वह सफल हो जाय, पर जिद पर चढे—अपनी ही बात पर अड़े हुए मूर्ख का चित्त किसी भी उपाय से वश मे नही किया जा सकता।

मूर्खों का स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे जिस बात पर जम जाते हैं, जिस बात की जिद कर लेते हैं, उसे किसी के भी कहने से नही त्यागते। यद्यपि ऐसे दुराग्रही घोर दु ख भोगते हैं, पर वे किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करते। रावण को मारीच ने बहुत कुछ समझाया, पर उसने उसकी एक न मानी, यती का वेश धर कर सीता को ले ही गया। परिणाम यह हुआ कि, उसका कुटुम्ब-सहित नाश हुआ। वालि बन्दर को तारा ने अनीति का नतीजा समझाया, पर उसने उसकी एक न सुनी, अन्त मे अपनी जिन्दगी से हाथ धोये। इन्द्रपुत्र जयन्त ने किसी की न मान, सीताजी के साथ छेड़खानी की। शेष मे त्रिलोकी मे मारा-मारा फिरा, पर कोई शरणदाता न मिला। जो लोग हठ करते हैं—किसी की सीख नही मानते, अन्त मे उनका बुरा होता है। तुलसीदास ने कहा है—

> साहस ही सिख कोपवस, किये कठिन परिपाक।
> सठ सकट भाजन भये, हठी कुगति कपि काक॥
> निकसत बारू तेल, जतन कर काढत कोऊ।
> मृगतृष्णा कौ नीर, पिये प्यासौ है सोऊ॥
> लहत शशा को शृंग, ग्राहमुख से मणि काढत।
> होत जलधि के पार, लहर वाकी जब बाढत॥
> रिसभरे सर्प को पुहुप-ज्यो, अपने सिर पै धर सकत।
> हठभरे महाहठ नरन को, कोऊ बस नही कर सकत ॥४-५॥

5 A man may get oil out of sand by strenuously squeezing the latter A thirsty person will perhaps drink water out of mirage It is just possible that a man in his wanderinges may come across the

horns of a hare But it is extremely difficult to please the heart of a bigotted and ignorant person

☆

व्याल बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तु वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतु वाञ्छति य खलान्पथि सतां सूक्तै सुधास्यन्दिभि ॥१६॥

जो मनुष्य अपने अमृतमय उपदेशो से दुष्ट को सुराह पर लाने की इच्छा करता है, वह उसके समान अनुचित काम करता है, जो कोमल कमल की डण्डी के सूत से ही मतवाले हाथी को बाँधना चाहता है, सिरस के नाजुक फूल की पखडी से हीरे को छेदना चाहता है, अथवा एक बूँद मधु से खारे महासागर को मीठा करना चाहता है ॥६॥

हाथी जैसा बलवान जानवर रस्सो से भी नही बँध सकता । जो मनुष्य उसे कोमल कमल की डण्डी के सूत से बाँधने की चेष्टा करता है, वह मूर्ख है । हीरे मे बडे-बडे घनो की चोट से भी कुछ नही होता, पर जो मनुष्य सिरस से नाजुक, फूल की पखडी से उसमे छेद करना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है । समुद्र सारी पृथ्वी के मधु और चीनी-शक्कर प्रभृति से भी मीठा नही हो सकता, पर जो मनुष्य उस महासागर का खारापन एक बूँद शहद से मिटाना चाहता है, वह निश्चय ही मूर्ख है । ये तीनो काम करने वाले जिस तरह मूर्ख है, उसी तरह वह भी मूर्ख है, जो अपने उत्तमोत्तम अमृतोपम उपदेशो से दुष्ट को, कुराह से हटाकर, सुराह पर लाने की अभिलाषा करता है । साराश यह—दुष्ट को उपदेश देकर भला आदमी बनाना मूर्खता से खाली नही । गधे को उपदेश देने वाला भी गधा ही समझा जाता है ।

अच्छी मिट्टी मे बोने से बीज उगता है । अच्छे लोहे पर पालिश करने से ही चमक आती है । जिसे ईश्वर योग्यता देता है, उसी पर सुशिक्षा का फल

होता है। जिसमे स्वय बुद्धि होती है, उसी को सदुपदेश और शास्त्र से लाभ होता है। सुपात्र को दिया दान फलता है और कुपात्र को दिया दान वृथा जाता है। यही हाल सुशिक्षा का है। कुपात्र मे कोई भी क्रिया फलवती नहीं होती। हजारो तरह के उपाय करने से भी बगुला तोते की तरह पढाया नहीं जा सकता। शेख सादी ने कहा है—

अब्र गर आवे जिन्दगी बारद ।
हर्गिज अज शाखे बेद बर न खुरी ॥

बादल का पानी की जगह अमृत बरसाना मुमकिन हो सकता है, पर बेत की शाखो मे कभी फल नही लग सकते। दूषित जड से छायादार वृक्ष नहीं हो सकता। नालायक को नसीहत देना गुम्बद पर अखरोट फेंकना है। कमीने के पीछे अपना समय नष्ट करना अच्छा नहीं; क्योकि नरकुल से कभी चीनी नही निकल सकती। कुत्ता की पूँछ को कोई कितना ही तेल प्रभृति से मल कर और बाँधकर, बारह वर्ष तक भी क्यो न रखे, खुलने पर वह वैसी-की वैसी ही रहेगी। कवियो ने कहा है —

फूले फले न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख-हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम ।
बिगर्यो होय कुसग जिहि, कौन सकै समुझाय ?
लसन बसाये बसन कौं, कैसे सकै बसाय ?

कमलतन्तु सो बाँधि गजहि बस करन उमाहत ।
सिरस-पुहुप के तार, बज्र को बेध्यो चाहत ॥
बूँद सहद की डार, उदधि को खार मिटावत ।
ये बाते विपरीति होहि बरु, यह श्रुति गावत ॥
पर नमृतमयी निज बैन सो, सतपथ मे खैंचन चहै ।
जो कोउ, कहु, खल जनन कौं, इहै एक अचरज अहै ॥६॥

6 He who tries, by his nectar-like precepts to make evil-minded persons walk on the path of virtuous men acts as unwisely as one who attempts to bind an elephant with the fibres of a young lotus-

stalk, or to make a bore in a diamond with the help of the point of a Shirish flower, or to make the water of the ocean sweet by adding to it a single drop of honey.



स्वायत्तमेकान्तगुण विधात्रा
विनिर्मित छादनमज्ञताया ।
विशेषत सर्वविदा समाजे
विभूषण मौनमपण्डितानाम् ॥७॥

मूर्खों को अपनी मूर्खता छिपाने के लिए ब्रह्मा ने 'मौन धारण करना' अच्छा उपाय बता दिया है और वह उनके अधीन भी कर दिया है। मौन मूर्खता का ढक्कन है। इतना ही नही, वह विद्वानो की मण्डली मे उनका आभूपण भी है ॥७॥

ससार मे मौन रहने या चुप साध लेने के समान मूर्खता के छिपाने का दूसरा और उपाय नही है। अंगरेजी मे एक कहावत है—"जबकि, मूर्ख मौन साधे रहता है, तब वह बुद्धिमान समझा जाता है*।" एक और विद्वान ने कहा है—"जिसे आत्म-विश्वास नही है, उस मनुष्य के लिये मौन सर्वोत्तम निरापद उपाय है*।" 'वोनार्ड नामक विद्वान ने कहा है—"मौन मूर्खों की बुद्धिमत्ता और बुद्धिमानो का एक गुण है*।" वर्न नामक विद्वान ने कहा है—"चुप रहने की आदत सीखो और इसे अपना आदर्श मानो*।" कहाँ तक लिखें ?

---

* A fool when he is silent is wise —*Pr*

□ Silence is the safest course for the man who is diffident of himself —*La Roche*.

† Silence is the wit of fools, and one of the virtues of the wise man —*Bonard*

† Learn taciturnity Let that be your motto —*Burne*

मौन की सभी देशों के शास्त्रों मे बड़ी प्रशसा लिखी है। महात्मा रैले ने कहा है—"सुनो बहुत और बोलो कम, क्योंकि ससार मे सबसे बड़ी भलाई और सबसे बडी बुराई इस जीभ से ही होती है*।"

चुप रहने से मनुष्य मिथ्या भाषण और परनिन्दा के पाप से बचता है। जो ज्यादा बोलता है, उसके मुँह से कोई-न-कोई बुरी बात भी निकल ही जाती है और शत्रु की नजर सदा बुरी बातो पर ही रहती है। जब तक मनुष्य नही बोलता, उसके ऐब और हुनर छिपे रहते हैं—बोलते ही सब भेद खुल जाता है। कव्वे और कोयल दोनो काले होते हैं। जब तक वे नही बोलते, यह मालूम करना कठिन हो जाता है कि कौन कव्वा और कौन कोयल है। शेख सादी ने भी कहा है—

ता मर्दे सुखन न गुफ्ता बाशद।
ऐबो हुनरस न हुफ्ता बाशद॥

जब तक कोई बात-चीत नही करता, तब तक उसकी भलाई-बुराई नही मालूम होती।

हमारे चाणक्य महाराज ने भी कहा है—

मूर्खोऽपि शोभते तावत सभायां वस्त्रवेष्टित।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किंचिन्न भाषते॥

सभा मे मूर्ख वस्त्र पहने हुए उस समय तक अच्छा दीखता है, जब तक कुछ नही बोलता। बोलते ही सारी कलई खुल जाती है। इसलिये मूर्खों को अपनी मूर्खता छिपाये रखने के लिये, मौनावलम्बन करना ही अच्छा है। 'गुलिस्तां' मे एक कहानी है—

एक बुद्धिमान नौजवान, जिसने विद्या और धर्म-कार्यों मे खूब उन्नति की थी, विद्वानो के समाज मे अक्सर कुछ नही बोला करता था। एक दिन उसके

---

*Hear much and speak little, for the tongue is the instrument of greatest good and the greatest evil that is done in this world —*Raleigh*

पिता ने कहा—"पुत्र ! तुम जो जानते हो उसे कहते क्यों नही ?" पुत्र ने जवाब दिया—"पिता जी ! मैं इस बात से डरता हूँ कि वे लोग मुझसे कोई ऐसी बात न पूछ बैठें, जिसे मैं न जानता होऊँ और उसके कारण मुझे लज्जित होना पड़े । क्या आपने उस सूफी की बात नही सुनी, जो अपनी खड़ाउँओ मे कील ठोक रहा था ? कीलें ठोकते देखकर, एक हाकिम ने उसकी आस्तीन पकड़ ली और उससे कहा—'चलो, मेरे घोड़े के पैरो मे नाल बाँध दो । जब तुम चुप रहोगे, तब तुम्हे कोई न छेड़ेगा । अगर बोलोगे, तो सुबूत लेकर तैयार रहना पड़ेगा । खुदा ने मनुष्य को कान दो और जीभ एक, इसी गरज से दी है कि वह सुने बहुत और बोले कम । जिसमे मूर्ख की प्रतिष्ठा-रक्षा तो मौन धारण करने मे ही है ।" कहा है—कम खाना और कम बोलना अक्लमन्दी है । बहुत खाना और बहुत बोलना बेवकूफी है ।

मूरखता के ढकन को, रच्यो विधाता मौन ।
ज्ञानि-सभा महँ आभरण, अज्ञहि गुण को मौन ॥७॥

7. Silence, which is within one's own power and which has numerous other facilities, has been made by the Creator to serve as a cover for ignorance Especially in an assembly of learned men, it is the best ornament of those who are ignorant.



यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्ध समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मन ।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥८॥

जब मैं कुछ थोड़ा सा जानता था, तब मैं मदोन्मत्त हाथी की तरह घमण्ड से अन्धा होकर, अपने तईं सर्वज्ञ समझता था । लेकिन ज्यो ही मैने विद्वानो की संगति से कुछ जाना और सीखा, त्यो ही

मालूम हो गया कि मैं तो निरा मूर्ख हूँ। उस समय मेरा मद, ज्वर की तरह उतर गया ॥८॥

कहावत है—"अल्पविद्यो महागर्वी।" थोड़ी विद्या वाला बड़ा अभिमानी होता है। अज्ञान अपने सिवा सारे संसार को मूर्ख समझता है। जब तक वह विद्वानों की सुहबत नहीं करता—अनेक प्रकार के ग्रन्थों को नहीं देखता, तब तक वह अपने तईं सर्वज्ञ समझता है और उतनी-सी विद्या के घमण्ड में मतवाला रहता है। लेकिन ज्यों ही वह पण्डितों की संगति करता है, उनसे कुछ सीखता है, उसकी आँखें खुल जाती हैं—उसका सारा नशा किरकिरा हो जाता है—उसका मद-ज्वर फौरन उतर जाता है।

अज्ञान की दशा कूप-मण्डूक की-सी होती है। कुएँ का मेढक सदा कुएँ में रहता है और कुएँ के सिवा और किसी जलाशय को नहीं देखता। उस दशा में, वह उस कुएँ को ही सर्वश्रेष्ठ जलाशय समझता है। लेकिन जब वह सरोवरों, नदियों अथवा सागरों को देखता है, तब उसकी आँखें खुल जाती हैं। इसी तरह जो लोग थोड़ा-सा इल्म रखते हैं, अनेक विषयों से अनजान रहते हैं, वे अपने साधारण ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं और उस पर अभिमान करते हैं, किन्तु जब वे विद्वानों की संगति से कुछ और देखते और जानते हैं, तब उनको होश होता है, तब वे समझते हैं कि हम तो कुछ भी नहीं जानते। उस्ताद ज़ौक ने कहा है—

हम जानते थे इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना कि न जाना कुछ भी ॥

वाल्तेयर* नामक विद्वान ने भी ठीक यही बात कही है—'जितना ही अधिक हमने पढ़ा, उतना ही अधिक हमने सीखा। जितना ही अधिक हमने चिन्तन किया, उतना ही हमारा दृढ़ निश्चय हुआ कि हम तो कुछ भी नहीं जानते।" अर्थात् अधिकाधिक पढ़ने, सीखने और विचार करने से हमारी यह धारणा हो गई, कि हम तो अल्पज्ञ हैं।

---

* The more we have read the more we have learned, the more we have meditated, the better conditioned we are to affirm that we know nothing—*Valatire.*

मनुष्य ज्यो-ज्यो देशाटन करता है, त्यो-त्यो उसकी देश देखने की इच्छा होती है और वह समझने लगता है कि जिस गाँव मे मैं रहता हूं, पृथ्वी उतनी ही नही है—पृथ्वी बहुत बडी है, मैंने अभी कुछ भी नही देखा है। इसी तरह, ज्यो-ज्यो मनुष्य विद्वानो की सुहबत करता है, ज्यो-ज्यो नये-नये शास्त्र देखता है, त्यो-त्यो उसे मालूम होता है कि मैं जितना जानता हूं, उतना कुछ भी नहीं है—अभी मेरे सीखने के लिए बहुत पडा है—सारी उम्र सीखता रहूँगा तो भी विद्या का अन्त न आयेगा। इस विचार पर पहुँचने से उसे अभिमान नही रहता और वह दिन-दिन उन्नति करके, एक दिन सचमुच ही आदर्श विद्वान हो जाता है। जो मनुष्य अपनी त्रुटियो—अपनी कमजोरियो को जानता है, जो अपने तई सबसे छोटा समझता है, वह निश्चय ही विद्वान और गुणवान हो जाता है। किन्तु वह मनुष्य, जो अपने तई सर्वज्ञ समझता है, अपने सर्वज्ञ होने मे सन्देह भी नही करता, अपनी नाम मात्र की विद्या-बुद्धि के घमण्ड मे चूर रहता है, वह जहाँ-का-तहाँ ही पडा रहता है—उसकी मूर्खता कभी नही जाती। मूर्ख ही अपने को बुद्धिमान समझता है। बुद्धिमान तो सदा अपने को मूर्ख ही समझता है।

जब ही समझो नेक, तवहि सर्वज्ञ भयो हो।
जैसे गज मदमत्त, अन्धता छाय गयो हो॥
जब सतसगति पाय, कछुक ही समझन लाग्यो।
तबहि भयो अति मूढ, गर्व गुन को सब भाग्यो॥

ज्वर चढ़त-चढ़त अति ताप ज्यो, उतरत सीतल होत तन।
त्योंही मन को मद उतरिगो, लियो शीश सन्तोष पन॥८॥

8 When I knew but little, I was blind with madness like an elephant and my mind was full of vanity with the idea that I knew all. Now that I have learnt a little by keeping company with wise

men, my vanity has vanished like fever with the idea that I know nothing at all.



क्रिमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगर्हिजुगुप्सित
निरुपमरस प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम् ।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शकते
नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् ।।८।।

जिस तरह कीडो से भरे हुए, लारयुक्त दुर्गन्धित, रस-माँस-हीन मनुष्य के घृणित हाड को आनन्द से खाता हुआ कुत्ता, पास खडे हुए इन्द्र की भी शका नही करता, उसी तरह क्षुद्र जीव जिसका ग्रहण कर लेता है उसकी तुच्छता पर ध्यान नही देता ।।८।।

नीचो का स्वभाव कुत्तो का-सा होता है। जिस तरह कुत्ता बुरी-से-बुरी चीज को आनन्द से खाता है, उसी तरह नीच और स्वार्थी लोग बुरे-से-बुरे कर्म करने अथवा निन्द्य-से-निन्द्य उपायो से जीविका उपार्जन करके पेट भरने मे किसी की शका नही करते। अगर कोई उनको सौ-सौ जूतियाँ मारकर और हजारो गालियाँ देकर भी उन्हें टुकडा देता है, तो भी वे बडे खुश रहते हैं। ऐसे लोग भी ससार मे देखने मे आते हैं, जो लुच्चे-बदमाश, भगी-चमार, चोर-लुटेरे प्रभृति की पीकदान, नरक की मूल वेश्या के बुरे-से-बुरे काम करते हैं, उससे पिट-कुटकर और दुत्कार सुनकर, उसकी झूठी दो रोटियाँ पाने से ही आनन्दित हो जाते हैं। नीच और स्वार्थियो का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे बुरे-से-बुरे काम करने मे नहीं लजाते और जिस निन्द्य कर्म को करने लगते हैं, जिस बुरी आदत को अखत्यार कर लेते है, उसे नही छोडते। न वे लोक-निन्दा की परवाह करते हैं और न परमात्मा से भय खाते हैं।

कूकर सिर कारा परै, गिरै बदन तें लार ।
बुरौ बास विकराल तन, बुरौ हाल बीमार ।।

बुरौ हाल बीमार, हाड सूखे को चाभत।
लखि इन्द्रहु को निकट, कछू उर शक न लावत॥
निठुर महा मनमाँहि, देख घुर्रावत हूकर।
तैसे ही नर नीच, निलज डोलै ज्यो कूकर॥९॥

9. A dog while eating a human bone, which is covered over by whole families of germs and is dripping with saliva and full of vicious smell such as can not be likened to anything good and which is devoid of all flavour and has not an iota of flesh sticking to it, feels no shame even if he sees the god Indra standing by his side So a degenerate person does not care for the propriety or otherwise of any action that he sets himself to.



शिर शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं।
महीध्रादुत्तुगादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गंगेय पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपात शतमुख॥१०॥

गगा पहले स्वर्ग से शिव के मस्तक पर गिरी, उनके मस्तक से हिमालय पर्वत पर गिरी, वहाँ से पृथ्वी पर गिरी और पृथ्वी से बहती-बहती समुद्र मे जा गिरी। इस तरह ऊपर से नीचे गिरना आरम्भ होने पर, गगा नीचे-ही-नीचे गिरी और स्वल्प होती गई। गगा की-सी दशा उन लोगो की होती है, जो विवेक-भ्रष्ट हो जाते हैं। उनका भी अव पतन गगा की ही तरह सौ-सौ तरह होता है॥१०॥

गगा जैसी पतितपावनी सुरनदी, अभिमान के कारण, विष्णुचरणो से लुप्त हुई। वहाँ से शिव के मस्तक पर गिरी। वहाँ से भी हिमालय की चोटी पर

राई। हिमालय की चोटी से पृथ्वी पर आई। पीछे हरिद्वार, प्रयाग, काशी, पटना प्रभृति स्थानो मे वहती-वहती गगासागर के पास समुद्र मे जा गिरी। जो गगा एक दिन सर्वोच्च स्थान—स्वर्ग—मे थी, वही, ज्ञानमार्ग से भ्रष्ट होने के कारण बार-बार नीचे ही गिरती-गिरती, सबसे नीचे स्थान समुद्र मे जा गिरी। वहाँ पहुँचकर उसका अस्तित्व ही लुप्त हो गया—नाम ही मिट गया। इतना अध पतन क्यो हुआ ? केवल विवेक—विचार-शक्ति मे काम न लेने या विवेक को खो देने से। जो ससारी लोग विवेक या विचार-शक्ति से काम नही लेते, जो कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार खो बैठते है, उनकी भी दशा गगा की-सी होती है। उन पर नाना प्रकार की विपत्तियाँ पडती हैं। जिस तरह एक बार अध पतन आरम्भ होकर गगा फिर ऊँची न उठ सकी, उसी तरह वे भी जब नीचे गिरने लगते है, तब ऊँचे नही उठते और एक दिन मिट्टी मे मिल जाते हैं।

विचार-शक्ति ही हमारी सच्ची रक्षिका और मार्ग-प्रदर्शिका है। जो लोग प्रत्येक बुरे और भले काम मे इसकी सलाह नही लेते, अथवा इसका कहना नही मानते, उनकी दुर्गति निश्चय ही होती है। स्वय विष्णु भगवान ने भले और बुरे काम का विचार न करके, जलन्धर की स्त्री वृन्दा का सतीत्व भग किया, तो इसका परिणाम यह हुआ कि उनको नीचा देखना पडा और अब सदा उसे तुलसी के रूप मे सिर पर धारण करना पडता है। उन्होने बौने का रूप धरकर राजा वलि को छला। नतीजा यह हुआ कि उनको उसके दरवाजे का दरवान होना पडा। राजा वलि ने विवेक से काम न लेकर सर्वस्व दान कर दिया। परिणाम यह हुआ कि वह बाँधकर पाताल पठाया गया। चन्द्रवशी राजा नहुष को, विवेक-भ्रष्ट होने से महामुनि अगस्त्य के शाप से, दस हजार वर्ष तक सर्प बनकर रहना पडा। लकेश ने, विवेक-भ्रष्ट होकर, जगज्जननी सीता पर मन डिगाया और उन्हे, रामचन्द्र जी को धोखा देकर लका को ले गया। इसी कारण से उसे सकुल नष्ट होना पडा। कहाँ तक दृष्टान्त दें ? जिसने भी विचार-शक्ति से काम न लिया, उसका अध पतन ही हुआ।

दुनिया मे रोज ही देखते हैं कि जो लोग विचार कर काम नही करते, वे अहर्निश नीचे-ही-नीचे गिरते चले जाते है। अज्ञानी लोग पहले तो परिणाम का

हैं, उनका अध पतन हरगिज नही होता—उन्हे ससार मे दु ख-भोग नही करना पडता । ससार मे विवेक-भ्रष्ट—अपरिणामदर्शी लोग ही दु ख पाते और अपनी हँसी कराते हैं ।

ईशगीश दिवि शैल तजि भू तजि गिरि समुद्र ।
यथा गग तिमि ज्ञान विनु नीचहि गिरते छुद्र ॥१०॥

10. Look how the great Ganga has fallen lower from her high pedestal —from the heaven down on to the head of the god Shiva, thence to the summit of the mountain, from the mountain to the plain earth below and thence down to the sea Similar is the fate of men, devoid of discrimination, who undergo downfall in hundreds of ways

☆

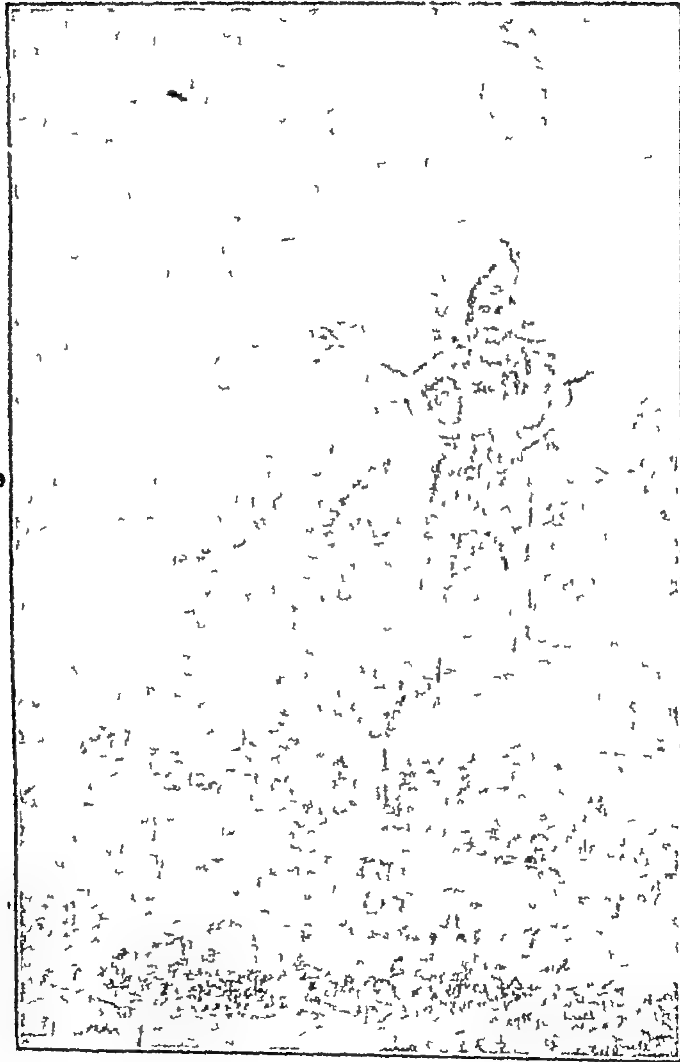
शक्यो वारयितु जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।
व्याधिर्भेषजसग्रहश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विष
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहित मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥११॥

पानी से आग को वुझा सकते है, छाते से धूप को रोक सकते हैं, तेज अ कुश से श्रेष्ठ हाथी को वश मे रख सकते हैं, डण्डे के जोर से दुष्ट बैल और गधे को काबू मे रख सकते है, नाना प्रकार की औषधियो से रोगो को नष्ट कर सकते हैं, विविध मन्त्रो से विष को उतार सकते हैं, शास्त्र मे सबका इलाज है, पर मूर्ख का इलाज नही है ॥११॥

योगिराज के उक्त श्लोक की टक्कर का ही एक श्लोक और किसी विद्वान ने लिखा है । पाठक ! आपके मनोरजनार्थ हम उसे भी यहाँ उद्धृत किये देते हैं—

पोतो दुस्तरवारिराशितरणे दीपोऽन्धकारागमे
निर्वाते व्यजन मदान्धकरिणा दर्पोपशान्त्यै सृणि ।

चित्र न० ८



गगा के दृष्टान्त से मालूम होता है कि विवेक-भ्रष्टो का पद-पद पर सैकडो तरह से पतन होता है।

इत्थ तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिन्ता कृता ।
मन्येदुर्जनचित्तवृत्ति हरणे धातापि भग्नोद्यम ॥

दुस्तर महासागर से पार होने के लिये नाव है, अन्धकार का नाश करने के लिये दीपक है, हवा करने के लिये पखा है, मदमत्त गजराज के घमण्ड का नाश करने के लिये अकुश है । पृथ्वी पर ऐसा कुछ भी नही है, जिसके उपाय की विधाता ने फिक्र न की हो । इसको मानते हुए भी यह कहना पडता है कि दुष्ट की चित्त-वृत्ति का हरण करने के उपाय मे विधाता का भी उद्योग निष्फल हुआ, अर्थात् दुष्ट या मूर्ख की दवा स्वय ब्रह्मा भी न निकाल सका ।

जिस विधाता की चातुरी और कारीगरी को देख कर मनुष्य चकित हो जाता है, जिसने पृथ्वी, आकाश, सूर्य और चाँद तथा अगणित तारागणो की सृष्टि की, जिसने मनुष्य, पशु-पक्षी, जलचर, थलचर और नभचर नाना प्रकार के जीव-जन्तु की रचना की, जो अनन्त और सर्व शक्तिमान है, वह विधाता भी मूर्ख की औषधि न निकाल सका, यह कम आश्चर्य की बात नही है । यहाँ आकर उसका भी दिमाग चक्कर खा गया, तब मनुष्य की क्या सामर्थ्य है, जो जिद पर चढे हुए, अपने को बुद्धिमान समझने वाले मूर्ख की चित्त-वृत्ति को सुधार सके—उसे किसी तरह समझा-बुझाकर राह पर ला सके । मूर्ख किसी की नही मानता और बुद्धिमान दूसरे की उचित बात को फौरन मान लेता है । इसका मुख्य कारण मूर्ख का अपने तईं मूर्ख न समझना है । शेक्सपियर के 'ऐज यू लाइक इट' मे एक जगह लिखा है—"मूर्ख अपने तईं बुद्धिमान समझता है, किन्तु बुद्धिमान अपने तईं मूर्ख है* ।" मूर्ख का अपनी मूर्खता न समझना, अपनी ही बात को सर्वश्रेष्ठ समझना और अपनी निकम्मी अक्ल पर घमण्ड करना ही उसके सदा-सर्वदा मूर्ख रहने का खास कारण है । परमात्मा दुराग्रही मूर्ख से पाला न पटके । बुद्धिमानो को चाहिये कि ऐसे हठीलो से माथा-पच्ची करके अपना समय बर्बाद न करें, क्योकि उन्हे हरगिज कामयाबी न होगी ।

* "The food doth think he is wise, but the wise man knows himself to be a fool"—Shakespeare

जो ऐसो को राह पर लाने की उम्मीद करता है, वह अपने हाथो अपनी मौत का आह्वान करता है। अक्लमन्द उसे भी मूख ही समझते हैं। 'भामिनीविलास' में लिखा है—

हलाहल खलु पिपासति कौतुकेन
कालानल परिचुचुम्बिषति प्रकामम् ।
व्यालाधिपञ्च यतते परिरब्धुमद्धा
यो दुर्जन वशयित कुरुते मनीषाम् ॥

जो मनुष्य दुष्ट को वश मे करने का यत्न करना चाहता है, वह हलाहल विष को पीने, कालाग्नि को चूमने और भयकर नागेन्द्र का आलिगन करने की इच्छा करता है।

मिटै छत्र सो धूप और जल अग्नि बुझावै।
तीखे अ कुश मार, मत्त गज बस मे लावै ॥
दण्ड दिये ते दुष्ट बैल, अरु गदहा मूरख ।
औषधि विविध प्रदान,व्याधि खोवै,चित तू रख ॥
अरु लिखे अनेकन मन्त्र जिमि हरहिं जु विपता सबन की ।
नहि इक औषधि जगत मे, दहै मूर्खता कुजन की ॥११॥

11. Fire can be put down by water, protection from the sun can be effected by an umbrella, an elephant can be curbed by a sharp pointed Ankusha weapon, headstrong bull or an ass can be controlled by a stick, a disease can be cured by medicines or various preventive measures and the effects of poision can be nullified by the chanting of mantras. There is a special remedy for every thing given in the Shastras, but there is no remedy for an ignorant person.

☆

साहित्यसगीतकला विहीन
साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीन ।
तृण न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भागधेय परम पशूनाम् ॥१२॥

जो मनुष्य साहित्य और सगीत-कला से विहीन है, यानी जो साहित्य और सगीत-शास्त्र का जरा भी ज्ञान नही रखता, या इनमे अनुराग नही रखता, वह बिना पूंछ और सीग का साक्षात् पशु है। यह घास नही खाता और जीता है, यही इतर पशुओ का परम सौभाग्य है ॥१२॥

जो मनुष्य काव्य, अलकार और न्याय प्रभृति का ज्ञान नही रखता—इससे अनुराग नही रखता, गान-विद्या मे रुचि नही रखता, उसका मर्म नही जानता, वह मनुष्य होने पर भी, मनुष्य नही, बल्कि बिना दुम और सीग का जानवर है। वह घास नही खाता और जीता है, यह अन्य पशुओ का सौभाग्य है। अगर वह भी कही घास खाता होता, तो बेचारे पशुओ को अपना पेट भरना कठिन हो जाता—बेचारे घास बिना भूखो मर जाते है।

जन्म लेने के समय मनुष्य के बच्चे और पशु के बच्चे मे कोई फर्क नही होता। दोनो ही ज्ञान-हीन पशु होते हैं। केवल रूप, रग और आकृति मे फर्क रहता है, सो यह भेद तो पशुओ मे भी रहता है। पशु भी अनेक प्रकार के होते हैं। उनमे ही मनुष्य भी एक प्रकार का पशु ही होता है। मनुष्य जब विद्यार्ज्जन करता है, नाना प्रकार के ग्रन्थ पढता है, विद्वानो की सगति करता है, तब उसे ज्ञान होता है, वह हिताहित और कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने लगता है। तभी वह पशु से मनुष्य बनता है। मनुष्य और पशु मे इतना ही भेद होता है कि मनुष्य मे ज्ञान और विवेक होता है, पर पशुओ मे यह नही होता। अगर मनुष्य भी अज्ञानी और निरक्षर हो, तो वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नही। कहा है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणां ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।

मनुष्य खाते-पीते हैं, पशु भी खाते-पीते हैं, मनुष्य सोते हैं, पशु भी सोते हैं, मनुष्य डरते हैं, पशु भी डरते हैं, मनुष्य मैथुन करते हैं, पशु भी मैथुन करते है। ये चारो काम मनुष्य और पशु समान रूप से करते हैं। फिर मनुष्य और पशुओ मे भेद क्या ? बस भेद यही है कि मनुष्यो मे धर्म-ज्ञान होता है, किन्तु पशुओ मे यह नही होता। धर्म-ज्ञान से ही मनुष्य मनुष्य कहलाता है और धर्म-ज्ञान के अभाव मे पशु पशु कहलाता है। स्विन्नाक नामक एक पाश्चात्य विद्वान ने भी यही बात कही है। वह कहते हैं—"विद्या मनुष्य का गुणोत्कर्ष है, जिससे वह साधारण रूप से इतर पशुओ से विभिन्न समझा जाता है।"

अँगरेजी मे और हमारे यहाँ भी एक कहावत है—"कोई भी मनुष्य माँ के पेट से बुद्धिमान और विद्वान नही पैदा होता।" सभी पढ-लिख कर और अनुभव प्राप्त करके विद्वान और बुद्धिमान हो जाते हैं। मनुष्य को इस ससार मे जीवन का बेडा सुख से पार करने के लिये, आगे की यात्रा के लिए अच्छी-अच्छी तैयारियाँ करने के लिये, साहित्य (Literature) और सगीत-शास्त्र (Music) मे जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। साहित्यावलोकन से मनुष्य के ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, उन पर पडा हुआ पर्दा हट जाता है। वह स्वार्थ और परमार्थ दोनो की सिद्धि मे सफलता लाभ करता है, इस लोक मे सुख से जिन्दगी बसर करता और मरने पर स्वर्ग मे जाकर देवताओ के समान आनन्द करता है, अथवा जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाकर नित्य सुख भोगता है।

एक दिन हमारे देश मे सगीत-शास्त्र—गान-विद्या या स्वर-शिक्षा का बडा आदर था। लोग इस कला मे अच्छी निपुणता लाभ करते थे। कोई ३०० साल हुए, अकबर के जमाने मे ही, तानसेन जैसे सगीत-कला-मर्मज्ञ हो गये हैं। सुनते हैं, उन्होंने 'दीपक राग' से दीपक जला दिये थे। रावण ने अपनी स्वर-विद्या से ही शिवजी को मोहित करके मनमाने वर लाभ किये थे। 'पचतन्त्र' मे लिखा है—

नान्यद्गीतात्प्रिय लोके देवानामपि दृश्यते ।
शुष्कस्नायुस्वराह्लादात्त्र्यक्ष जग्राह रावण ॥

ससार मे गीत से अधिक प्यारी चीज और नही है । तपस्या के कारण से इन्द्रियो के सूख जाने पर भी, रावण ने 'स्वर' से ही शिवजी को अपने वशीभूत किया था ।

हमारे नारद जी इस कला मे कैसे निपुण हैं, इसे कौन नही जानता ? श्रीकृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि से व्रजबालायें, अपने पतियो को सोते छोड कर, अपने प्राण प्यारे बालको को विसार कर, कृष्ण भगवान की सेवा मे पहुँचती थी । भगवान की बाँसुरी की रसीली ध्वनि से एक दिन जमुना का वहना और चन्द्रमा का चलना बन्द हो गया था । इस पर पशु भी मुग्ध हो जाते है । हिरन वसी की ध्वनि से व्याधा के वन्धन मे पड कर प्राण दे देता है । सर्प जैसा भयकर जन्तु भी मदारी की पु गी की ध्वनि पर नाचने लगता है, तव मनुष्यो का क्या कहना ?

पाश्चात्य विद्वानो ने भी इस विद्या की कम तारीफ नही की है । जगद्-विजयी सम्राट-कुल-तिलक नेपोलियन ने कहा है—"सगीत का, सब विद्याओ की अपेक्षा, मनुष्य के चित्त पर सब से अधिक प्रभाव पडता है, इसलिए आईन बनाने वाले को इसे सबसे अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए ।" लूथर महोदय कहते हैं—"सगीत मनुष्यो को अधिक भव्य, सभ्य, विनीत, नम्र तथा विवेकी और न्यायी बनाता है ।" एडीसन महोदय कहते हैं—"सगीत ही इन्द्रियो को आनन्दित करने वाला एकमात्र ऐसा विषय है जिसका मनुष्य यदि अधिकता से भी उपभोग करे तो भी उससे उसके नैतिक और धार्मिक विचारो को हानि नही होती ।" विथोविन साहब कहते है—"सगीत आत्मिक और दैहिक जीवन का मध्यस्थ है ।" बोवी महाशय कहते हैं—"सगीत हमारी चार बडी आवश्यकताओ मे से एक है—पहली आवश्यकता भोजन है, दूसरी पोशाक है, तीसरी आश्रय-स्थान है और चौथी सगीत या गान-वाद्य कला है ।" लूथर महाशय और भी कहते है—"सगीत भविष्य-वक्ताओ की विद्या है । इस एक मात्र विद्या से ही अशान्त या उद्विग्न आत्मा को शान्ति मिल सकती है ।" एक और महाशय कहते

है—"संगीत में वह जादू है, जो निष्ठुर पशुवत् हृदयों को भी शान्त कर सकता है।" कहिये पाठक! अब तो आपने संगीत-विद्या की गुणावलि समझी? यह वह विद्या है जिस पर मत्त होकर सिपाही रणभूमि में हँसता हुआ अपने प्राण दे देता है।

साराश यह है, कि साहित्य और संगीत-विद्या दोनों ही मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली और मानव जीवन के लिए परमावश्यक हैं। जो इन दोनों से कोरे है, वे निस्सन्देह पशु हैं। मनुष्य मात्र को इन दोनों से अनुराग रखना चाहिये। काम-धन्धों से जो समय मिले उसे सोने, कलह करने या ताश-चौपड़ में न गँवा कर, इनमें लगाना चाहिये। इनमें जो आनन्द है, उसे हम लिख कर बता नहीं सकते। बुद्धिमानों का समय इनमें ही जाता है। कहा है:—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

काव्य और शास्त्र के आनन्द में ही बुद्धिमानों का समय बीतता है। मूर्खों का समय व्यसन, निद्रा और लड़ने-झगड़ने में जाता है।

गीत कला साहित्यहू, नहिं सीख्यो नर जौन।
सींग पूँछ बिन पशु पर, तृण नहि खाते तौन॥१२॥

12 A man destitute of literary or musical attainments is a very beast minus tail and horns. He does not eat grass, but still lives on and so is a very remarkable member of the beast family

*

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥१३॥

जिन्होने न विद्या पढी है, न तप किया है, न दान ही दिया है, न ज्ञान ही उपार्जन किया है, न सच्चरित्रो का-सा आचरण ही किया है, न गुण ही सीखा है, न धर्म का अनुष्ठान ही किया है—वे इस लोक मे पृथ्वी का बोझा वढाने वाले मनुष्य की सूरत-शक्ल मे पशु हैं।

जिन्होने न्याय, नीति, वेदान्त आदि शास्त्रो का अध्ययन नही किया है, जिन्होने मधुसूदन की भक्ति नही की है, जिन्होने समाधि लगाकर मुकुन्द के चरण-कमलो का ध्यान नही किया है, जिन्होने सत्पात्रो को दान नही दिया है, जिन्होने गरीब मुहताजो के कष्ट निवारण नही किये हैं, जिन्होने शास्त्रीय और लौकिक ज्ञान सम्पादन नही किया है, जिन्होने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान लाभ नही किया है, जिन्होने भले आदमियो का-सा आचरण नही किया है, जिन्होने शील-व्रत धारण नही किया है, जिन्होने गुणो का उपार्जन नही किया है, जिन्होने धर्म-कार्य नही किये हैं—उन्होने इस दुनिया मे, वृथा पृथ्वी का भार वढाने के लिये, पशुओ की तरह जन्म लिया है। वे शूरत-शक्ल या आकृति से मनुष्य हैं, पर वास्तव मे जानवर हैं। 'हितोपदेश' मे लिखा है—

दाने तपसि शौर्य्ये च यस्य न प्रथित यशः।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव स ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

दान, तप, वहादुरी, विद्या और धनार्ज्जन मे जिसने नाम नही कमाया है, वह महतारी के मल-मूत्र के समान है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमे से जिसे एक की भी प्राप्ति नही हुई, उसका जन्म लेना बकरी के गले के स्तनो की भाँति वृथा ही है। परम नीतिज्ञ महात्मा शेख सादी ने भी कहा है—

चूँ इन्सांरा न बाशद फजलो ऐहसां।
चे फर्कज आदमी ता नक्श दीवार।

हाजी ते नेस्ती शुतरस्त अज बराये आंके।
बेचार खार मी खुरद या वार मी वरद ॥

यदि मनुष्य मे गुण सम्पादन करने और परोपकार करने की इच्छा न हो, तो उसमे और दीवार पर खिचे चित्र मे क्या अन्तर है ? जिस हाजी मे दया आदि सद्गुण नही हैं, उससे वह ऊँट अच्छा, जो काँटे खाकर बोझ उठाता है।

और भी कहा है—पूर्ण वयस्क वही मनुष्य है, जो सासारिक वासनाओ से मन हटा कर ईश्वर को प्रसन्न करने के उद्योग मे लगा रहता है। जिसमे यह बात नही, उसे विद्वान पूर्ण वयस्क—जवान नही समझते। पानी की एक बूँद ने चालीस दिन तक माँ के पेट मे रह कर मनुष्य का रूप प्राप्य किया। अगर किसी पूरी उम्र के आदमी मे समझ, ज्ञान और सच्चरित्रता या शील न हो, तो उसे मनुष्य न कहना चाहिए।

विद्या दान न ज्ञान तप, शील धर्म गुन हीन।
विचरहिं ते नररूप पशु, भूमि-भार अति दीन ॥१३॥

13 Those who neither possess knowledge nor perform penances, who do not cultivate habits of charity and self-realisation, and who have neither politeness nor capability nor a sense of duty, are only a burden of this earth and roam over it like beasts in the shape of men



वर पर्वतदुर्गेषु भ्रान्त वनचरै सह।
न मूर्खजनसम्पर्क सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१४॥

सिंह, व्याघ्र प्रभृति वनपशुओ के साथ घूमना अच्छा, पर मूर्ख का सहवास इन्द्रभवन मे भी भला नही ॥१४॥

मनुष्य के पहुँच सकने योग्य दुर्गम पहाडो और भयानक घोर जगल मे सिंह, वयाघ्र आदि हिंसा करने वाले जानवरो मे रह कर जिन्दगी को खतरे मे

डालना कही अच्छा, पर मूर्ख के साथ मेल-जोल, दोस्ती और परिचय करके स्वर्ग-समान सुखो का भोगना किसी दशा मे भी भला नही। दरिद्रता का जीवन-यापन करना भला, पर मूर्ख या दुष्ट के साथ अमीरी के सुख भोगना भला नही।

किसी और महापुरुष ने भी कहा है—

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो
वर वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधू ।
वर वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे
वर प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥

सूनी ग्वाड भली, पर दुष्ट बैल अच्छा नही, वेश्या-पत्नी अच्छी, पर दुश्चरित्रा कुलवधू भली नही, वन मे वसना अच्छा, पर अविवेकी–अविचारवान के राज्यो में रहना भला नही; मर जाना भला, पर नीच का सग करना अच्छा नही।

ईसाइयों की 'इञ्जिल' मे लिखा है—"बुद्धिमानो की झिडकियाँ सुनना भला, पर मूर्खों के गीत सुनना अच्छा नही।"* और यह भी कहा है—"जो बुद्धिमानो की सगति करता है, वह निश्चय ही बुद्धिमान हो जायगा। किन्तु मूर्खों के साथ रहने वाला अवश्य नष्ट हो जायगा।" †

'हितोपदेश' मे कहा है —

त्यज दुर्जनससर्ग भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्र स्मर नित्यमनित्यताम् ॥

दुर्जनो का ससर्ग त्याग, सज्जनो का सग कर और सदा ससार की अनित्यता का ध्यान रख कर, दिन-रात पुण्य सचय कर।

---

* "It is better for a man to hear the rebuke of the wise than to hear the song of fools"—Bible

† "He that walketh with wise man shall be wise, but a companion of fools shall be destroyed"–Bible

भी अन्धकाराच्छन्न हो गया। शास्त्र और नीति को पढ कर जो अपूर्व ज्ञान उसने सचित किया था, वह सब नष्ट हो गया। रही-सही भी बुद्धि नष्ट हो गई। इसी से विभीषण, कुम्भकरण, मन्दोदरी प्रभृति हितचिन्तको के समझाने से भी वह न माना और जगत्पति रामचन्द्र जी से लडने को तैयार हो गया। परिणाम जो हुआ, उसे ससार मे कौन नही जानता है? जिसके घर मे एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे, उसके घर मे दिया जलाने वाला भी न रहा! यह सब क्यो हुआ? एकमात्र मूर्खा सूर्पणखा की कुसगति और कुमन्त्रणा से। कहते हैं, दुष्ट का पडौस भी बुरा। रावण के पडौस मे बसने से वेचारा समुद्र वृथा ही बाँधा गया। अगर वह रावण जैसे नीच के पडौस मे नही होता, तो उसकी दुर्गति क्यो होती? दुष्ट तो कुकर्म करते हैं, उनका फल भले आदमियो को भी भोगना पडता है। 'हितोपदेश' मे लिखा है—

खल. करोति दुर्वृत्त नून फलति साधुषु।
दशाननोऽहरत्सीता बन्धन स्यान्महोदधे ॥

खल—दुष्ट जो दुष्कर्म करता है, उसका फल साधुओ को निश्चय ही भोगना होता है। रावण ने सीताहरण किया और समुद्र वेचारा बाँधा गया।

अगर हम मूर्ख-ससर्ग के दोषो को इसी तरह समझाते चले जायेंगे, तो इसी विषय से एक बडा पोथा तैयार हो जायगा। यह हमारा अभीष्ट नही, इसलिए मूर्ख की परिभाषा समझा कर ही, हम इस विषय को समाप्त करेंगे, क्योकि नासमझ और नातजुर्बेकार लोग केवल अपढ—निरक्षरो को ही मूर्ख समझते हैं, पर मूर्ख पढे-लिखे भी होते हैं और विना पढे भी। जर्मनो मे एक कहावत है—"पढे-लिखे मूर्ख सब मूर्खों से खतरनाक होते हैं।" मनुष्य की अपढ मूर्खों से जितनी बुराई होती है, उसकी अपेक्षा पढे-लिखे मूर्खों से बहुत अधिक होती है। निरक्षर मूर्ख साधारण सर्पो के समान हैं, किन्तु साक्षर—पढे-लिखे मूर्ख मणिधारी काल सर्प के समान भयकर होते हैं।

असल वात यह है, जो मनुष्य मूर्खों के-से काम करे, वही मूर्ख है, चाहे वह पढा-लिखा हो और चाहे अपढ हो। शेखसादी ने यही वात कही है—

इल्म चन्दां कि वेश्तर खानी ।
च अमल नेस्त दर तो नादानी ।।
न मुहक्किक बुवद न दानिशमन्द ।
चारपाये बरो किताबे चन्द ।।

जो पढे-लिखे मनुष्य मूर्खों के-से काम करते हैं, पढे-लिखे मूर्ख हैं। किसी गधे पर यदि कुछ ग्रन्थ लाद दिये जायँ तो क्या वह उनसे विद्वान या बुद्धिमान वन सकता है ?

चन्दन का भार उठाने वाला गधा केवल भार की बात जानता है, वह चन्दन और उसके गुणो को नही जानता। इसी तरह जो लोग अनेक शास्त्रो को पढ तो लेते हैं, पर शास्त्रो के उपदेशानुसार नही चलते, वे मूर्ख गधे ही हैं। ऐसो को खाली अहङ्कार हो जाता है। इससे उनकी मूर्खता और भी भयकर हो जाती है। अंगरेजी मे एक कहावत है—"विद्या से मनुष्य वुद्धिमान हो जाता है, किन्तु मूर्ख उससे और भी मूर्ख हो जाता है।" गुलिस्ताँ मे लिखा है—'निकम्मे लोहे से कोई भी अच्छी तलवार नही बन सकती। अक्लमन्दो ! सुनो, बदजात नालायक को नेक बनाना असम्भव है। मेह क्या बगीचा और क्या ऊसर जमीन, सर्वत्र एक-सा जल वरसाता है, पर बगीचो मे लाल फूलते हैं और ऊसर मे घास उपजती है। ऊसर जमीन मे कभी सम्बुल नही लगता।" इसका यही मतलब है, कि जिनमे स्वाभाविक योग्यता होती है, वे ही विद्या से वुद्धिमान वन जाते हैं।

बकिल नामक एक विद्वान कहते हैं—"विषयो से परिचित होना यथार्थ विद्या नही है, किन्तु विषयो का प्रयोग करना यथार्थ विद्या है। उससे मनुष्य खाली अहङ्कारी बनता है और इससे दार्शनिक पण्डित होता है।" हमारे भारत के भूतपूर्व स्टेट सेक्रेटरी जान मारले ने भी कहा है—"यह समझना बडी गलती है, कि हमने अमुक उच्च श्रेणी के ग्रथ को एक, दो या दस बार पढ लिया, बस, सब हो गया। तुम्हे अपनी रोजाना जिन्दगी मे उसे अपना साथी

और भी कहा है—

न स्थातव्य न गन्तव्य दुर्जनेन समं क्वचित् ।
काकसगाद्धतो हसस्तिष्ठ गच्छश्च वर्त्तक ॥

दुष्ट के साथ न रहना चाहिये और न उसके साथ चलना चाहिये। कव्वे के साथ रहने से हस और साथ चलने से बटेर मारा गया।

शेखसादी ने भी कहा है—"जो दुष्ट की सगति करता है, वह भला आदमी नही बनता। फरिश्ता यदि शैतान की सगति करता है, तो चोरी और धूर्तता ही सीखता है।"

मनुष्य जैसे की सगति करता है, वैसा ही हो जाता है। हीन की सगति से हीन, समान की सगति से समान और उच्च की सगति से उच्च हो जाता है। जो मूर्ख और दुष्टो की सगति करता है, वह स्वय मूर्ख हो जाता और अपनी तथा अपने मूर्ख साथियो की सगति से विविध प्रकार के क्लेश और दुख भोगा करता है, इसलिये मूर्ख और दुष्टो के सग रहने-सहने, चलने-फिरने और बोलने-चालने तक की मनाही की है, क्योकि दुष्ट अपने अच्छे-से-अच्छे साथी को अपने जैसा बना लेते हैं।

कुसग सर्वथा परित्याज्य है। कुसग के समान सर्वनाशक और कुछ भी नही है। जिन लोगो का अध पतन हुआ है उनसे पूछिये, तो उनमे से प्राय सभी अपने अध पतन का कारण कुसग ही बतायेंगे। ससार मे कुपथगामियो की सख्या बहुत है। ये लोग भले आदमियो को खराब-खराब किस्से-कहानियाँ सुनाकर, लदन रहस्य, छबीली भटियारी, तोता-मैना के किस्से प्रभृति पुस्तको के पढने का चसका लगाकर, वेश्याओ के यहाँ ले जाकर, थियेटर के तमाशे दिखाकर—अनेक प्रकार के आचरण करके और प्रलोभन देकर, बेदाग आदमियो को भी खराब कर देते हैं। मूर्खों के साथ रहकर मनुष्य लडना-भिडना, जुआ खेलना, चोरी करना, शराब पीना, ऐयाशी करना—ऐसे-ऐसे ही गन्दे काम सीखता है।

मूर्ख और दुष्टो के साथ रहने से काम, क्रोध, लोभ, मोह की उत्पत्ति होती है और स्मृति तथा बुद्धि का नाश होता है। नीचो के दृष्टान्त से उनके साथ कुसगीत सुनने और खराब पुस्तकें पढ़ने से मनुष्य के दिल मे स्वभाव से ही

भी अन्धकाराच्छन्न हो गया। शास्त्र और नीति को पढ कर जो अपूर्व ज्ञान उसने सचित किया था, वह सब नष्ट हो गया। रही-सही भी बुद्धि नष्ट हो गई। इसी से विभीषण, कुम्भकरण, मन्दोदरी प्रभृति हितचिन्तको के समझाने से भी वह न माना और जगत्पति रामचन्द्र जी से लडने को तैयार हो गया। परिणाम जो हुआ, उसे ससार मे कौन नही जानता है ? जिसके घर मे एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे, उसके घर मे दिया जलाने वाला भी न रहा ! यह सब क्यो हुआ ? एकमात्र मूर्खा सूर्पणखा की कुसगति और कुमन्त्रणा से। कहते है, दुष्ट का पडौस भी बुरा। रावण के पडौस मे बसने से बेचारा समुद्र वृथा ही बाँधा गया। अगर वह रावण जैसे नीच के पडौस मे नही होता, तो उसकी दुर्गति क्यो होती ? दुष्ट तो कुकर्म करते हैं, उनका फल भले आदमियों को भी भोगना पडता है। 'हितोपदेश' मे लिखा है—

खलः करोति दुर्वृत्त नून फलति साधुषु।
दशाननोऽहरत्सीता बन्धन स्यान्महोदधेः ॥

खल—दुष्ट जो दुष्कर्म करता है, उसका फल साधुओं को निश्चय ही भोगना होता है। रावण ने सीताहरण किया और समुद्र बेचारा बाँधा गया।

अगर हम मूर्ख-ससर्ग के दोषो को इसी तरह समझाते चले जायेंगे, तो इसी विषय से एक बडा पोथा तैयार हो जायगा। यह हमारा अभीष्ट नही, इसलिए मर्ख की परिभाषा समझा कर ही, हम इस विषय को समाप्त करेंगे, क्योंकि नासमझ और नातजुर्बेकार लोग केवल अपढ—निरक्षरो को ही मूर्ख समझते हैं, पर मूर्ख पढे-लिखे भी होते हैं और विना पढे भी। जर्मनो मे एक कहावत है—"पढे-लिखे मूर्ख सब मूर्खों से खतरनाक होते हैं।" मनुष्य को अपढ मूर्खों से जितनी बुराई होती है, उसकी अपेक्षा पढे लिखे मूर्खों से बहुत अधिक होती है। निरक्षर मूर्ख साधारण सर्पों के समान हैं, किन्तु साक्षर—पढे-लिखे मूर्ख मणिधारी काल सर्प के समान भयकर होते हैं।

असल बात यह है, जो मनुष्य मूर्खों के-से काम करे, वही मूर्ख है, चाहे वह पढा-लिखा हो और चाहे अपढ हो। शेखसादी ने यही बात कही है—

इल्म चन्दाँ कि बेश्तर खानी ।
च अमल नेस्त दर तो नादानी ॥
न मुहक्किक बुवद न दानिशमन्द ।
चारपाये बरो किताबे चन्द ॥

जो पढे-लिखे मनुष्य मूर्खों के-से काम करते हैं, पढे-लिखे मूर्ख है । किसी गधे पर यदि कुछ ग्रन्थ लाद दिये जायें तो क्या वह उनसे विद्वान या बुद्धिमान बन सकता है ?

चन्दन का भार उठाने वाला गधा केवल भार की बात जानता है, वह चन्दन और उसके गुणो को नही जानता । इसी तरह जो लोग अनेक शास्त्रो को पढ तो लेते हैं, पर शास्त्रो के उपदेशानुसार नही चलते, वे मूर्ख गधे ही हैं । ऐसो को खाली अहङ्कार हो जाता है । इससे उनकी मूर्खता और भी भयकर हो जाती है । अंगरेजी मे एक कहावत है—"विद्या से मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है, किन्तु मूर्ख उससे और भी मूर्ख हो जाता है ।" गुलिस्ताँ मे लिखा है—'निकम्मे लोहे से कोई भी अच्छी तलवार नही बन सकती । अक्लमन्दो ! सुनो, बदजात नालायक को नेक बनाना असम्भव है । मेह क्या बगीचा और क्या ऊसर जमीन, सर्वत्र एक-सा जल बरसाता है, पर बगीचो मे लाल फूलते है और ऊसर मे घास उपजती है । ऊसर जमीन मे कभी सम्बुल नही लगता ।" इसका यही मतलब है, कि जिनमे स्वाभाविक योग्यता होती है, वे ही विद्या से बुद्धिमान बन जाते हैं ।

बकिल नामक एक विद्वान कहते है—"विषयो मे परिचित होना यथार्थ विद्या नही है, किन्तु विषयो का प्रयोग करना यथार्थ विद्या है । उससे मनुष्य खाली अहङ्कारी बनता है और इससे दार्शनिक पण्डित होता है ।" हमारे भारत के भूतपूर्व स्टेट सेक्रेटरी जान मारले ने भी कहा है—"यह समझना बडी गलती है, कि हमने अमुक उच्च श्रेणी के ग्रंथ को एक, दो या दस बार पढ लिया, बस, अब हो गया । मुझे अपनी [illegible] जिन्दगी मे ऐसे [illegible] साथी

बनाना चाहिये।" बात यह है, जो पढो उस पर विचार करो और उसको अपने जीवन मे प्रयोग करके अनुभव प्राप्त करो।

बहुत ही कम लोग ऐसा करते हैं। लोग पढते है, सो करते नही, उत्तमोत्तम सारपूर्ण निबन्ध लिखते है, परमोत्तम कवितायें करते है पर आप स्वय वैसे उत्तम कर्म नही करते। मैंने स्वय अनेक लोग ऐसे देखे हैं, जो सच-मुच ही लिखने मे कमाल करते है। विद्या-वुद्धि के कारण उनकी सुख्याति भी बहुत है। पर जब मैंने उनके भीतरी चरित्रो पर निगाह दौडाई, तो मालूम हुआ कि उन जैसे नीच, निर्दयी, कपटी, अहकारी बहुत कम लोग हैं। उनसे निरक्षर ग्रामीण लाख दर्जे उत्तम हैं। वे पढे-लिखे मूख, अपनी सामान्य विद्या के कारण, मदोन्मत्त हाथी से भी अधिक मतवाले रहते है। उनके अहकार की सीमा नही। जिनमें अहकार है, उन्हे विद्वान कौन कह सकता है? जो अहकारी है, उसमे कौन-सा दुर्गुण नही? विद्या का फल अहकार का नाश होना है। जिनमे अहकार है, वे तो मूर्खों के राजा हैं। बकौल शेखसादी, वे उस वर्र के समान है, जो डङ्क तो मारती है, किन्तु मधु नही देती। उनसे मनुष्यो को कष्ट ही होता है।

अब बहुत हो गया। समझदारो को सब तरह के मूर्खों से सदा अलग रहना चाहिए। मूर्खों की छाया भी भली नही। दुष्टो का जरा-सा ससग भी बुरा। एक बार एक कारखाने के स्वामी मेरे यहाँ आकर ठहरे। मैने उन्हें ऊँचे दर्जे का आदमी समझ कर, उनकी बडी आव-भगत की। उनके लिए नाना प्रकार के षट्रस भोजन बनवाये और चाँदी-सोने के बर्तनो मे परोस कर खिलाये और भी सब तरह से उनकी खातिर की। नतीजा यह हुआ कि वे कुढ गये और मेरे सर्वनाश की बन्दिशें बाँधने लगे। उनसे जो बना, उसमे उन्होने घाटा न रखा। परमात्मा की दया से मेरा बाल भी बाँका न हुआ। महामुनि वसिष्ठ जी ने, महाराज विश्वामित्र को अपने आश्रम मे टिकाकार, क्या-क्या आफतें नही उठाई? इसी से कहा है —

वक्रं क्रूरतरैर्दुर्व्वैर्न कुर्य्यात्प्रीतिसगतिम्।
वसिष्ठस्याहरद्धेनु विश्वामित्रो निमन्त्रित॥

अर्थात्

कुटिल क्रूर लोभी मनुज, करे न संगति ताहि।
ऋषि वसिष्ठ-धेनू हरी, विश्वामित्र जु चाहि॥

पर ऐसे दुष्टो को पहचानना सहज नही। आप किसी की विद्या-बुद्धि का हाल कदाचित् एक ही दिन मे जान लें, पर उसके मानसिक दोषो का पता आपको वर्षों मे भी नही लग सकता। इसलिये शीघ्र ही किसी पर विश्वास न कर लेना चाहिये—शीघ्र ही उसे अपना साथी न बना लेना चाहिये, चाहे वह कैसा ही विद्वान और हँसमुख क्यो न हो। अगर किसी मूर्ख से पाला पड गया, तो आपको दिन मे तारे दीख जायँगे। गोल्डस्मिथ ने कहा है—"मूर्खों की संगति, आरम्भ मे यदि हमे हँसा भी दे, तो भी, अन्त मे, वह हमे गमगीन बनाये बिना न रहेगी।"*

चाणक्य ने कहा है—

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपद पशु।
भिनत्ति वाक्यशल्येन अदृशं कटको यथा॥

मूर्ख से दूर रहना ही उचित है, क्योकि वह देखने मे मनुष्य है, पर यथार्थ मे दो पाँव का पशु है। जिस तरह अन्धे को काँटा बेधता है, उसी तरह वह अपने वाक्य-रूपी शल्य से मनुष्य के हृदय मे छेद कर देता है।

वनचर सँग रहबो सुखद, बन पर्वत के माहिं।
पै मूरख-संग स्वर्गहू, दुखयुत संशय नाहिं॥१४॥

14 It is better to wander over hills or forests in the company of wild animals rather than to live in the society of ignorant men in the palaces of Indra (the god of Paradise.)



* 'The company of fools may at first make us smile, but at last never fails of rendering us melancholy' —Goldsmith

विद्वानों की प्रशंसा

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिर शिष्यप्रदेयागमा
विख्याता कवयो वसन्ति विषये यस्य, प्रभोर्निर्धना ।
तज्जाडच वसुधाधिपस्य कवयो ह्यर्थं विनापीश्वरा
कुत्स्या स्यु कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घत पातिता ।।१५।।

जिन कवियो की वाणी शास्त्राध्ययन की वजह से शुद्ध और सुन्दर है, जिनमे शिष्यो के पढाने को योग्यता है, जो अपनी विद्या के लिये सुप्रसिद्ध है—ऐसे विद्वान जिस राजा के राज्य मे निर्धन रहते हैं, वह राजा निस्सन्देह मूर्ख है। कविजन तो बिना धन के भी श्रेष्ठ ही होते है। रत्नपारखी यदि किसी बहुमूल्य रत्न का मोल घटा दे, तो रत्न का मूल्य कम न हो जायगा। रत्न का मूल्य तो जितना है, उतना ही बना रहेगा। हाँ, मूल्य घटाने वाला अनाडी समझा जायगा ।।१५।।

जो राजा शुद्ध और मधुर वाणी बोलने और शिष्यो को सम्पूर्ण शास्त्रो की शिक्षा देने की योग्यता रखने वाले सुप्रसिद्ध विद्वानो की कदर नही करता, उनसे राज-काज मे सलाह नही लेता, उनको उनकी योग्यतानुसार पद देकर उनका धनाभाव नही मिटाता,—वह राजा निस्सन्देह मूर्ख है—वह स्वय विद्वान नही है। अगर उसने स्वय विद्याध्ययन किया होता, तो निश्चय ही पण्डितो की कदर करता। राजा की बेकदरी से विद्वानो की योग्यता नही घट जाती, किन्तु राजा की मूर्खता ही प्रकट होती है। यदि कोई मूर्ख हीरे को पाकर फेंक दे तो क्या हीरे की कीमत कम हो जायगी ? जगलो मे भील, कोल आदि जगली लोग गजमोतियो को पाकर भी फेंक देते है। क्या उनके फेंक देने से मोतियो का मूल्य घट जाता है ? जब वे सच्चे जौहरियो के हाथ पड जाते हैं तब उनका यथार्थ आदर होता ही है। गुणी लोग ही गुणवानो की कदर करते

हैं—वे ही उनसे सन्तुष्ट होते हैं। निर्गुणियो को गुणियो से कभी भी प्रसन्नता नही होती। भौंरे दूर से भी आकर कमल का मधु-पान करते है, पर मेढक रात-दिन पास रहकर भी उसका मजा नही लेता मेढको की अजानकारी या बेकदरी से कमलो का क्या घट जाता है? शेख़सादी ने कहा है —

आलिम अन्दर मयाने जाहिल रा।
मस्ले गुफ्तह अन्द, सद्दीकां ॥
शाहिदे दर मयाने कोरानस्त।
मसहफे दर मयाने जिन्दीकां ॥

विद्वानो की कदर विद्वान ही करते है। मूर्खों मे विद्वानो की वही दशा होती है, जो किसी सुन्दरी की अन्धो मे और धर्म पुस्तक की नास्तिको में। और भी कहा है—

पण्डित जन को श्रम-मरण,जानत जे मति-धीर।
कबहुँ बाँझ न जानही, तन प्रसूत की पीर ॥
मूरख गुण समझे नहीं, तो न गुणी मे चूक।
कहा भयो दिन को विभो? देखो जो न उलूक ॥
बिरले नर पण्डित गणो, बिरले बूझनहार।
दुखखण्डन बिरले पुरुष, ते उत्तम ससार ॥

पण्डितो को राजाओ या अमीरो की बेकदरी से मन मे दुखित न होना चाहिए। उनके पास यदि उत्तम विद्या है, तो क्या घाटा है? विद्या स्वय अक्षय धन है। एक मूर्ख की अवज्ञा से क्या होगा? कोई-न-कोई गुणग्राहक मिल ही जायगा। उनके दु खित चित्त के सन्तोष-विधानार्थ हम 'भामिनी-विलास' की एक अन्योक्ति यहाँ उद्धृत कर देना उचित समझते है—

कमलिनी मलिनी करोषि चेत किमिति, बकैरवहेलिताऽनभिज्ञै।
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते जगति भवन्तु चिराद्युषो मिलिन्दा ॥

हे कमलिनी! अगर तेरे मकरन्द के मर्म को समझने वाले भौंरे ससार मे जीते है, तो मूर्ख बगुलो की अवज्ञा से अपने मन को क्यो दु खी करती है?

सव ग्रन्थन को ज्ञान, मधुर वानी जिनके मुख ।
नित-प्रति विद्या देत, सुयश को पूर रह्यो सुख ।
ऐसे कवि जिहि देश, वसत निर्धनता लहि अति ।
राजा नाहिं प्रवीन, भई याही ते यह गति ।
वे है विवेक सम्पत सहित,सव पुरुपन मे यतिहि वर ।
घट कियो रतन को मोल जिन,तेई जौहरी कुनर ॥१५॥

15. If the poets of reputed fame, whose speech is beautified by elegant expressions derived out of the sacred bore of Shastias and whose knowledge is fit for being imparted to their disciples, live in a state of poverty in the territory of a king, the fault lies at the door of the king himself Otherwise the poets are the lord of all even without the possession of wealth *It is the unworthy jewellers* who are to blame if they have reduced the price of precious gems (through their want of knowledge in setting the price of those gems)

☆

हर्तुर्याति न गोचर किमपि श पुष्णाति यत्सर्वदा
ह्यर्थिभ्य प्रतिपाद्यमानमनिश प्राप्नोति वृद्धि पराम् ।
कल्पातेष्वपि न प्रयाति निधन विद्याख्यमन्तर्धन
येपा तान्प्रति मानमुञ्चत नृपा कस्तै सह स्पर्द्धते ॥१६॥

हे राजाओ ! जिन महापुरुषो के पास असाधारण विद्या-रूपी गुप्त धन है, उनसे आप हरगिज भी अभिमान न करें । उस धन को चोर देख नही सकते, उससे सदा सुख की वृद्धि होती है, याचको को देने से भी वह सदा बढता ही रहता है और कल्पान्त या प्रलयकाल मे भी उसका नाश नही होता । जिनके पास ऐसा धन है, उनकी बरावरी कौन कर सकता ? है ॥१६॥

जो राजा या धनी लोग, अपने धन-वैभव के कारण से विद्वानो के सामने अभिमान करते हैं, उनको अपने मुकाबिले मे तुच्छ समझते है, उनका मान मर्दन करने के लिये राजर्षि भर्तृहरि जी कहते हैं,—हे धनियो ! आपका धन चोर-चकोर, लुटेरे और डाकू सबकी नजरो मे रहता है । इसे आप छिपाकर भी छिपा नही सकते, इसलिये इसके जाने का सदा भय रहता है । आपके धन से आपको वास्तविक सुख कभी नही मिलता । इसके कमाने मे दुःख, इसकी रक्षा मे दुःख और इसके नाश मे दुःख है । ज्यो-ज्यो यह बढता है, त्यो-त्यो चिन्ता और तृष्णा बढती है । धनियो का जीवन सदा खतरे मे रहता है । अगर माँगने वालो को दिया जाता है, या और तरह खर्च किया जाता है, तो घटता ही जाता है, देने से बढता नही । आपका यह धन चन्दरोजा है, सदा-सर्वदा नही रहता । अब विद्या-धन की महिमा सुनिये—वह धन सचमुच ही गुप्त धन है । वह किसी को भी नही दीखता, इसी से उसे चोर चुरा नही सकते, डाकू लूट नही सकते, उसके रखने वालो का सदा भला ही होता है । वह चिन्ता और शोक घटाता और मन को प्रफुल्लित करके सुख को बढाता है । उसकी रक्षा की चिन्ता नही, जाने का खटका नही । वह ज्यो-ज्यो दिया जाता है, त्यो-त्यो उल्टा बढता है और जन्म-जन्मान्तर क्या, कल्पान्त मे भी नष्ट नही होता—मनुष्य के हर बार जन्म लेने पर साथ रहता है । उस असाधारण अक्षय धन की बराबरी क्या आपका यह तुच्छ, साधारण और क्षणभगुर धन कर सकता है ? जिनके पास असाधारण गुणो वाला विद्या-धन है, वे सचमुच ही महापुरुष हैं । उनकी समता ससार के राजा-महाराजा और धनी कदापि नही कर सकते । जो मूर्ख और नासमझ हैं, वे ही विद्वानो के सामने ऐंठते और अभिमान करते हैं, जिनमे कुछ भी अक्ल है, वे विद्वानो के सामने अपने धनैश्वर्य का घमण्ड नही करते । महा मूर्ख ही इस तुच्छ और सदा दुःखदायी धन से फूलते और अपने तई सुखी मानते हैं ।

चोर सकत नहि चोर, भोर निसि पुष्ट करत हित ।
अर्थिन हूँ को देत, होत छन-छन मे अगनित ॥

कबहूँ विनसत नाहिं, लसत विद्या सु गुप्त धन ।
जिनके ये सुख-साज सदा, तिनको प्रसन्न मन ॥
राजाधिराज प्रभु छत्रपति,ये एतो अधिकार लहि ।
उनको निहार दृग फेरिबो,यह तुमको है उचित नहिं ॥१६॥

16. Knowledge is a thing incapable of being stolen by thieves It is always beneficial to everybody, Imparted to those who seek for it, it invariably finds something added to it It is not destroyed even at the end of a Kalpa. O Kings, give up your pride in respect to those to whom this knowledge is their sole internal wealth Who would behave improperly towards them ?



अधिगतपरमार्थान् पण्डितान्मावमंस्था-
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि ।
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलाना
न भवति विसतन्तुर्वारण वारणानाम् ॥१७॥

हे राजाओ ! जिन्हे परमार्थ-साधन की कुन्जी मिल गई है, जिन्हे आत्मज्ञान हो गया है, उनका आप लोग अपमान न कीजिये, क्योकि उनको आपकी तिनके-जैसी तुच्छ लक्ष्मी उसी तरह नहीं रोक सकती जिस तरह नवीन मद की धारा से सुशोभित श्याम मस्तक वाले मदोन्मत्त गजेन्द्र को कमल की डंडी का सूत नही रोक सकता ॥१७॥

जिनका ईश्वर मे सच्चा प्रेम हो जाता है, जो उसके अनन्य भक्त हो जाते हैं, जिनका उस पर सच्चा विश्वास हो जाता है, अथवा जो आत्मा और ब्रह्म को जान जाते है, वे केवल ईश्वर या अपनी आत्मा मे ही मस्त रहते हैं। उन्हे संसारी धन वैभव तो क्या, त्रिलोकी का आधिपत्य भी तुच्छाति-तुच्छ

जँचता है। वे धन के लोभ से ससारी राजा-महाराजाओ और धनियो की खुशामद क्यो करने लगे ? जो आत्मानन्द मे मग्न रहते हैं या अपनी अचल भक्ति से ईश्वर को अपना बना लेते है, उन्हे किस बात का अभाव रहता है ? अष्ट सिद्धि नव निधि उनके सामने हाथ बाँधे खडी रहती है। महाकवि दाग ने कहा—

तेरी बन्दानवाजी हफ्त किशवर बख्शा देती है।
जो तू मेरा, जहाँ मेरा, अरब मेरा, अजम मेरा ॥

तेरी सेवा करने से सातो विलायतो का राज्य मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है, तो सारे ससार के अपना होने मे क्या सन्देह ?

किसी बादशाह ने एक महात्मा से पूछा—"क्या तुम कभी मेरा भी खयाल करते हो ?" महात्मा ने जवाब दिया—"हाँ, उस समय, जब कि मैं ईश्वर को भूल जाता हूँ।"

शेख सादी ने कहा है—

हर सु दवद आँकसजे, दरे खेश बर आनन्द।
चाँरा बखवानद, ब दरे कश न दनानद ॥

जिसे ईश्वर अपने द्वार से भगा देता है, वही घर-घर टुकडे माँगता फिरता है, परन्तु जिसे वह अपने पास बुला लेता है, उसे किसी के भी द्वार पर जाने की जरूरत नही होती। अर्थात् जिनका ईश्वर से प्रेम हो जाता है, उन्हे आत्म-ज्ञान हो जाता है और वे धन और रोटी के लिए किसी की खुशामद नही करते। अज्ञानी ही जगत की झूठी माया मे फँसते हैं।

हमे इस मौके पर एक कहानी याद आ गई है। उसे हम अपने पाठको के उपकारार्थ नीचे लिखे देते हैं। किसी राजा के एक मेहतर था। मेहतर ने एक दिन राज-भण्डार मे चोरी करने का विचार किया। आधी रात के समय, वह राजा के शयनागार के पास ही सेंध लगाने लगा। ठीक उसी समय रानी ने राजा से कहा—"मैं कितने दिनो से कहती हूँ, पर तुम बडी पुत्री की शादी नही करते।" राजा ने कहा—"उपयुक्त वर मिले विना मैं किसके हाथ कन्या का

समर्पण करूँ ?" जब रानी ने बहुत कहा-सुनी की, तो राजा ने मजबूर होकर कहा—"अच्छा, कल सवेरे ही मैं पास के तपोवन मे जाऊँगा। वहाँ मुझे पहले ही जो योगी मिल जायगा, उसी को अपनी कन्या और आधा राज्य दे दूँगा।" मेहतर ने राजा का यह सङ्कल्प सुन लिया। वह मन-ही-मन विचार करने लगा—"अब वृथा परिश्रम क्यो करूँ ? चोरी करने आया हूँ। अगर किसी को पता लग गया और मैं पकडा गया, तो प्राण-नाश होने मे भी सदेह नही। जाऊँ, योगी का वेश बनाकर, तपोवन मे बैठ जाऊँ, इस तरह अनायास ही राज-कन्या और आधा राज मिल जायगा।" वह ऐसा स्थिर करके अपने घर गया और वहाँ योगी का वेश धारण करके, प्रभात न होने से बहुत पहले ही राजा के आने की राह के किनारे तपोवन में जा पहुँचा। गजरदम सवेरे, ज्यो ही राजा तपोवन के करीब पहुँचे, वह समाधि लगाकर बैठ गया। राजा ने देखा कि योगी गम्भीर ध्यान मे मग्न है। राजा उसे साष्टाग प्रणाम करके उसके पास ही बैठ गया। राजा ने बहुत देर तक प्रतीक्षा की, पर महात्मा का ध्यान भग न हुआ। बहुत देर के बाद, आवेश मे महात्मा ने आँखें खोलीं। राजा ने उनके पैरो मे गिरकर नगर मे चलने की प्रार्थना की। बहुत कुछ ना-नू के बाद, योगिराज ने राजा की बात मान ली। राजा उसे, बडे आदर के साथ, आगे करके ले आया। राजमहल मे आने पर राजा ने, योगिराज के सिंहासन पर बैठाकर, उसके पैर धोये। रानी चँवर ढोरने लगी। कुछ समय बाद, राजा-रानी दोनो ने हाथ जोड कर प्रार्थना की—"भगवन ! हमारे एक परम सुन्दरी कन्या है। आपकी अनुमति पाने से, हम उस कन्या को और अपने आधे राज्य को श्रीचरण मे उत्सर्ग करना चाहते हैं।" मेहतर यह तमाशा देखकर मन-ही-मन विचारने लगा—"मैंने केवल ढोग से योगी का वेश धारण किया है—इतने से ही राजा-रानी, मेरे पैरो मे गिरकर राज-कन्या और आधा राज्य देने के लिये व्याकुल हैं। अगर मैं सच्चा योगी हो जाऊँगा, तो न जाने कितने राजा-रानी मेरे पदानत होंगे—कितनी राज-कन्याएँ और कितने राज्य मुझे मिलेंगे।" इस तरह विचार करते-करते उसका दिल बदल गया। उसने राजा और रानी की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी, और तत्क्षण

सिंहासन से उतर कर, व्याकुल भाव से भगवान को पुकारता-पुकारता, वन को चला गया। फिर विषय उसका स्पर्श तक न कर सके। भक्ति का द्वार खुल गया। जीवन सार्थक हो गया। भगवान की कृपा हो गई—अमावस्या का अन्धकार पूर्णिमा की रात मे परिणत हो गया। यह तो ज्ञान की प्रथमावस्था की बात है। जिन्हे पूर्ण ज्ञान हो जाता है, उनका तो कहना ही क्या ?

सच है, जिन पर जगदीश की कृपा हो जाती है, जिनके ज्ञान-चक्षु खुल जाते है, जिनका अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है, उनको ससारी धन-वैभव तुच्छ-से-तुच्छ जँचते है। ईश्वर के ऐसे सच्चे भक्तो और ज्ञानियो को जो प्रलोभनो मे फँसाना चाहते हैं, वे उन मूर्खों के समान ही है, जो मदमत्त गजराज को कमलनाल से बाँधने का वृथा प्रयास करते हैं।

पण्डित परमार्थीन को, नहिं करिये अपमान।
तृण-सम सम्पत को गिनै बस नहिं होत सुजान॥
बस नहि होत सुजान, पटा झरमद है जैसे।
कमलनाल के तन्तु-बँधे, रुक रहिहैं कैसे॥
तैसे इनको जान, सबहि मुख शोभा मण्डित।
आदरसो बस होत, मस्त हाथी ज्यो पण्डित॥

17 Do not treat with disrespect the learned who have the highest objects of life withim their reach Riches, which are as worthless as a straw, are no deterrent for them The fibre of a lotus stalk can not restrain an elephant the upper part of whose trunk is black with the marks of fresh MADA—fluid bespeaking the restiveness of his temper.

☆

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हसस्य हन्ति नितरा कुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्त्तिमहत्तुमसौ समर्थ ॥१८॥

अगर विधाता हस से नितान्त ही कुपित हो जाय, तो उसका कमलवन का निवास और विलास नष्ट कर सकता है, किन्तु उसकी दूध और पानी को अलग-अलग कर देने की प्रसिद्ध चतुराई की कीर्ति को स्वय विधाता भी नष्ट नही कर सकता ॥१८॥

दूध और जल को अलग-अलग कर देने की हस मे स्वाभाविक सामर्थ्य है। इस गुण के लिये हस सुप्रसिद्ध है। अगर विधाता, किसी वजह मे हस से अप्रसन्न हो जाय, तो वह इतना ही कर सकता है कि उसको कमल-वन के निवास और विलास से वचित कर दे—उमे सकमल सरोवर मे आनन्द न करने दे, पर उसे उसको जन्मसिद्ध क्षीर और नीर के विलगाने की चतुराई से रहित नही कर सकता। मतलब यही है, कि किसी के स्वाभाविक गुण को कोई नष्ट नही कर सकता ।

मसल मशहूर है, "गौर रूठे तो अपना सुहाग ले, किसी का भाग्य नही ले सकती।" अगर कोई राजा-महाराजा या अमीर-उमरा किसी विद्वान से नाराज हो जाय, तो उसे अपनी नौकरी से निकाल दे सकता है, बहुत करे तो अपनी दी हुई जागीर और जमीन-जायदाद छीन ले सकता है, उसे अपनी दी हुई पदवियो से महरूम कर सकता है, पर उसकी विद्या-बुद्धि और स्वाभाविक चतुराई कोई नही छीन सकता। दुनियवी राजा-महाराजा तो क्या चीज है, स्वय विधाता भी उसकी विद्या-बुद्धि से उसे वचित नही कर सकता। सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी विद्वान से गुण नष्ट नही हो सकते, इसलिये विद्वानों को राजाओ और धनियो से भय करने और मन मे जरा भी निराश होने की आवश्यकता नही। राजाओ को भी, इस बात पर विचार करके, अपने मिजाज

का पारा नीचा ही रखना चाहिए। विद्वानो को डराने, धमकाने और उनका अपमान करने का खयाल भी दिल मे न लाना चाहिए।

कोपित यदि विधि हस को, हरत निवास विलास।
पय पानी को पृथक गुण, तासु सकै नहिं नाश ॥१८॥

18 The god Brahma if he becomes angry, can only deprive a HANSA-bird—swan of its residence in a pond full of lotus flowers or its enjoyment of the same, but he is powerless to rob that bird of its untainted and worldwide fame in having the power of separating milk from water when these two are mixed with one another



केयूरा न विभूषयति पुरुष हारा न चद्रोज्ज्वला।
न स्नान न विलेपन न कुसुम नालकृता मूर्द्धजा ॥
वाण्येका समलकरोति पुरुष या सस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सतत वाग्भूषण भूषणम् ॥१९॥

बाजूबन्द, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मोतियो के हार, स्नान, चन्दनादि के लेपन फूलो के श्रृगार और सँवारे हुए बालो से पुरुष की शोभा नही होती, पुरुष की शोभा केवल सस्कार की हुई सुन्दर वाणी से है, क्योकि और सब भूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वाणी-रूपी भूषण सदा वर्त्तमान रहता है ॥१९॥

तात्पर्य यह है कि और सब भूषण नाशवान है, किन्तु वाणी-रूपी भूषण नाशवान नही, इसलिये और भूषण वाणी-रूप भूषण की बराबरी नही कर सकते। वाणी-रूपी भूषण सब भूषणो से उत्तम है।

और सब जेवर अमीरी के चोचले हैं, जब तक धन रहता है, ये रहते हैं; जहाँ धन गया, ये भी गये। धन-दौलत का क्या भरोसा ? इस क्षण है, अगले

क्षण न रहे। धन बिजली की चमक और बादल की छाया के समान चचल है। जिन्होने विद्यार्ज्जन करके, अपनी वाणी को विशुद्ध और सुन्दर कर लिया है, वे वास्तव मे रूपवान हैं। उनका रूप सदा एक-सा रहेगा। जो लोग पढ-लिख कर वाणी को विशुद्ध नही करते, तमीज और तहजीव नही सीखते, वे चाहे जितने गहने लाद लें, चाहे जितने खबसूरत बन ले, पर निकम्मे हैं।

ककन छवि नहि देत, हार उज्ज्वल नहि सोहैं।
कर उबटन अस्नान, कुसुम नहि मन को मोहैं॥
केनिक केस सँमार, नाहि सोभा दे ऐसी।
बानी मनहर लसै, एक सुन्दर मुख जैसी॥
जग और आभूसन सब गिरें, टूटे विनसे हैं सही।
पै बानी जो एक रस, सुभ भूषन बिगडै नही॥१६॥

19 It is neither armlets nor (pearl) necklaces bright as the moon, nor bathing, nor (sandalwood) plastering (of limbs), nor flowers, nor finely dressed hair that can add to the beauty of a man, but it is only chastened speech that does so All the other adornments are destructible, but the ornament of speech is the real ornament



विद्या नाम नरस्य रूपमधिक प्रच्छन्नगुप्तं धनं।
विद्या भोगकरी यश. सुखकरी विद्या गुरुणा गुरु।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या पर दैवत।
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीन पशु ॥२०॥

विद्या मनुष्य का सच्चा रूप और छिपा हुआ धन है; विद्या मनुष्य को भोग, सुख और सुयश की देने वाली है, विद्या गुरुओ की

सुधावारि सिंचन करके, उसमे शान्ति का संचार करती है। विक्टर ह्यूगो ने कहा है—"संकट के दिनो मे बुद्धिमान लोग पुस्तको से ही शान्ति-लाभ करते है।"* बहुत कहाँ तक कहें विपद् मे इसके समान सच्चा मित्र और नही। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है—

तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥

पाश्चात्य विद्वानो ने भी विद्या की कम प्रशंसा नही की है। यंग नामक विद्वान ने कहा है—"विद्या चन्द्रकिरणो की तरह उत्तापरहित आलोक प्रदान करती है।" हारवे नामक एक विद्वान कहते हैं, "जिस तरह सूर्य हमारे पथ को आलोकित करता और हमे काम पर लगाता है, विद्या भी, ठीक सूर्य की तरह हमारे पथ को आलोकित करती और हमे सत्कर्मों मे प्रवृत्त करती है।" चेष्टर-फील्ड महोदय कहते हैं—"बुढापे मे विद्या ही हमारा रक्षास्थल और आश्रय स्थान है।"

इसी तरह सभी देशो के विद्वानो ने विद्या महारानी का कीर्तिगान किया है। इन पंक्तियो के लेखक ने जीवन मे बहुत से परिवर्तन और उलट-फेर देखे हैं; कितनी ही बार इसने धनियो के प्राय सभी सुख उपभोग किये और कितनी ही बार इसके पास जल पीने तक को लोटा भी न रहा। कितनी ही बार अनेक बन्धु-बान्धव, इस पर दया करके, इसके साथ रहे और कितनी ही बार सभी ने त्याग दिया और यह अकेला निर्जन-निर्जल स्थानो और बयाबाँ जगल मे भटकता फिरा। यह अपने अनुभव से कहता है कि घोर दुर्दिन मे मनुष्य का विद्या देवी जैसा साथ देती है, सच्चे मित्र की तरह उत्तमोत्तम सलाहे देती है, परम गुरुओं की तरह अच्छे उपदेश देती है, अन्न-वस्त्र-हीन होने पर उनकी व्यवस्था करती है, शोक-ताप से जलती हुई आत्मा को शान्ति प्रदान करती है,—वैसा जगत मे कोई भी प्यारे से प्यारा नही करता। धनी-धनी के सभी

* It is from book that wise man, derive consolation in the trouble of life,—VICTOR, HUEGO.

साथी रहते हैं, बिगडी मे सभी मनुष्य को त्याग देते हैं। उस समय भी विद्या अपने साथी को नही त्यागती। सारे ससार के विद्वान यदि एक साथ मिल कर भी विद्या देवी की महिमा बखान करे, तो भी न कर सकेंगे, तब इस क्षुद्रातिक्षुद्र लेखक की क्या सामर्थ्य, जो विद्या देवी के गुणो को बखान कर सके ?

विद्या नर को रूप, अधिक विद्या सुगुप्त धन।
विद्या सुख यश देत, सग विद्या सुबन्धु जन ॥
विद्या सदा सहाय, देवता हू विद्या यह।
विद्या राखत नाम, लसत विद्या ही ते गृह ॥
सब भाँति सवन सौ अति बडी, विद्या को कवि जन कहत।
शिव विधि कहँ विद्या बस करत, नृपति न्याय विद्या चहत ॥२०॥

20 Knowledge is the greatest beauty of a man and his most hidden treasure It is the giver of all enjoyments, fame and happiness It is the teacher of teachers and serves the function of a relative in an unfamiliar foreign country It is the greatest god It is knowledge that is honoured by the kings, not riches A man without knowledge is like a beast.



क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभि क्रोधोस्ति चेद्देहिना।
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौपच किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जना किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषण सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम ॥२१॥

यदि क्षमा है, तो कवच की क्या आवश्यकता ? यदि क्रोध है तो शत्रुओ की क्या जरूरत ? यदि स्वजातीय है, तो अग्नि का क्या

प्रयोजन ? यदि सुन्दर हृदय वाले मित्र है, तो आशुफलप्रद दिव्य औपधियो से क्या लाभ ? यदि दुर्जन हैं, तो सर्पों से क्या ? यदि निर्दोष विद्या है, तो धन से क्या प्रयोजन ? यदि लज्जा है, तो जेवरो की क्या जरूरत ? यदि सुन्दर कविता-शक्ति है, तो राजवैभव का क्या प्रयोजन ? ॥२१॥

जिस मनुष्य मे क्षमा-रूप उत्तम गुण है, उसे अपनी रक्षा की क्या चिन्ता ? क्षमा हजार कवचो का एक कवच है। जो तलवार चलाने वाले के सामने अपनी गर्दन नीची कर देता है, उसे कौन मार सकता है ? क्षमाशील के आगे सबका सिर नीचा हो जाता है, उसका कोई शत्रु नही। जो क्रोधजित् है, उसका सदा मगल है।

जिस मनुष्य मे क्रोध है, उसे शत्रुओ का क्या अभाव ? क्रोधी को शत्रुओ का घाटा नही। क्रोधी का सदा अमगल होता है। क्रोध के वश होकर मनुष्य अपने विनाश का कारण आप हो जाता है। क्रोधी को कार्याकार्य का विचार नही रहता। क्रोधान्ध मनुष्य गुरुजन के भी प्राणनाश और अपमान पर उतारू हो जाता है। क्रोधी आत्म-हत्या को भी घोर पाप नही समझता। क्रोध से क्या क्या अमगल नही होते ? दुर्जन दूरस्थ शत्रुओ के जीतने से कोई शूर नही हो सकता, जो अन्त शत्रु क्रोध को जीत ले, वही सच्चा रिपुञ्जय है। जो शत्रु के ऊपर क्रोध नही करता, वह अपने तई और दूसरो के तई बडी भारी विपद से बचा सकता है। बुद्धिमान मनुष्य बुद्धिबल से क्रोध के जीतने मे ही अपनी तेजस्विता समझते है। क्रोध का परित्याग करने मे जो तेजस्विता प्रकट होती है, उसको मूर्ख नही समझ सकते। क्रोधविहीन प्रशान्त चित्त के सुख का आस्वादन अशान्त लोग नही कर सकते। विधाता ने मानव-सहार के लिये ही मनुष्य के मन मे रजोगुण-स्वरूप जिस क्रोध की सृष्टि की है केवल उसी के द्वारा जीवो का सहार होता है। यदि हिंसा करने मे प्रतिहिंसा करनी पडे, दुखित होने पर दुख दिया जाय, तो इस प्रणाली से प्रतिहिंसा की अनुहिंसा मे मगग्न जगत् ही नष्ट हो जाय। क्षमा के द्वारा पृथ्वी का जो अभ्युदय हुआ है,

वह तब नयनगोचर न होगा। यदि क्षमा गुण न होता, तो भूत-धात्री धरित्री की भूतसृष्टि ही लोप हो जाती। क्षमा से ही धर्म की शान्ति होती है। क्षमा-विहीन मनुष्य अपने दोनो लोक नष्ट कर देता है। क्षमाशील मनुष्य इहलोक और परलोक की रक्षा करता है। धर्मनन्दन महात्मा युधिष्ठिर, वनवास मे, द्रुपद-तनया महारानी द्रौपदी को उपदेश देकर कहते हैं—"हे साधुशीले! यदि मुझे स्वधर्म परित्याग करना पडे, तो भी, क्षमा का परित्याग करके क्रोध का आश्रय नही लूंगा।" पाठको! क्षमा और क्रोध के सम्बन्ध मे धर्मराज ने जो अनमोल बातें कही है, उन्हे मनुष्य मात्र को अपने हृदय-पट पर अङ्कित कर लेना चाहिए। निस्सन्देह, इस जगत मे, क्षमा से बढकर मनुष्य की रक्षा करने वाला और क्रोध से बढकर उसका नाश करने वाला और दूसरा नही है। क्रोध और क्षमा पर गोस्वामी तुलसीदासजी ने केवल चार ही पंक्तियो मे बहुत-कुछ कह डाला है। पाठक उनकी भी सुधा-समान वाणी का आनन्द लेकर उपदेश ग्रहण करे—

दुर्जन वदन कमान सम, वचन विमुञ्चत तीर।
सज्जन उर वेधत नहीं, छमा-सनाह सरीर॥
कौरव-पाण्डव जानिवो, क्रोध-छमा को सीम।
पाचहि मारि न सौ सके, सवै निपाते भीम॥

दुष्टो के मुख कमान की तरह होते हैं। उनसे वचन रूपी तीर-वाग्वाण छूटा करते हैं, पर वे सज्जनो के हृदय मे नही लगते, क्योकि सज्जन क्षमा-रूप कवच पहने रहते हैं।

कौरव और पाण्डव क्रोध और क्षमा की सीमा थे। दुर्योधनादि क्रोध की मूर्ति और धर्मराज क्षमा से अवतार थे। इसी से सौ कौरव-भाई मिलकर भी पाँच पाण्डवो को न मार सके, किन्तु अकेले भीम ने सबो को मार डाला।

दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण प्रभृति दुष्टो ने पाण्डव-भाइयो को क्या-क्या कष्ट नही दिये? भीमसेन को विष देकर नदी मे डुबा दिया। लाक्षागृह मे उनके नष्ट करने को आग लगवा दी। ये दुष्ट, भरी सभा मे पाचाली को चोटी पकड कर ले आये और नगी करके उसकी लाज लूटने लगे, पर लज्जा-रक्षक भगवान कृष्ण ने कृष्णा की लाज रख ली। कपट के जूए मे उन्होने पाण्डवो का सर्वस्व

हरण कर लिया। भीम को वैन और स्वय धर्मनन्दन को कायर प्रभृति क्या-क्या घृणित और कठोर वाक्य उन्होने नही कहे ? पर महात्मा युधिष्ठिर ने क्रोध को दवा कर, क्षमा से ही काम लिया। इसी का नतीजा था, कि अल्पसख्यक पाण्डव वहुसख्यक कौरवो के मुकाविले मे विजयी हुए। क्षमा के प्रताप से ही विजयलक्ष्मी ने उनके गले मे विजयमाल डाली। इसकी वजह यही है, कि क्षमाशील के साथी स्वय भगवान होते हैं। महात्मा कवीर ने कहा है और वहुत ही ठीक कहा है—

जहाँ दया तहँ धर्म, लोभ जहाँ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छमा तहँ आप॥

जनकपुर मे, रामचन्द्रजी के शिव-धनुष तोडने पर, क्षत्रिय कुलनाशक महा-पराक्रमी परशुराम जी ने, क्रोध के वश हो, रघुकुल-तिलक रामचन्द्र जी को क्या-क्या कहनी अनकहनी नही सुनाई ? पर रामचन्द्रजी ने क्षमा के सिवा क्रोध का नाम भी न लिया। शेष मे, परशुराम जी को ही परास्त हो क्षमा-प्रार्थना करनी पडी। क्षमाशील की ही सदा जय होती है, इसमे जरा भी सन्देह नही। महापुरुषो मे क्षमा स्वभाव मे ही होती है।

एपिकटेटस नामक एक पाश्चात्य विद्वान ने भी कहा है—"क्षमा प्रतिशोध—वदला लेने से भी कही उत्तम है। क्षमा सज्जन-स्वभाव का लक्षण है और प्रतिशोध दुर्जनता का। अंग्रेजी मे एक कहावत है—'क्षमा सर्वोत्तम प्रतिशोध है।" जर्मनो मे भी एक कहावत है—"क्षमा किये जाने वाला, क्षमा करने वाले को कभी नही भूलता।" ईसाइयो के 'धर्म-शास्त्र वाइविल' मे लिखा है—"क्रोध मूर्खों के हृदय मे निवास करता है।" वहुत लिखना व्यर्थ है—महात्मा, सज्जन या वडे आदमियो मे क्रोध नही होता। वे क्रोध से सदा दूर रहते हैं और सदा क्षमा से अपनी और जनता की रक्षा करते हैं। क्रोध से ही कलह होता है और कलह से नाश होता है। कलह से ही छप्पन करोड यादवो का नाश हुआ। कलह से ही भारत को गारत करने वाला महाभारत हुआ। कलह से ही सन् १९१४ का विश्वव्यापी महासमर हुआ। यदि भूतपूर्व

जर्मन सम्राट कैसर विलयम और आस्ट्रिया-नरेश क्रोध-शत्रु का परित्याग करके क्षमा से काम लेते, तो पृथ्वी का इतना धन-जन क्यो क्षय होता ? अपनी अँगुली पर सारी पृथ्वी को नचाने वाले कैसर को स्वय छोटे मे राज्य हालैण्ड मे शरण क्यो लेनी पडती ? हमने अपनी आँखो से देखा है कि कलह के मारे अनेक फलती-फूलती गृहस्थियाँ बात-की-बात मे नेस्तनाबूद हो गई ।

यदि मनुष्य समाज-विरुद्ध या लोक-विरुद्ध कुछ भी काम करता है, तो स्वजन या स्वजातीय लोग उसकी निन्दा करते है । उससे मनुष्य के दिल मे दाह और सन्ताप होता है—हृदय मे अहर्निश आग-सी जलती रहती है, इसी से कहा है कि स्वजनो के रहने पर आग की क्या जरूरत ?

यदि मनुष्य का सच्चा हितकारी मित्र हो, तो वह सदा सुखी रहता है । मित्र सदा अपने मित्र का हित ही करता है । इस जगत मे मित्र से बढ कर मनुष्य का और हितकारी नही । माता, पिता और मित्र—ये तीन ही स्वभाव से हितकारी होते हैं और लोग तो किसी मतलब से हित करते है । मित्र ही दुर्दिन मे मनुष्य की हर तरह से सहायता करता है, उसकी विपद् मे छाया की तरह उसके साथ रहता है । जिसके शुद्धचित्त, दाता, सत्यशील, सरल, उदार, अनुरागी, शूर, सुख-दु ख और हर्ष शोक मे समान रहने वाला मित्र है, वह सच्चा भाग्यवान है । उसे इस जगत मे क्या दु ख है ! वह सदा सुखी और आरोग्य हैं । उसके रोग, शोक और दु खो की वही अव्यर्थ महौषधि है ।

इस जगत मे दुर्जनो से बढ कर मनुष्य को कष्ट देने वाले सर्प भी नही हैं । सर्प एक दम मे मनुष्य को मार डालता है, दुर्जन छिद्र ढूढ कर और घुमा-घुमा कर मारते है । हाथी मनुष्य को छूकर मारता है, साँप काट कर या सूघ कर मारता है, पर दुष्ट हँसते-हँसते प्राणनाश कर देता है । हम तो यही कहेगे कि दुर्जन से कभी पाला न पडे । जिसके पीछे दुर्जन लगे हैं, उसके पीछे भयङ्कर भुजग लगे हैं । कहा है—

खलहु सर्प इन दुहुन मे, भलो सर्प खल नाहिं ।
सर्प डसत है काल मे, खल जन पद-पद माहिं ॥

यदि मनुष्य मे निर्दोष विद्या है, तो धन की क्या जरूरत ? क्योकि विद्या स्वय अक्षय और असामान्य धन है। विद्वान को कहीं किसी तरह का अभाव नहीं। विद्वान जहाँ भी चला जाता है, वही उसका सत्कार होता है। विद्वान को बयावां जगल मे भी मगल है।

यदि मनुष्य मे सुकविता करने की भी शक्ति है, तो उसे राज्य-वैभव की आवश्यकता नही। कवियो का राजाओ मे ही मान होता है। राजाओ को भी उनकी सबसे अधिक जरूरत रहती है, क्योकि उनके विना उनके सुयश सौरभ को दिग्दिगन्त मे कौन फैला सकता है ?

जिसमे लज्जा है, जो असत्य कर्मों से लजाता है, वह रूपवान है और सबका गुरु होने योग्य है। वह महातेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशित है। किन्तु जो बुरे कामो से नही लजाता, बेहयाई का बुर्का ओढ़ लेता है, वह महा नीच है। ऐसा कौन है, जिससे कोई-न-कोई बुरा काम न हो जाय, पर जो अपने किए पर लज्जित होता है, मन-ही-मन अनुताप और पश्चात्ताप करता है, वह निस्सन्देह श्रेष्ठ पुरुष है। ऐसे को परमात्मा निश्चय ही क्षमा कर देता है। लज्जा मनुष्य का सच्चा भूषण है। जिसमे लज्जा है, उसे और जेवरो की जरूरत नहीं। यूरोप-विजयी महावीर नेपोलियन ने भी कहा है—"प्रतिष्ठान्वित जीवन का सर्वोत्तम आभूषण लज्जा और नम्रता है ' ' ।"

कवच न चहिए ताहि, छमा जो चित मे राखत।
कहा राज लो ताहि, सुकविता सुख जो भाषत ॥
क्रोध भए अरि कहा, जाति नहीं अनलहि चाहत।
औषध तिनको व्यर्थ, जहाँ सन्मित्र निवाहत ॥
अरु धन सञ्चय फलहीन, जो विद्या होय अदूषणी।
लज्जा सयुत जो होय, तेहि कछू न चहिए भूषणी ॥२१॥

21 If there is forgiveness in a man where is the need for an armour? If he has an angry temper, he need not go far to seek for other enemies If

there is the pride of caste, where is the need for fire (as his own pride is sufficient to set fire to his heart in the shape of a feeling of hatred for those inferior to him in caste) ? If one has good friends, one does not stand in need for supernatural drugs. If a man is surrounded by wicked persons, he need not seek for (more poisonous) snakes If there is fair and faultless knowledge, what is the use of (any other sort of) wealth ? If a person possesses modesty why should he seek for (better) ornaments ? If a man is a good poet, he need not wish for a kingdom



दाक्षिण्य स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीति साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्त्तता
ये चैव पुरुषा कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थिति ॥२२॥

जो अपने रिश्तेदारो के प्रति उदारता, दूसरो पर दया, दुष्टो के साथ शठता, सज्जनो के साथ प्रीति, राज-सभा मे नीति, विद्वानो के आगे नम्रता, शत्रुओ के साथ क्रूरता, गुरुजनो के साथ सहनशीलता और स्त्रियो मे धूर्त्तता या चतुरता का बर्ताव करते हैं, उन्ही कला-कुशल नरपुगवो से लोक-मर्यादा या लोक-स्थिति है, अर्थात् जगत उन्ही पर ठहरा हुआ है ॥२२॥

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने बन्धु-बान्धवो और नातेदारो के प्रति उदार व्यवहार करे—अपनी सामर्थ्य-भर उनका पालन पोषण करे अथवा समय-समय पर—जरूरत होने से—उनकी धन-धान्यादि से सहायता करे । जो

मनुष्य समर्थ होने पर भी, अपने बन्धु-बान्धवो को मदद नहीं देते, उनके दु ख-दर्द में आड़े नही आते, वे जीते हुए ही मृतक के समान हैं। जिनसे अपने घर वालो और रिश्तेदारो का ही भला न हो, उनका इस जगत मे जन्म लेना ही वृथा है। 'शुक्र-नीति' मे लिखा है—"साध्वी स्त्री, पिता की स्त्री—माता, बालक, पिता, विधवा कन्या, पुत्र-वधू, बहिन, भाई, भौजाई, मौसी, बूआ, नाना, सन्तानहीन गुरु, मामा और भानजा—इन सबका, अपनी सामर्थ्यानुसार पालन करना चाहिए।" 'महाभारत' मे कुटुम्ब को न पालने वाला, शत्रु को न दबाने वाला, मिले हुए पदार्थ की रक्षा न करने वाला, सदा स्त्रियो के वश मे रहने वाला, सदैव ऋणग्रस्त रहने वाला, महादरिद्र, मगता, गुणहीन और शत्रु के अधीन रहने वाला—ये सब मुर्दे कहे हैं। अपना पेट कौन नही भर लेता ? अपना पेट तो कव्वे और कुत्ते भी भर लेते हैं। आदमी वही है, जिससे अपने कुटुम्बियो और गैरो का पालन-पोषण होता हो। महात्मा विदुर ने कहा है—"जो दान से मित्रो का, पराक्रम से शत्रुओ को और खान-पान तथा वस्त्र-आभूषण प्रभृति कुटुम्बियो को जीतता है, उसी का जीना सफल है।" एक अँगरेज विद्वान ने भी कहा है—जो मनुष्य अपने प्रियजनो के लिए जीता है, उनके लिए परिश्रम करता और कष्ट-सहन करता है, वह ईर्ष्या करने योग्य है। 'हितोपदेश' मे भी लिखा है—

जीविते यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवा ।
सफल जीवित तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥

जिसके जीने से ब्राह्मण, बन्धु-बान्धव और मित्र जीते हैं, उसका ही जीना सार्थक है। अपने लिए कौन नही जीता ?

ससार मे दया के समान और गुण नही, दया के समान और धर्म नही। किसी प्राणी को कष्ट न देना और उसके दु ख को अपने दु ख के समान समझ कर, दु ख दूर करने की चेष्टा करना ही दया की साधारण परिभाषा है। महात्मा बुद्ध ने ससारियो के कष्ट से ही दु खित होकर, लोकोपकरार्थ, युवावस्था मे ही अपनी युवती स्त्री और शिशु पुत्र तथा राज-पाट को छोड़, वन गे

जाकर, घोर तपश्चर्या करके, अपना शरीर सुखा डाला। उन्होने ही कहा है—"जो मनुष्य जीवित प्राणियो को दुःख देता है, वह आर्य नही है, किन्तु जो समस्त प्राणियो पर दया-भाव रखता है, वही आर्य पुरुष है।" चीनी महात्मा कनफ्यूशियस ने कहा है—"मनुष्य को दयालुओं के ही पडोस मे बसना चाहिये। जो दयालु और चिन्ता-रहित है, वही श्रेष्ठ पुरुष है।" महात्मा शुक्राचार्य ने कहा है—"दया, मित्रता, दान और मधुर वाणी—इन चारो से बढ कर और वशीकरण नही है। कीडे-मकोडे और चीटियो पर भी, अपने समान समझ कर, दया करनी चाहिए। उपकार-योग्य शत्रु का भी उपकार करना चाहिए। दरिद्री का दारिद्य मिटाना चाहिए और शोकार्त का शोक दूर करना चाहिए।" किसी महापुरुष ने कहा है—"यदि मुक्ति की इच्छा है तो विषयो को विषवत् त्यागो और सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सच्चाई को अमृत की तरह पियो।" क्या उत्तम उपदेश है! कबीरदास ने भी कहा है—

दया-भाव जानै नहीं, ज्ञान कथै बेहद्द।
ये नर नर्कहि जायँगे, सुनि-सुनि साखी सब्द॥
दाया दिल मे राखिए, तू क्यो निरदय होय ?
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय॥

राज-सभा मे मनुष्य को नीतिपूर्वक ही वर्तना चाहिए। राजाओ के सारे काम नीति से होते हैं। प्रजापालन और दुष्टो का नाश—इसमे नीति की ही जरूरत है और यही राजाओ का काम है। इसलिए वहाँ नीतिज्ञो का मान होता है। इसके सिवा राजा के सामने विनीत भाव से रहना चाहिए।

दुष्ट के साथ मनुष्य को नम्र व्यवहार नही करना चाहिए। दुष्ट के साथ नम्र व्यवहार करना—दुष्ट को सिर चढा कर आफत मोल लेना है। सरल व्यवहार वाले को दुष्ट कदम-कदम पर तग करते हैं। तुलसीदास ने कहा है—

नीच चग-सम जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत महि गिर परत, खैंचत चढत अकास॥

नीच उस चग—पतग के समान होते हैं, जो ढील देने से जमीन पर गिर

पड़ती है और खीचने से आकाश मे चढती है। अगर दुष्टो को खींचे रहोगे, तो वे डरते रहेंगे, अगर उनसे सरल व्यवहार करोगे, तो वे सिर पर चढ कर अनेक उपद्रव करेंगे।

शेख सादी ने कहा है—"दुष्टो पर दया करना, सज्जनो पर अत्याचार करना है। अत्याचारियो को क्षमा प्रदान करना, अत्याचार-पीडितो पर अत्याचार करना है। अगर तुम कमीनो पर मिहरबानी करोगे, तो वे तुम्हारी हिमायत से अधिक अपराध करेंगे और तुमको उनके अपराधो का भागीदार या हिस्सेदार बनना होगा। क्षमा करना बहुत अच्छा है, पर दुर्जनो के घावो पर मरहम लगाना भला नही। सांप की जान बचाने वाला नहीं समझता कि वह आदम की औलाद—आदमी को हानि पहुँचाएगा।"

चाणक्य ने कहा है—"उपकारी के प्रति उपकार करना चाहिए। मारने पर मारना अपराध नही और दुष्टता करने पर दुष्टता करना अनुचित नहीं।"

महात्मा विदुर ने कहा है—"जो जैसा हो, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। दुष्ट के साथ दुष्टता और सज्जन के साथ सज्जनता करनी चाहिए।"

'गुलिस्तां' मे लिखा है—"कमीना अच्छा व्यवहार करने से नही संभलता। ऐसा करने से उसका घमण्ड और भी वढ जाता है। जो तुम पर दया करे, तुम अपने को उसके चरणो की धूलि समझो, जो तुम्हारा अपकार करे, उसकी आँखो मे धूल झोक दो। धूर्त के साथ सभ्यता से बात न करो, क्योकि मोरचा या जग लगा हुआ लोहा रेती से साफ नही होता।"

साराश यह, दुष्ट के साथ दुष्टता, शठ के साथ शठता और कुटिल के साथ कुटिलता करने मे ही भलाई है। इस जगत की रीति ही ऐसी है कि सीधे को सभी खा जाना चाहते हैं। राहु भी पूर्ण चन्द्र को ही ग्रसता है, द्वितीया या दूज के टेढ़े चाँद को नहीं ग्रसता। असल बात यह है कि जैसे के साथ तैसा ही वर्ताव करना चतुराई है। किसी समय इन पक्तियो का लेखक सभी के साथ अत्यन्त विनीत व्यवहार करता था। दुर्जन और सज्जन सभी इसके सामने

समान थे। इस भयकर भूल से इमे बडे-वडे कष्ट भोगने पडे। किन्तु जव इसने दुष्टो के साथ कुटिलता का व्यवहार किया, तो इसका पीछा छूट गया।

जिस तरह दुष्टो के साथ कुटिलता का बर्ताव करना चाहिए, उसी तरह विद्वानो के साथ सदा नम्रता का वर्ताव करना चाहिए। उनसे प्रत्येक काम मे गर्वरहित व्यवहार करना चाहिए। जो बुद्धिमान विद्वानो का आदर-सत्कार करते हैं, उनके सामने विनीत रहते हैं, तमीज—तहजीव और अदव-कायदे से वोलते-चालते हैं, उनकी हर तरह खातिर-तवाजा करते हैं, विद्वान उनसे सन्तुष्ट रहते हैं और वे उनसे फायदा उठाते हैं। सच्चे विद्वान आदर-सम्मान, सिधाई-सच्चाई और नम्रता से ही वश मे होते है, इसमे सन्देह नही, पर हमारी पहले लिखी हुई बात को कभी नही भूलना चाहिए कि जो विद्वान सज्जनो के-से काम करें, उनके साथ ही विनीत व्यवहार करना चाहिए, जो विद्वान दुर्जनो के-से काम करें, उनसे भूल कर भी सरल व्यवहार न करना चाहिए।

शत्रुओ के प्रति शूरता का व्यवहार करने मे ही भलाई है। जो शत्रु के मध्य मे पराक्रम से काम नही लेता, उनसे दवता है, उनसे भय खाकर पीछे हटता है, उसे शत्रु मार लेते हैं, अत शत्रु को सदा दवाना चाहिए, उससे दवना न चाहिए।

प्रीति सदा सज्जनो के साथ करनी चाहिए। सज्जनो के साथ प्रीति करने से सुख-सम्पत्ति की वृद्धि होती और शोक-ताप तथा दु खो का नाश होता है। सज्जनो की प्रीति टूटने पर भी, नही टूटती—टूट जाने पर भी, कमलनाल के सूत की तरह कुछ-न-कुछ सम्वन्ध वना ही रहता है। वे जिसे एक वार अपना कह लेते हैं उसे, दोष होने पर भी निवाहे ही जाते हैं—वे जिसे अगीकार कर लेते हैं, उसे नही त्यागते। शिवजी ने विष को और शेष जी ने पृथ्वी को आज तक नही त्यागा। सज्जन आम के वृक्ष के समान होते हैं, जो पत्थर मारने पर भी फल देते हैं, अथवा उस तरु के समान होते हैं, जो अपने काटने वाले पर भी छाया ही करता है। सज्जनो की गाली भी भली और दुर्जनो की तारीफ भी भली नही। श्रवण के पिता ने राजा दशरथ को श्राप दिया, पर वह आशीर्वाद के रूप मे फला। इसी से कहा गया है कि प्रीत सज्जनो के साथ करनी चाहिए।

सज्जनो की प्रीति मे जो आनन्द और सुख है, उसे काठ की लेखनी से लिख कर बताना असम्भव है।

माता-पिता, बडे भाई और गुरु—इनको गुरुजन कहते है। चतुरो को इनकी कडवी बातो को भी अमृत की तरह पी जाना चाहिए। ससार मे मीठी बातो के कहने वाले बहुत पर, मीठी और यथार्थ हितकारी बात के कहने वाले विरले ही हैं। माँ-बाप और गुरु जो कुछ कहते हैं, वह प्राय - हित-कामना से ही कहते हैं। इसीलिए सभी देशो के शास्त्रकारो ने गुरुजनो की आज्ञा पालन करने की आज्ञा दी है। रामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा से राज्य वैभव त्याग कर वनवास किया। ऐसा उदाहरण भारत के सिवा और किसी भी देश मे नही पाया जाता। परशुराम जी ने पिता जमदग्नि की आज्ञा से माता के प्राण नष्ट कर दिये। भीष्म पितामह ने, अपने पिता शान्तनु के सुख के लिये, सासारिक सुख जन्म-भर के लिए त्याग कर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया। राजा ययाति के छोटे पुत्र ने, अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिये, अपनी जवानी उन्हे दे दी। हमारे यहाँ ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। महाकवि गेटे ने कहा है—"उत्तम उपदेश को ग्रहण करो और वृद्धो का सबसे अधिक सम्मान करो।" शेक्सपियर ने 'किंगलियर' मे लिखा है—"माता-पिता की आज्ञा पालन कर, अपने वचन को पूरा कर, कसम न खा।"

माता-पिता की आज्ञा का पालन करना सन्तान का परम धर्म है, पर कही-कही ऐसे मौके भी आ जाते हैं, जहाँ इनकी आज्ञा का पालन करना अनुचित हो जाता है। प्रह्लाद को अपने पिता की आज्ञा के विरुद्ध काम करने मे ही भलाई दीखी और उसकी वह बात स्वय भगवान को भी पसन्द आई। अधर्मी और अत्याचारी पिता की आज्ञा का उल्लघन करने मे दोष नही। विशेष कर देश और धर्म के लिये, पिता-माता की भी आज्ञा भंग की जा सकती है; पर यह बात, छोटे-छोटे बालको को नहीं, जवानो को लिखी गई है, क्योकि सभी प्रह्लाद नही होते। पूर्णवयस्क हो जाने पर, स्वय सोच-समझ कर काम करना चाहिए। अन्धभक्ति से गुरुजनो की राय पर चलने से बाज-बाज औकात भयानक आफतो का सामना करना पडता है। इन पंक्तियो का लेखक, कोई

२२ साल की उम्र तक, अपने पिता की बात आँख बन्द करके मानता था। सच्ची बात तो यह है कि अपने पूज्यपाद का उचित से अधिक भय करता था। उन्होने इमे एक काम पर, इसकी पूर्ण अनिच्छा होने पर भी, लगा दिया और स्वय ऐमो आज्ञा और नसीहते दी, कि उनकी वजह से इसने २४ साल तक वह-वह आपदाएँ भोगी, जिनके सुनने से पत्थर का भी कलेजा दहले विना न रहे। सच तो यह है, इमकी सारी जिन्दगी ही खराब हो गई। भला हो, महामहिमान्वित श्रीमान् लार्ड चेम्सफर्ड और आनरेबिल मिस्टर गोरले, सी० आई० ई०, आई० सी० एस० का, जिन्होंने दयासिन्धु दीनवन्धु की प्रेरणा से इसका सकट दूर करके, शेष जीवन सुख-शान्तिमय कर दिया। मेरे कहने का यह मतलब नही कि लडको को अपने गुरुजनो की आज्ञा न माननी चाहिए—अवश्य माननी चाहिए, उनकी परमात्मा के समान भक्ति और सेवा-शुश्रूपा करनी चाहिए, पर अपनी निजी बातो में, पूर्ण वयस्क होने पर, समझ पक जाने पर, अपनी विचार-शक्ति से भी काम लेना चाहिए। इन कामो मे अपने कान्शैन्स—अपने अन्तरात्मा की बात पर चलना सदा सुखदायी है। मैंने पिताजी की आज्ञा के मुकावले मे अन्तरात्मा की बात नही मानी, इसी से मुझे घोर विपत्तियाँ झेलनी पडी।

स्त्रियो के सम्बन्ध मे हम इसी पुस्तक मे पहले लिख आये हैं, कि वे स्वभाव से ही परले सिरे की चतुरा और मायाविनी होती हैं। यो तो वे चतुर-से-चतुर को भी नचा सकती है, पर यदि कोई निरा भोदू उनके हाथ मे आ जाता है, तब तो वे वह खेल खेलती हैं, जिसका क्या कहना! जो पुरुप इनकी चाल और चालाकियो से जानकारी रखते हैं और इनको परखते रहते हैं एव समयानुसार यथोचित वर्ताव करते है, वे ही ससार मे सुख पाते है। महाराजा भर्तृहरि स्वय पिंगला से किस तरह ठगे गये, यह इसी पुस्तक के आरम्भ के पृष्ठ पढने वालो से छिपा नही है। मेरा भी कुछ अनुभव है, उससे यह कहना पडता है कि इनके वर्णन मे इस पुस्तक के दूसरे श्लोक के नीचे जो शास्त्रकारों के वचन उद्धृत किये गये हैं, वे नितान्त सच है। पर मैं यह हरगिज नही कहता, न कह ही सकता हूँ कि सभी देवियाँ वैसी ही होती है। लेकिन

इसमे शक नही कि चन्दन वन-वन मे नही होता और साधु पुरुष सर्वत्र नहीं होते, यानी सती देवियाँ और सज्जन पुरुष कम ही होते हैं, पर होते अवश्य हैं। जिन्होने पूर्व जन्म मे पुण्य किये हैं, जिन्होने घोर तपश्चर्या की है, उन्हे ही वे मिलते हैं।

जिन पुरुषरत्नो ने, स्वजनो मे उदारता, गैरो मे दयाभाव, दुष्टो के प्रति कुटिलता, सज्जनो मे प्रीति प्रभृति उत्तमोत्तम गुण होते हैं, वे ही इस ससार के सच्चे स्तम्भ हैं, उन पर ही यह ससार ठहरा हुआ है। उनके विना लोक-मर्यादा अथवा स्थिति नही। प्रत्येक सुखाभिलाषी को इन उत्तम गुणो को ग्रहण करना चाहिए।

सज्जन सो हित-रीति, दया परजन सो भाषहु।
दुर्जन सो शठभाव, प्रीति सन्तन प्रति राखहु॥
कपट खलन सो राखि, विनय राखौ बुधजन सो।
छमा गुरुन सो राखि, शूरता बैरीगन सो॥
अरु राखि धूर्त्तता तियन सो, जो तू जग वसिवो चहै।
अति ही कराल कालकाल मे, इन चालन सो सुख लहै॥२२॥

22. Generosity for one's relatives, kindness for others, rigorous treament for the wicked, love for the virtuous, judicious behaviour for kings, respect for the learned, boldness for one's enemies, forgiveness for elders and cleverness for women are the qualities which, if a man possesses them, make him famous in the world.



जाड्य धियो हरति सिंचति वाचि सत्य
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।

चेत प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति ।
सत्सगति कथय कि न करोति पु साम् ॥२३॥

सत्सगति बुद्धि की जडता को हरती है, वाणी मे सत्य सीचती है, सम्मान की वृद्धि करती है, पापो को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशो दिशाओ मे कीर्ति को फैलाती है कहो, सत्सगति मनुष्य मे क्या नही करती ॥२३॥

इसका खुलासा अर्थ यह है कि सत्सगति से बुद्धि की मन्दता नष्ट होती है, बुद्धि तीव्र होती है, सत्य बोलने मे अनुराग होता है, सम्मान बढता है, पाप नष्ट होते है, चित्त प्रसन्न रहता है और हर तरफ सुयश फैलता है। ऐसी कोई बात ही नही, जो सत्सगति से न हो।

'हितोपदेश' मे लिखा है—

सत्सग· केशवे भक्तिर्गगाम्भसि निमज्जनम् ।
असारे खलु ससारे त्रीणि साराणि भावयेत् ॥

सज्जनो का सग, कृष्ण की भक्ति, निर्मल गगाजल मे स्नान—इस असार ससार मे ये तीन ही सार समझे जाते हैं।

ससार के शोक-ताप से जलने वाले के लिये स्त्री, पुत्र और सत्सगति ही शान्ति देने वाले हैं। तीर्थ समय पर फल देता है, पर सज्जनो की सगति का फल शीघ्र ही मिलता है। इस मृग तृष्णा के समान मिथ्या ससार को क्षण-विध्वसी समझ कर, धर्म और सुख की प्राप्ति के लियें, सत्सगति करनी चाहिए। बस, ससार-रूपी कडवे वृक्ष के दो ही फल हैं—(१) मधुर भाषण और (२) सज्जनो का सग ।

सत्सग की महिमा अपार है। जिस तरह लोहा और पारस के मिलने से लोहा भी सोना हो जाता है, उसी तरह सत्सग मे नीच पुरुष भी महापुरुष हो जाता है। सप्त ऋषियों के सत्सग से ही नित्य हत्या करने वाला व्याध महामुनि हो गया। वाल्मीकि जी का पूर्व-वृत्तान्त कौन नही जानता ?

मनुष्य नीचो की सगति से नीच और सज्जनो की सगति से सज्जन बनता है। मूर्खों की सगति से बुद्धि मलीन होती है, किन्तु सज्जनो की सगति से बुद्धि की मलिनता नष्ट होकर, बुद्धि निर्मल और तीव्र होती है। कुसगति मे पड कर मनुष्य को मिथ्या भाषण से अनुराग होता है सत्सगति से वह सत्य भाषण का अनुरागी होता है। कुससर्ग मे पड कर मनुष्य निन्द्य और घृणित कर्म करता है, इसीलिए उससे भले आदमी घृणा करते हैं और उसे अपने पास भी नही आने देते। कोई उसका आदर नही करता। सत्सगति के प्रभाव से मनुष्य सुशील होता है, उत्तमोत्तम कर्मों पर उसकी अभिरुचि होती है, गुणो की वृद्धि होती है, इसलिए सर्वत्र उसका सम्मान होता है। दुष्ट की सगति मे पड कर मनुष्य विविध प्रकार के पाप-कर्म करता है, किन्तु सत्सगति से पापो से अरुचि या घृणा हो जाती है, इसलिए मनुष्य इस लोक मे सुख पाता और मरने पर स्वर्ग या मोक्ष का अधिकारी होता है। कुसगति मे पड कर मनुष्य बुरे-बुरे काम करता है, इसलिए उसकी अपकीर्ति फैलती है। सत्सगति मे रह कर वह दान, दया, परोपकार प्रभृति उत्तम गुण ग्रहण करता और सदा सत्कर्म करता है, इसलिए उसकी सुकीर्ति देश-देशान्तरो मे फैल जाती है। अतएव मनुष्य को कुसग को दूर ही से नमस्कार करके, सदा सत्सग करना चाहिए।

महात्मा विदुर ने मनुष्य के लिये छह सुख बताये हैं—(१) निरोग रहना, (२) कर्जदार न होना, (३) देश भ्रमण करना, (४) स्वाधीनता-पूर्वक धन कमाना, (५) सदा निर्भय रहना और (६) सज्जनो का सग करना।

कबीरदास ने कहा—

एक घरी आधी घरी, आधी सो भी आध।
कबिरा सगति साधु की, कटै कोटि अपराध॥
कबिरा सगति साधु की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय॥

सारांश—सत्सग सर्वोपरि है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो का दाता है। यह दुख या पापो के समूह का नाश करने वाला और नित्य सुख बढाने वाला है, इसलिए सत्सग करो।

जडताई मति को हरत, पाप निवारत अङ्ग ।
कीरति सत्य प्रसन्नता, देत सदा सत्सङ्ग ॥

23 Society of good men removes the dullness of a man's reason, makes his tongue truthfull, enhances his respectability, overcomes his sins, gives pleasantness to his heart and spreads his fame in all directions Tell me, what it does not do for men ?



जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा ।
नास्ति येपा यश काये जरामरणज भयम् ॥२४॥

जो पुण्यात्मा कवि श्रेष्ठ शृङ्गार आदि नव रसो मे सिद्ध-हस्त हैं, वे धन्य है ! उनकी जय हो ! उनकी कीर्ति-रूपी देह को बुढापे और मृत्यु का भय नही ॥२४॥

जो कवीन्द्र नव रसो के पूर्ण पण्डित हैं, जो सरस कविता करने मे सिद्ध-हस्त हैं, नाना प्रकार के काव्य प्रकाशित करते है, उनकी पचतत्त्व से बनी मिट्टी की देह को ही बुढापा और मरण का भय है, पर उनकी सुयशमय देह को न जरा का भय है, न मरण का भय । उनकी कीर्ति-रूपी देह सदा-सर्वदा—कल्पान्त तक अजर और अमर रहेगी ।

वाल्मीकि, कालिदास, माघ, भवभूति, सूरदास, तुलसीदास और विहारी लाल प्रभृति इस देश के कवीन्द्र और शेक्सपियर, मिल्टन, बायरन, वर्डस्वर्थ प्रभृति पाश्चात्य देशो के कवियो के पचभौतिक शरीर वृद्ध भी हुए और नष्ट भी हो गए, परन्तु उनके सुयश के शरीर आज तक भी विद्यमान हैं, न उन्हे जरा का भय है, न मरण का—सदा-सर्वदा, प्रलय काल तक इसी तरह रहेंगे । इस ग्रन्थ के रचयिता महात्मा भर्तृहरि को ही लीजिए । आज उनके पचतत्त्वो से बने शरीर को नष्ट हुए प्राय दो हजार साल हो गए, पर उनकी अपूर्व रचना के

कारण, उनका सुयशमय शरीर आज तक है और सदा इसी तरह रहेगा। जरा और मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड न सकेंगी।

इस विषय मे उस्ताद ज़ौक ने भी खूब ही कहा है—

रहता है सखुन से नाम कयामत तलक है ज़ौक।
औलाद से तो है यही दो पुश्त चार पुश्त ॥

सत्कविता से मनुष्य का नाम प्रलय-काल तक रहता है, पर औलाद से तो दो पीढी और बहुत हुआ तो चार पीढी तक रहता है।

सारांश—उत्तम कवि या ग्रन्थकारो की मिट्टी की देह को बुढापे और मृत्यु का भय भले ही हो, पर उनकी कीर्ति-रूपी देह को न जरा का भय है, न मौत का भय, अर्थात् उनकी सुकीर्ति सदा अजर-अमर रहती है।

सबसे ऊँचे सुकवि जन, जानत रस को सोत।
जिनके यश की देह को, जरा मरण नहिं होत ॥२४॥

24 Triumphant are the poets, the doers of glorious deeds and perfect in the expression of various natural emotions, whose fame is never in fear of decay or death



सूनु सच्चरित सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुख
स्निग्ध मित्रवञ्चक परिजनो निःक्लेशलेश मन ।
आकारो रुचिर स्थिरश्च विभवो विद्यावदात मुख
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ सम्प्राप्यते देहिना ॥२५॥

सदाचरण-परायण पुत्र, पतिव्रता सती स्त्री, प्रसन्नमुखी स्वामी, स्नेही मित्र, निष्कपट नातेदार, क्लेशरहित मन, सुन्दर आकृति, स्थिर सम्पत्ति और विद्या से शोभायमान मुख—ये सब उसे मिलते है,

पिता सच्चे पुत्रवान हैं। कंस जैसे दुरात्मा पुत्र से सिवा दुःख के सुख नहीं। भगवान किसी को पुत्र दे, तो राम और श्रवण-सा दे।

पतिव्रता या पाकदामन स्त्री

स्त्री होने से ही मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। यदि स्त्री सती-साध्वी या पतिव्रता न हो, पति की आज्ञा न मानने वाली, कुलटा या व्यभिचारिणी हो, दिन-रात कलह करने वाली और क्रोधमुखी तथा अप्रिय बोलने वाली हो, घर के काम-धन्धों में अकुशल और फहड़ एवं कर्कशा हो, तो पुरुष को इस पृथ्वी पर ही नरक है। ऐसी स्त्री, स्त्री नहीं—पुरुष की साक्षात् मृत्यु है! सच तो यह है कि ऐसी स्त्री से मृत्यु कहीं भली, क्योंकि मृत्यु क्षण-भर में प्राणनाश कर देती है, पर ऐसी स्त्री जला-जला और घुला-घुलाकर मारती है। जो स्त्री सदा अपने पति में अनुराग रखती है, पर-पुरुष के नाम और छाया से भी दूर रहती है, गृह कार्य में कुशला, पुत्रवती और सुशीला होती है—वही स्त्री, स्त्री है। जिस पुण्यवान के ऐसी गुणवती नारी है, वह सचमुच ही भाग्यवान है। जिसके घर में पतिव्रता स्त्री है, उसके घर में क्या अभाव है? उसके घर में अष्ट सिद्धि नव निधि हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। पतिव्रता स्त्री दरिद्र पति में भी दरिद्रता मालूम नहीं होने देती। पतिव्रता रोगी पति का सच्चा वैद्य है। पतिव्रता विपदग्रस्त स्वामी का उद्धार कराने और समय-समय पर अमूल्य मन्त्र—सलाह देने में सच्ची मित्र है। पतिव्रता कुराह में जाते हुए पति को सुपथ में ले आती है। पतिव्रता मरे हुए स्वामी को जिन्दा कर सकती है। पतिव्रता दुष्ट स्वामी का भी उद्धार करके स्वर्ग में ले जाती है। जिसके घर में पतिव्रता है, वही गृही और सच्चा सुखी है। विद्वानों ने कहा है—

> सा भार्य्या या गृहे दक्षा सा भार्य्या या प्रजावती।
> सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या पतिव्रता॥

वही स्त्री है जो घर के कामों में निपुण है, वही स्त्री है, जो सन्तान वाली है, वही स्त्री है, जो पतिप्राणा और पतिव्रता है।

किन्तु यदि दुर्भाग्य से स्त्री सती न हो, तो सुख कहाँ है? कहा है—

यस्य क्षेत्रं नदीतीरे भार्य्या च परसंगता ।
ससर्पे च गृहे वासः कथं स्यात्तस्य निर्वृतिः ॥

जिसका खेत नदी किनारे है, जिसकी स्त्री परपुरुष-रता है, जो साँप वाले घर मे रहता है—उसे सुख कहाँ है ?

प्रसन्नमुखी स्वामी या हँसमुख मालिक

प्रथम तो पराई चाकरी ही महा कठिन काम है। ससार मे पराई चाकरी से अधिक दुःखदायी और काम ही नहीं है। नौकरी करना और सर्प को खिलाना एक ही बात है। किसी पाश्चात्य विद्वान ने कहा—"स्वर्ग मे चाकरी करने से नरक मे राज करना कही भला है।" पर-सेवकाई मे गुण भी अवगुण हो जाते है और स्वाधीनता तो नाम को भी नही रहती। महा मूर्ख गधा स्वामी भी अपने चतुर-चूडामणि सेवक को मूर्ख और पागल कह देता है। उसके अच्छे-से-अच्छे कामो मे भी दोष लगा देता है। जरा-जरा-सी बातो मे सेवक का अपमान करता है। पराधीनता से जीविका उपार्जन न करना ही, जन्म की सफलता है। पराधीन जीविका वाले यदि जीवित है, तो मरे कौन हैं ? पर इस पापी पेट और जीभ के लिए, विशेषकर स्त्री और बच्चो के लिये, पूर्व-कृत पापो के फलस्वरूप, मनुष्य को यह निंद्य कर्म भी करना ही पडता है। यदि दुर्भाग्य से स्वामी क्रोधमुखी और स्वार्थी मिल गया, तब तो जीते जी ही नरक हो गया। यदि पूर्व पुण्यो से स्वामी हँसमुख, सेवक के कष्ट और दुःख में सहानुभूति रखने वाला तथा उसका भला चाहने वाला मिल गया, तब तो किसी प्रकार सुख से जीवन कट जाता है, उतना दुःख नही होता। पर ऐसा स्वामी भगवान कृष्ण की पूर्ण कृपा बिना नही मिलता।

स्नेही मित्र

इस जगत मे जिनके निष्कपट सच्चे स्नेही मित्र हैं, वे निश्चय ही भाग्यवान हैं। माता-पिता, स्त्री और सगे भाई मे जो सुख नही है, वह सच्चे स्नेही सुहृद मे है। स्वाभाविक मित्र के ऊपर पुरुषो का जैसा विश्वास होता है, वैसा

विश्वास माता, स्त्री और सगे भाई पर भी नही होता। सच्चा मित्र, मित्र के सुदिन और दुर्दिन मे एक-सा स्नेह रखता है, बल्कि दुर्दिन मे अपने स्नेह की मात्रा को और भी बढ़ा देता है। जो मित्र के बाल के दाने बराबर दुख को पहाड के समान समझता है, अपने पहाड के समान दुख को भी बालू के दाने जितना समझता है, समय पर तन, मन और धन से साहाय्य करता है, छाया के समान साथ रहता है, विपद् से छुटकारा कराता है, अथवा अपनी सामर्थ्य भर छुटकारे की चेष्टा करने मे कोई कसर नही रखता, मित्र के गुणो को प्रकाशित करता, अवगुणो को छिपाता और प्राणान्त होने पर भी, मित्र के गुप्त रहस्य प्रकट नही करता, ऐसा मित्र ही मित्र होता है। जिन पर जगदाधार भगवान कृष्ण की पूर्ण कृपा होती है, उन्हे ही ऐसा मित्र मिलता है। ऐसे मित्र दुर्लभ हैं। आजकल तो मतलब के यार रह गये हैं। जब तक आपके पास पैसा है, आप खिलाते-पिलाते और पोला हाथ रखते है, तब तक आपके मित्र बने रहते हैं, जहाँ आपके पास पैसा न रहा कि मित्र-राम सटके। जब तक अवस्था भली रहती है, तब तक आज-कल के मित्र छाया की तरह साथ रहते हैं, जहाँ दरिद्रदेव आए, विपद् ने पदार्पण किया, कि मित्रो ने आपको मँझधार मे छोडा। आज-कल मित्र कहां है? हमारे जैसे नासमझ लोग खुशामदियो को मित्र समझ लेते हैं; पर खुशामदी से बढ़ कर दुश्मन इस जगत मे नही। जब तक खुशामदी की इच्छा पूरी की जाती है, वह खुशामद और लल्लो-चप्पो करता रहता है, जहाँ मतलब मे बाधा पडी कि उसने अपने साथी की घोर-घोर निन्दा आरम्भ की। ऐसे लोग अच्छे समय मे अपने साथी या मित्र के दोषो पर गहरी नजर रखते हैं और किसी अवसर के लिये, उन्हे धन की तरह, अपने हृदय-बैङ्क मे सुरक्षित रखते जाते हैं। जब तक बनी रहती है, स्वार्थ सधता रहता है, दोषो को दबाए रखते हैं, जहां स्वार्थ मे बाधा पडी, कि मित्र के उन्ही दोषो से काम निकालने की चेष्टा करते हैं। बेचारे को डराते-धमकाते हैं और अगर उसके पास कुछ होता है, तो उससे येन-केन-प्रकारेण ऐंठते हैं। उसको घोर विपद मे देख कर भी उन्हे जरा दया नही आती। अपने मित्र की विपद् को शतगुणा बढाते हैं। उसके सर्वनाश मे अपनी सारी विद्या बुद्धि और धन खर्च कर देते हैं। हम यह नही कहते, कि सत्यस्नेही मित्र आजकल होते

ही नही, होते होगे, किसी पुण्यात्मा को मिलते होगे, पर हमने ऐसे मित्र आजकल नही देखे। बुद्धिमान अपनी भूलो और पराई गलतियों से अनुभव प्राप्त करता है। जिसने अपने जीवन मे मूर्खता के काम नही किए, अनेक ठोकरें नही खाई—वह कदापि बुद्धिमान नही हो सकता। हमे तो देखने और सुनने से जो अनुभव हुआ है, उससे यही कह सकते है कि जिन्हें मित्र कहते है, वे इस कलियुग मे पारस पत्थर या हुमा-पक्षी की तरह दुष्प्राप्य है, मित्र का नाम-मात्र चला जाता है। आशा है, पाठक हमारे अनुभव से लाभ उठाएंगे—धोखा खाने से बचेंगे। हमने अपने जीवन मे सुमित्र जैसे रत्न के लिए अपनी शक्ति-भर द्रव्य भी नष्ट किया, तन-मन भी लगाया, खोज भी बहुत की, पर हमे वह रत्न न मिला। ससार मे औरो से भी पूछा, पर सबको अपनी ही तरह शिकायत करते ही पाया। जो कुछ दिनो तक हमारी बात की दिल्लगी उडाते रहे, हमे पागल समझते रहे, शेष मे एक दिन उनको भी कहना ही पडा—"आपका अनुभव ठीक है, हम बडी गलती पर थे।" आप किसी को भी दुश्मन न बन इये, सबसे अच्छा बर्ताव कीजिए, इससे आपको सुख ही मिलेगा। पर झटपट ही, बिना कठिन परीक्षा किये, किसी को अपना मित्र न मान लीजिए, किसी से भी अपने मन की बात न कहिए। यदि आपकी अवस्था अच्छी होगी, आपके पास धन-दौलत होगी, तो बहुत लोग आपके अभिन्न मित्र बनेंगे—आपके लिए समय पर जान देने तक की डीग मारेंगे, आपके ऊपर अपना सर्वस्व तक स्वाहा कर देने की लम्बी-चौडी बातें कहेगे, पर आप इन बातो मे भूल न जाइएगा—बिना परीक्षा किये विश्वास न कर लीजिएगा। जहाँ तक हमारा अनुभव है, परीक्षा के समय कोई भी मित्र आपकी परीक्षा मे उत्तीर्ण न होगा। उस समय आप हमारी बात को सच पा कर खुश होगे।

मैंने यहाँ जो इतनी पक्तियाँ लिखी है, बहुत से लोग इन्हे मेरा खब्त समझेंगे। समझा करे, मैंने जो कुछ यहाँ लिखा है, वह निष्कपट भाव से सत्य लिखा है और वह केवल इस उद्देश्य से लिखा है, कि लोग मेरी तरह धोखा न खाएँ—तकलीफ न उठाएँ।

निष्कपट नातेदार

जिस तरह सच्चे मित्रो का प्राय अभाव-सा है, उसी तरह निष्कपट बन्धु-बान्धव और रिश्तेदारो का भी प्राय अभाव है। जब तक आपके पास लक्ष्मी रहेगी, तब तक आपके नातेदार, नातेदार बने रहेगे। ससार मे लोग साला कहलाने मे बहुत सकोच करते हैं, पर धनवान के साले बनने मे भी सौभाग्य समझते हैं। गरीब के लोग बहनोई भी नही बनते, किन्तु अमीर के, साले न होने पर भी, साले बन जाते हैं। इस जमाने मे न कोई किसी का बाप है, न बेटा-बेटी, न कोई बहिन है, न भाई—सब पैसे के सगी हैं। निर्धन को स्त्री तक त्याग देती है, तब औरो का तो कहना ही क्या! आजकल लोग उपकारी के उपकार का बदला भी नही देते। बिना उपकार कराये, किसी रिश्तेदार की सहायता करना—उसके दु ख मे आडे आना यो बहुत ही कठिन है। यदि आप धनी से दरिद्र हो जाएँ, तो आपके सब नातेदार आपको फौरन से पहले त्याग देंगे और अगर आप प्रारब्धवश फिर दरिद्र से धनी हो जाएँ, तो सब मक्खियो की तरह आ चिपटेंगे। औरो की बात जाने दीजिए, स्वय पैदा करने वाला पिता और सहोदर भाई ऐसा करते हैं। आजकल के बन्धु-बान्धव और मित्रो के सम्बन्ध मे गोस्वामी तुलसीदासजी ने बहुत ही ठीक कहा है और जो कुछ उन्होने अपने श्रीमुख से कहा है, वह हमने अपने नेत्रो से देख लिया है—

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोई नाहिं।
सरस वृक्ष पछी बसे, निरस भये उड जाहिं॥

इस दोहे का यह आशय है कि ससार मे जितने लोग हैं, सब स्वार्थ के हैं। अपने-अपने मतलब से ही सगे-सम्बन्धी और नातेदार बन रहे हैं, बिना सम्बन्ध कोई किसी का नही है। जब तक वृक्ष मे फल-फल रहते हैं, पक्षी उस पर टिके रहते हैं, जहाँ वृक्ष फलहीन हुआ, कि पक्षी उसे छोड कर नौ-दो ग्यारह हुए।

साराश—किसी ही भाग्यवान को निष्कपट बन्धु-बान्धव मिलते हैं।

क्लेशरहित मन

अगर मनुष्य का मन क्लेशरहित—नि क्लेश या स्वस्थ हो, तो उसे दुख

ही क्या है ? उसके समान सुखी कौन है ? उसके समान सौभाग्यशाली कौन है ? निस्सन्देह, जगदीश की पूर्ण दया होने से ही मन स्वस्थ रहता है। इस जगत मे बहुत ही कम लोग निरोग रहते हैं। यदि किसी को शारीरिक रोग नही है, तो मानसिक रोग है। जिसे मानसिक व्याधि नही है, ऐसा कोई विरला ही भाग्यवान है। जिस पर जगदीश की सोलह आने कृपा होती है, उसी का मन क्लेशरहित रहता है। कोई अपने व्यवसाय के घाटे के मारे मन-ही-मन दुखी हो रहा है, तो कोई अपने प्रिय पुत्र या प्यारी स्त्री अथवा और किसी प्यारे की जुदाई या मृत्यु से जल रहा है। कोई दुर्जनो के वाग्बाणो से जर्जर हो मन-ही-मन शोक-ताप से भस्म हो रहा है, कोई पराजय या शत्रु की जय से पीडित हो रहा है, कोई भावी दु,खो की कल्पना से ही चिन्तित हो रहा है। हमने ऐसा कोई नही देखा, जिसका मन किसी-न-किसी दुख से चिन्तित या क्लेशित न हो। गुरु नानक ने सारा ससार खोज डाला, पर उन्हे सच्चा सुखिया कोई न मिला। किसी का मन किसी दुख से और किसी का किसी दुख से उन्होने क्लेशित ही पाया, इसलिये उन्होने कहा—'नानक दुखिया सब ससार।' "सो सुखिया जो राम अधारा।"

गरीब और निर्धन लोग, राजा-महाराजाओ और अमीर-उमराओ को देख कर, मन-ही-मन दुखित हुआ करते हैं और कहा करते हैं कि वे लोग स्वर्ग का आनन्द भोग रहे हैं, पर वास्तव मे यह बात नही है। यह उन लोगो की खामखयाली है। जो जितने ही उच्च पद पर है, वे उतने ही चिन्ताग्रस्त और दुखी हैं। प्रकट मे वे लोग सुखी दीखते है, परन्तु उनकी भीतरी दशा बहुत ही दुख और कष्ट-पूर्ण है। उनके ऊपर बडी-बडी जिम्मेदारियाँ और चिन्ताएँ सवार हैं। बडे लोगो को रात के समय भी सुख की नीद नही आती। नातजुर्बेकार लोग समझते हैं कि धन की वृद्धि से मनुष्य सुखी होता है, पर हमारी समझ मे धन ज्यो-ज्यो बढता जाता है, चिन्ताएँ भी त्यो-त्यो बढती जाती हैं। मन को सदा सुखी रखने का एक ही उपाय 'आत्म-सयम' है। जिसने अपनी इन्द्रियो पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिसकी दृष्टि मे सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ, सयोग-वियोग, सम्पद-विपद, निन्दा-स्तुति

समान है, यानी जो समदर्शी है, वही सुखी है। जो सुख मे हर्ष नहीं करता और दुःख मे शोक नही करता, अपने प्यारे-से-प्यारे के मर जाने पर भी दुःखी नहीं होता—वह निस्सन्देह सुखी है। मन का निष्क्लेशित रहना ही सच्चा सुख है और मन तभी सुखी रह सकता है, जब कि मनुष्य इन्द्रियो पर अपना पूर्ण अधिकार जमा ले और हर अवस्था मे सन्तुष्ट रहे—त्रिलोकी की सम्पदा मिल जाए, तो भी सुखी और सर्वस्व नष्ट हो जाए तो भी सुखी। यह हालत इन्द्रिय-विजयी समदर्शी महात्माओ की होती है। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, क्योकि वे सुख-दुःख को समान और पूर्व जन्म के भले और बुरे कर्मों का अवश्यम्भावी फल समझते हैं। उनकी दशा दर्पण की-सी है, जो पहाड़ का अक्स पड़ने से दब नही जाता और समुद्र की प्रतिच्छाया पड़ने से भीगता नही। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

सुख दुख दोनों एक सम, सन्तन के मन माँहि।
मेरु उदधि गति मुकुर जिमि, भार भीजियों नाँहि॥

अगर यह कठिन बात न हो, तो मन को गोस्वामी जी की निम्न उक्ति से समझा कर ही सुखी और निश्चिन्त रखिए—

"होई है वही जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढावै साखा ?"

गोस्वामी जी के इस उपदेश मे बड़ा गूढ़ अर्थ भरा हुआ है। मन को सुखी रखने की इससे बढ कर उत्तम औषधि और नहीं है। सभी जानते हैं, सुगति और दुर्गति हमारे पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है। सुकर्मों का फल सुख है। दुष्कर्मों का फल दुःख है। कोई मनुष्य क्षण भर भी कर्म-रहित नहीं रह सकता। बुरा और भला जो हमारे सामने आ रहा है, वह सब हमारे ही किये कर्मों का फल है। कर्म-फल बिना भोगे कोई भी बच नही सकता। जो होनहार है, वह अवश्य होगी। जो नही होनी है, वह कभी न होगी। हमने जो बोया है, वही हम काटेंगे। आम का वृक्ष लगाने वाले को आम है, बबूल का वृक्ष लगाने वालों को काँटे हैं। जिस तरह बछड़ा अपनी माता को हजारों गायो मे खोज लेता है, उसी तरह कर्म अपने कर्ताओ को ढूढ़ लेता है। ईश्वर के नियम मे दोष

और भूल नही। जो कुछ और जैसा जिसने किया है, वह उसे अवश्य लेना होगा। कर्म के फल का विधाता भी मेट नही सकता। इन बातो को विचार कर, मनुष्य को सदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। आगे के दु खो की कल्पना करके, वृथा अपनी सुख की घडियो को भी दु खमय न करना चाहिए। शोक और चिन्ता से उल्टा दु ख बढता है, घटता नही। हर हालत मे खुश रहने वाले को दु ख भी दु ख-सा मालूम नही होता।

पाठको! बहुत लिखने से आपका समय नष्ट होगा। इतने मे ही समझ लीजिए कि मैंने इन सब नीति-वाक्यो के पढ लेने पर भी, अपनी मूर्खता से, इन पर अमल न किया। भावी विपद् की कल्पना-ही-कल्पनाओ मे अपने दुष्प्राप्य शरीर को नष्ट कर दिया, जवानी मे ही बुढ़ापे को बुला दिया। मेरी कल्पनाएँ मिथ्या निकली और मेरे भावी विचार एकदम झठे हो गये। जिन दु खो की कल्पनाओ से मुझे २४ साल मे कभी सुख की नीद नही आई, वे सब यो ही मूर्खता की कल्पनाएँ निकली। अन्त मे मुझे पछता कर कहना पडा—'हाय! मैंने इतने वर्ष यो ही गँवाए! सुख के दिन भी अपनी नासमझी मे दु खमय कर दिए! अन्त मे वही हुआ, जो होना था।' दूसरो के दु खो मे लोग इसी तरह समझाया करते हैं, पर खुद पर जब आ पडती है, तब प्राय: सभी मेरी तरह गलतियाँ करते हैं। पर ऐसा करना वृथा मूर्खता करके अपनी जिन्दगी खराब करना है। जो सज्जन दु ख मे नही घबराते, भावी दु खो की कल्पनाओ मे जिन्दगी बरबाद नही करते—वे सचमुच ही महापुरुष हैं, वे इस जगत् के सच्चे भूषण है। पर ऐसे पुरुषरत्न इस जगत मे विरले ही है। आशा है, पाठक मेरी गलतियो से नफा उठाएगे और अपने सुखी जीवन का एक क्षण भी वृथा दु खमय न करेंगे। जो दूसरो की गलतियो से लाभ उठाते है, वे ही बुद्धिमान हैं। दूसरो के लिए ही मैं, मौके-मौके पर, अपनी बेवकूफियो को लिख रहा हूँ। आपने अपनी बेवकूफियो और गलतियो के कहने वाले सिवा गाँधी जी के बहुत ही कम देखे-सुने होंगे। आप ऐसा मत समझ लेना, कि ऐसा आदमी एक ग्रन्थ लिख कर हमे उपदेश दे रहा है। मैं उपदेश देने योग्य नही, पर मेरी आन्तरिक इच्छा है कि और लोग मेरी तरह कष्टमय जीवन न बिताएँ, इसलिए

अपनी गलतियो की बात लिख रहा हूं। भाइयो ! महात्मना ह्यूम ने कहा है—"जो अपने जीवन मे कभी मूर्ख न था, वह कदापि बुद्धिमान न था।" अरबी मे एक कहावत है—"जो स्वय बीमार नही हुआ, वह उत्तम चिकित्सक हो नही सकता।" ससार का प्रत्येक मनुष्य अनेकानेक घटनाओ से भरा हुआ उपन्यास है। अगर सभी मनुष्य अपनी-अपनी नकाबें उलट दें—अपने बुरे-भले काम ससार के सामने रख दें, तो दुनिया के बहुत से आदमी ठोकरें खाने और खड्डो मे गिरने से बचें। पर लोगों को तो अपनी शान मे बट्टा लगाना बुरा लगता है, अपने गुणो का कीर्तन ही उन्हें अच्छा लगता है। लोग अपने अव-गुणो, अपनी गलतियों और अपनी बेवकूफियो पर पर्दा डालते और अच्छे कामो को अपने मित्र—अपने खुशामदियो द्वारा ससार के सामने रखते हैं। इनसे भी ससार को किसी-न-किसी हद तक लाभ ही होता है, पर अपने दोष और गलतियो को ससार के सामने रखने से जितना लाभ हो सकता है, उतना नही होता।

सुन्दर आकृति या अच्छी सूरत-शक्ल

सुन्दर आकृति परमात्मा की देन है, पर विद्वान उसे ही सुन्दर आकृति वाला और खूबसूरत समझते हैं, जो विद्वान है, पण्डित है, बुद्धिमान है, धर्मात्मा है, परोपकार-परायण है, दीनों पर दया करता है, गरीब और मुह-ताजो की जरूरियात को मिटाता है, अनाथो का पालन करता है, ससार के सभी प्राणियों के कष्ट को अपना कष्ट समझता है, जो सदा प्रसन्न-चित्त रहता है, जिसके माथे पर कभी चिन्ता और क्रोध की सलवटें नही पडतीं, जो मधुर भाषण से जगत के हृदय को मुग्ध कर लेता है। आंख, नाक और आकार की सुन्दरता-सुन्दरता नही है। अगर सूरत-शक्ल, आकार-प्रकार सुन्दर और निर्दोष हो और साथ ही मनुष्य मे ये खूबियां भी हो, तभी आकृति की सुन्दरता है। अगर ये खूबियां न हों, केवल आकृति सुन्दर हो, तो व्यर्थ है। साराश यह, उत्तम गुण के साथ आकृति भी सुन्दर होनी चाहिए। सुन्दर आकृति से लोगो का चित्त आकर्षित होता है, पर ऐसा मेल

कहीं-कहीं ही मिलता है। बहुधा देखने मे आता है कि रूप है तो गुण नही, गुण है तो रूप नही। वृन्द कवि ने कहा है—

जैसो गुन दीनो दई, तैसो रूप निबन्ध।
ये दोनों कहँ पाइये, सोनो और सुगन्ध॥

स्थिर सम्पत्ति

बहुत दिन तक स्थायी रूप मे रहने वाली सम्पत्ति ही सुखदायी सम्पत्ति है। आज है और कल नहीं, वह सम्पत्ति किस काम की? वैसी सम्पत्ति का न होना ही भला। पर लक्ष्मी का स्वभाव ही चञ्चल है, वह कभी एक जगह टिक कर नही रहती। आज इस घर मे है, तो कल उस घर मे। धन पाँव की धूल के समान है, जो पैरो मे लगती है और झट झड जाती है। बूकस नामक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है—"धन दुष्ट सेवको के समान है, जिनके जूते भागने वाले चमडे के बने होते है और जो एक स्वामी के पास बहुत दिनो तक नही रहते।"* अर्थात् खराब चाकर और धन किसी के पास बहुत दिनो तक नही टिकते। एक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है—"हमने किसी के पास दौलत समान रूप मे तीन पीढ़ी से अधिक ठहरती नही सुनी।" किसी ने कहा है—"दौलत के पंख होते है।" सभी ने कहा है कि धन-वैभव सदा स्थायी नही रहते। जिस तरह जन्म के साथ मृत्यु, जवानी के साथ बुढ़ापा, सयोग के साथ वियोग प्रभृति लगे हुए हैं, उसी तरह सम्पद के साथ विपद लगी हुई है। जिन पर जगदीश की पूर्ण कृपा होती है, उन्ही के यहाँ, उनकी उम्र भर, धन-ऐश्वर्य रहते हैं।

पुत्र मिलै सच्चरित, नारिहु सती सुहावन।
स्वामी हँसमुख मिलै, मित्रहू प्रीति निबाहन॥
परिजन छल सो हीन, करहु छिन तन सुखकारी।
आनन सुन्दर मिलै, अचल लक्ष्मीहू भारी॥

---

*Riches are like bad servants, whose shoes are made of running leather, and will never tarry long with one master

इमि सब शोभा की खानि, तो विद्या सुख ही मडनो ।
जब होहिं प्रसन्न रमेशजू, कल्मष सकल विखडनो ।।२५।।

25 A well-behaved son, a chaste wife, a pleased master, a fond friend, an undeceitful relative, an unafflicted mind, a graceful figure, a stable prosperity and an oratorical vocal organ are only obtainable by those with whom Vishnu, the Lord of heavan and the giver of all good, is pleased.



प्राणाघातान्निवृत्ति परधनहरणे सयम सत्यवाक्य
काले शक्त्या प्रदान युवतिजनकथामूकभाव परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभगो गुरुषु च विनय सर्वभूतानुकपा
सामान्य सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधि श्रेयसामेष पथा ।।२६।।

जीव-हिंसा न करना, पराया धन हरण करने से मन को रोकना, सत्य बोलना, समय पर सामर्थ्यानुसार दान करना, पर-स्त्रियो की चर्चा न करना और न सुनना, तृष्णा के प्रवाह को तोडना, गुरुजनो के आगे नम्र रहना और सब प्राणियो पर दया करना—सामान्यतया, सब शास्त्रो के मत से ये सब मनुष्य के कल्याण के मार्ग हैं ।

जीव-हिंसा न करना

धर्म-शास्त्रो में अनेक विषयो मे परस्पर मतभेद है, पर 'अहिंसा परम धर्म है'—इस वाक्य को सभी धर्म एक मत से मानते हैं । ससार मे जीव-हिंसा से निवृत्त रहने के समान और धर्म नही है । फिर भी, न जाने क्यो, अज्ञ नी लोग अपने पेट के लिए पराई जान लेते हैं । 'धर्मपद' मे लिखा है—'सब मनुष्य दण्ड से डरते हैं, सभी मौत से भीत होते हैं, ध्यान रखो, तुम भी उन्हीं के समान हो, इसलिए किसी की हिंसा न करो और न किसी का सहार होने दो ।

जो मनुष्य अपनी तरह सुख की इच्छा रखने वाले प्राणियो की, अपने सुख के लिए हिंसा करता है, उसे मृत्यु के पश्चात् सुख नही मिलेगा। जो किसी की भी हिंसा नही करते, जो सत्पुरुष इन्द्रियो का सयम करते हैं, वे अटल निर्वाण को प्राप्त होंगे—वहाँ उन्हे लेशमात्र भी दु ख न होगा।" हमारे ही शास्त्रो मे कहा है—"जो सब तरह की हिंसाओ से निवृत्त है, जो कष्ट-सहिष्णु हैं, जो सब जीवो को आश्रय देने वाले है—वे ही स्वर्ग को जाते हैं।" जो माँस खाता है और जिसका मास खाता है, उन दोनो का अन्तर देखो। एक को क्षण भर के लिये सुख होता है और दूसरा अपने प्राण से ही जाता है। शेखसादी ने भी कहा है—

जेरे पानत गर बिदानी हाले मौर।
हम चो हाले तस्त जेरे पाये पील॥

तुम्हारे पाँव के नीचे दबी चीटी का वही हाल होता है, जो यदि तुम हाथी के पाँव के नीचे दब जाओ तो तुम्हारा हो।" दूसरे के दु ख की अपने दु ख से तुलना किये बिना, हमे पराये दु ख का हाल मालूम नही हो सकता। मतलब यह है कि हमे सभी जीवो को अपने समान समझना चाहिए—पराये प्राण भी अपने प्राणो के समान समझने चाहिए—दूसरो को कष्ट पहुँचाने समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि यदि हमे कोई ऐसा ही कष्ट दे, हमे भी जिबह करे, तो हमारा क्या हाल हो? अगर मनुष्य यह विचार अपने हृदय मे रखे, तो उससे कभी किसी की हत्या न हो और किसी तरह का और भी जुल्म न हो। कबीरदास ने कहा है—

बकरी पाती खात है, ताको काढी खाल।
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल?
मुरगी मुल्ला सो कहै, जिबह करत है मोहि।
साहब लेखा मांगसी, सकट परिहै तोहि॥
गला काटि कलमा भरै, किया कहै हलाल।
साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल?

पर धन पर मन न चलाना

धन-जैसी खराब चीज और नही । इसके प्राप्त करने मे दुःख, रखने मे दुःख और नाश मे दुःख है । धन चिन्ता का आगार और आफतो का भण्डार है । जिनके पास यह होता है, उनकी चिन्ताएँ बेतहाशा बढ़ जाती हैं । दिन-रात वे इसी के फेर मे पड़े रहते है और उनकी जिन्दगी सदा खतरे मे रहती है और तो क्या—सगे-नातेदार और स्वय पुत्र तक धनी की मरण-कामना किया करते हैं । ग्रेगरी नामक विद्वान ने भी कहा है—"धन की प्राप्ति मे हमे उतनी खुशी नही होती, जितना कि उसके नाश से हमे दुःख होता है ।" प्लूटार्क ने कहा है—"जिनके पास धन होता है, उन्हे उससे कष्ट ही अधिक होता है ।" ऐसे अनर्थों के मूल धन को, सिवा मूर्ख और अज्ञानियो के और कौन पसन्द करे ? और यदि इसे किसी तरह ससार के काम चलाने के लिए अच्छा भी समझ ले, तो भी पराया धन, चोरी-जोरी या बेईमानी से हड़प जाना तो महा-अनर्थ और पाप का मूल है । पराया धन हरण करना तो बड़ी बात है, उसके हरण का विचार भी मन में लाना महा अनर्थकारी है । जो ऐसा विचार भी करते हैं, उनके दोनो लोक बिगड़ जाते हैं । यहाँ लोकनिन्दा होती और दण्ड मिलता है । यदि यहाँ (इस दुनिया मे) किसी तरह बच गये, तो वहाँ (दूसरी दुनिया में) तो किसी तरह बच ही नही सकते । आपकी बुरी इच्छाओं तक को नोट करने वाला आपके भीतर ही मौजूद है । वह आपके गुप्त-से-गुप्त कामो पर नजर रखता है । विदुर ने कहा है—"पराया धन हरण करने, पर-स्त्रियो से व्यभिचार करने और विश्वासी मित्रो के साथ विश्वासघात करने से मनुष्य नष्ट हो जाता है ।" 'धर्मपद' मे लिखा है—"जो हिंसा करता है, मिथ्या भाषण करता है, जो दूसरो की चीज, उनके दिए बिना अपहरण करता है, वह इस लोक मे ही, अपने हाथ से अपनी जड़ खोदता है ।"

अगर धन की लालसा ही हो, तो स्वय उद्योग करना चाहिए । उद्योगी और मिहनती के पास लक्ष्मी निश्चय ही दौड़ कर आती है । उद्योगी कभी भी दरिद्री नहीं रहता । अगर बहुत धन भाग्य मे न भी लिखा हो, तो भी उद्योगी दरिद्री नहीं रह सकता । इसलिए भूल कर भी पराये धन पर मन

न चलाना चाहिए। परद्रव्य लोष्टवत, यानी पर-धन मिट्टी के ढेले के समान समझना चाहिए।

सच बोलना

सत्य स्वय परमात्मा है। सत्य के समान न कोई धर्म है, न तीर्थ। सत्य सब धर्मों से ऊँचा है। 'वाल्मीकि रामायण' के अयोध्याकाण्ड मे लिखा है—"प्राचीन समय मे, स्वय विधाता ने सत्य और अश्वमेध यज्ञ को, तराजू के पलडो मे रख कर तोला, तो उन्हे अश्वमेध यज्ञ से सत्य भारी मालूम हुआ।"

सच्चे का सब कोई विश्वास और सम्मान करते हैं। सत्य की सदा जय होती है। सत्य की नाव पर्वत पर चलती है, सत्य से ही पृथ्वी ठहरी हुई है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य से ही हवा चलती है। जो कुछ है, वह सत्य पर ही ठहरा हुआ है। यही बात एक पाश्चात्य विद्वान ने भी कही है—"सत्य और विश्वास ससार-मन्दिर के स्तम्भ—खम्भे हैं। जब ये स्तम्भ टूट जाएगे, तब भवन गिर पडेगा और सब चूर-चूर हो जाएगा।" टिल्टसन महोदय कहते हैं—"हमे अपने लक्ष्य-स्थान या मजिल-मकसूद तक पहुँचने के लिए सत्य ही की राह पर चलना चाहिए। यह राह सीधी और नजदीकी है, अर्थात् सत्य की राह पर चलने से, हम अपने लक्ष्य-पर बहुत जल्दी पहुँचते है।" बासट नामक एक विद्वान कहते हैं—"सत्य एक रानी है, जिसका नित्य-सिंहासन स्वर्ग मे है और उसका निवास परमात्मा के हृदय मे है।" कहाँ तक कहे, सत्य की महिमा ससार के सभी विद्वानो ने खब लिखी है। सत्य ऐसा है, तभी तो इसके लिए युधिष्ठिर ने अनेक असहनीय कष्ट भोग किये। पाञ्चाली के बारम्बार रोने-गाने पर भी, भीमार्जुन के उत्तेजित करने पर भी, उन्होने सत्य को नही त्यागा और सत्य के बल से ही अन्त मे उन्ही की विजय हुई। सत्य के लिये ही हरिश्चन्द्र ने राज्य, वन और स्त्री-पुत्र तक को त्याग कर श्मशान-घाट पर चाण्डाल की सेवा स्वीकार की।

सच्चा मनुष्य ही पूर्ण है। सच्चे स्वामी पर ही नौकर की श्रद्धा होती है। मनुष्य मात्र को सच्चाई की जरूरत है। प्रकृति स्वय सच्ची है, प्रकृति का अर्थ सच्चा है और जिसमे सच्चाई है, उसमें प्रकृति का हाथ अवश्य है। सत्य को

कितना ही छिपाइये, वह छिपेगा नही। अगर दब भी जायगा, तो फिर ऊपर आयेगा।

अँगरेजी मे एक कहावत है—"सत्य और तेल सदा ऊपर रहते हैं।" सर विलियम हेम्प महोदय कहते हैं—"सत्य बोतल के काग के समान है। आप काग को पानी मे दबा दीजिये, पर वह ऊपर आये विना न रहेगा।" सत्य का भी यही हाल है। वह दबा देने पर भी कभी-न-कभी ऊपर आता ही है।

मनुष्य को सदा-सर्वदा सत्य बोलना चाहिए। सच्चा अगर कभी भूल मे या जान कर झूठ भी बोल देता है, तो उसका वह मिथ्या- भी सत्य ही समझा जाता है। जो मिथ्या बोलता है, वह यदि कभी सच भी बोले, तो लोग उसे मिथ्या ही समझते हैं। निश्चय ही सच्चा अपनी घोर विपद के भी पार हो जाता है। कहा है—

कृत्यध भोजन येषां सन्तानार्थं च मैथुनम्।
वाक् सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यपि तरन्ति ते॥

जो मनुष्य प्राण-रक्षा के लिए खाते हैं, सन्तान के लिए स्त्री-संसग करते हैं और सत्य के लिए बोलते हैं वे विपद् के पार हो जाते हैं। कबीर साहब ने कहा है—

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप॥
सांचे शाप न लागई, सांचे काल न खाय।
सांचे को सांचा मिलै, सांचे मांहिं समाय॥
झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय।
अहो कबीरा ! सांच गहु, आवागमन नसाय॥

सारांश—सदा सच बोलो। सच बोलने वाले का दर्जा सबसे ऊँचा है। सत्यवादी परमात्मा का सबसे ज्यादा प्यारा है। सत्य का परिणाम सदा सुखदाई है।

सामर्थ्यानुसार-दान करना

मनुष्य को अपनी सामर्थ्य—श्रद्धानुसार समय पर, जरूरत के समय, अवश्य दान करना चाहिए। सामर्थ्य से अधिक देना अथवा समय चूक कर बिना समय

देना अच्छा नहीं। समय की एक कौडी, बिना समय के रुपये से अच्छी है। यौवन, जीवन, चित्त, छाया, लक्ष्मी और प्रभुता-ये चचल हैं, आज हैं, कल का भरोसा नही। मरने पर केवल धर्म ही मनुष्य के साथ जाता है और सब तो शरीर से साथ ही नष्ट हो जाते है, इसलिए मनुष्य को हर दिन कुछ-न-कुछ दान करना चाहिए। कौन जाने, किस समय घडी के पैण्डुलम का हिलना बन्द हो जाए, दम निकल जाए? दानी की इस लोक मे सत्कीर्ति होती है और मृत्यु के बाद उसे स्वर्ग मिलता है। हरिश्चन्द्र, कर्ण, विक्रम, नौशेरवाँ और हातमताई आज इस असार—नापायेदार दुनिया मे नही हैं, उनकी हड्डियो का भी पता नही है, पर उनका विमल सुयश आज तक वर्तमान है और प्रलयान्त तक इसी तरह अजर और अमर रहेगा। 'हितोपदेश' मे लिखा है—

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

मैं कभी बूढा न हूंगा और न कभी मरूँगा—यह समझ कर बुद्धिमान विद्या और धन की चिन्ता करे और मेरे बाल मौत ने पकड रखे है—यह समझ कर धर्म का अनुष्ठान करे। इसी टक्कर की बात हरडर नामक एक यूरोपियन विद्वान ने भी कही है—

"Seek knowledge, as if thou wert to be here for ever, practise virtue, as if death already held thee by the bristling hair"

यह समझ कर, कि गोया तू सदा ही इस जगत मे रहेगा, विद्यार्जन कर, मौत ने तेरे बाल पकड रखे हैं, यह समझ कर धर्म का अनुष्ठान कर।

भाइयो! इस बात को हर दम याद रखो कि शरीर सदा रहने वाला नहीं, धन और सम्पत्ति सदा रहने वाले नही, मौत सिर पर खडी घात देख रही है, इसलिए भला चाहते हो, तो धर्म करो, धर्म करो। दूसरो का दुःख दूर करो। मरने पर यही मित्र—धर्म साथ जायगा और सब मित्र जीते जी के हैं। कहा है, परदेश मे विद्या मित्र है, घर मे स्त्री मित्र है, रोगी की औषधि मित्र है और मरे हुए का एकमात्र धर्म मित्र है।

अज्ञानी लोग समझते हैं—दान-धर्म और भजन-उपासना का समय बुढ़ापा है। यह उनकी कैसी भयंकर नादानी है! रोज ही देखते कि काल न बूढ़े को देखता है, न जवान को और न बालक को। वह जिसे पाता है, उसे ही उठा ले जाता है। इसलिए बचपन से ही दान-धर्म और भजन-उपासना करनी चाहिए। ध्रुव और प्रह्लाद ने बचपन में ही भगवद्भजन किया था। जो अब तक नहीं चेते हैं, वे अब चेत जाएँ। कहा है—

"पहली अवस्था में विद्या, दूसरी में धन और तीसरी में धर्म का सञ्चय नहीं किया, तो चौथी में क्या करोगे?"

"जब तक शरीर निरोग है, मृत्यु दूर है, तब तक अपनी भलाई के लिए परोपकार-पुण्य सञ्चय कर। प्राणनाश होने पर क्या करेगा?"

"हाथ दान-रहित हैं, कान वेद-शास्त्र के विरोधी हैं, नेत्रों ने साधु-महात्माओं के दर्शन नहीं किए, अन्याय से कमाए हुए धन से पेट भरा है और उससे सिर ऊँचा हो रहा है—रे रे स्यार! ऐसे निन्दित—घृणित शरीर को त्याग।"

क्या गरीबों को भी दान करना चाहिए?

दान-धर्म में गरीब-अमीर की कुछ कैद नहीं है। जिसके पास कौड़ी हो, वह कौड़ी ही दान करे, जिसके पास पैसा हो, वह पैसा ही दे, जिसके पास रुपये और अशर्फियाँ हों, वह रुपये और अशर्फियाँ ही दान करे। निर्धन की एक कौड़ी करोड़पति की अशर्फियों से अधिक फलदायी होती है। राजा भोज ने पूर्व जन्म में एक अतिथि को एक रोज अपना भोजन खिला देने से ही राज्य और अटूट सम्पत्ति पाई थी। सोचिए तो सही, एक-एक पाई रोज दान करने से एक वर्ष में ३६० पाई, दस वर्ष में ३६०० और पचास वर्ष में सहज में १८००० पाई जमा हो जाती हैं। विद्या, धन और धर्म के मामले में इस बात का खूब खयाल रखना चाहिए।

भाइयो! एक-एक ईंट से महल खड़ा हो जाता है। एक-एक बूँद से घड़ा भर जाता है। घड़ा ही क्या—एक-एक बूँद से महासागर और एक-एक छोटे कण से आपकी यह पृथ्वी बनी है। एक-एक मिनट से अनन्त युग बन गये हैं। दयापूर्ण छोटे-छोटे काम और प्रेमपूर्ण छोटे-छोटे शब्द हमारी इस पृथ्वी को

स्वर्गीय नन्दन कानन बना देते है। महात्मा विदुर ने कहा है—"जो समर्थ और बलवान होने पर क्षमा करता है और निर्धन होने पर दान करता है, वह स्वर्ग के भी सिर पर रहता है। जो धनी हो कर दान न करे और निर्धन हो कर तप न करे, उसे गले मे पत्थर बॉध कर डुबा देना चाहिए।"

सज्जनो का स्वभाव होता है कि वे आप तो दुख पाते हैं, पर दूसरो का दुख दूर करते है, उनसे दूसरो का दुख देखा ही नही जाता। उन्हे एक रोटी मिलती है, तो उसमे से आधी अपने भूखे पडोसी को दे देते है। और ऐसे भी लोग इस ससार मे हैं, जो अपने पास लाखो-करोडो होते हुए भी, दूसरो का दुख देखा करते है, पर उन्हे अपने भाइयो पर दया नही आती—उनका पत्थर-समान हृदय जरा भी नही पसीजता। वे रात-दिन निन्नायनवे के फेर मे पडे रहते हैं। उन्हे रात-दिन धन बढाने की ही चिन्ता रहती है। दान के नाम से उनका कलेजा कॉप उठता है। याचक उन्हे शत्रु जैसे दीखते है। पर यह उनकी नासमझी है। वे धन का स्वभाव नही जानते। वे समझते हैं कि हम और हमारी औलाद सदा-सर्वदा धनी ही बने रहेगे। दान करने से, दूसरों को देने से धन घट जायगा। शेख सादी ने कहा है—

जकाते माल बदर कुन के फजले ऐ रजरा।
चो बागवॉं बबुर्द बेशतर दिहद अगूर ॥

दान करने से धन घटता नही, बढता है। अगूरो की शाखें काटने से और ज्यादा अगूर आते है।

यद्यपि हमारा भारत अब दरिद्र हो गया है—अब इस देश में धन की नदियाँ नही बहती, फिर भी इस देश मे थोडे-बहुत धनी है ही। पर आजकल के धनी प्राय अशिक्षित और मूर्खराज रहते हैं। यदि वे दान भी करते हैं, तो उनसे जितना उपकार होना चाहिए, उतना उपकार नही होता। वे शिक्षित न होने से दान करने के नियम-कायदो को नहीं जानते, कुपात्र और सुपात्र का विचार नही करते। लूथर ने कहा है—"हमारा मालिक खुदा मूर्खों को धन देता है, जिन्हे धन के सिवा और कुछ नही दीखता, अर्थात् जिन्हे धन देता है, उन्हें

विद्या, बुद्धि, सज्जनता, उदारता प्रभृति सद्गुणो मे कोरा रखता है।" इसी वजह से आजकल धनी या तो दान करते ही नही, यदि करते हैं, तो ऐसो को दान करते हैं, जो मण्डे-मुसण्डे और नीच-कुकर्मियो के सरदार हैं, जिनके यहाँ लक्ष्मी का अभाव नही है, जो दानियो के धन से गो-हत्या कराते, वेश्याओ को भोगते और उन्हें नचाते है अथवा और विविध प्रकार के कुकर्म करते हैं। बहुत से दानी उनको दान देते हैं, जो रात-दिन उनकी खिदमत और खुशामद करते है, उनके पीछे-पीछे फिरा करते हैं और जो या तो कुछ-न-कुछ धन रखते हैं, अथवा कमा सकते हैं। कुछ धनी केवल अखबारो मे प्रशसा कराने के लिये ही अपना रुपया बर्बाद करते हैं। इस तरह जो धन नष्ट किया जाता है, उसका फल कुछ नही मिलता और बाज-बाज समय उलटे पाप का भागी बनना पडता है। हमारे पास स्थान का अभाव है, इसलिये हम इन बातो को और भी बढा-चढा कर लिखने मे असमर्थ हैं। 'अक्लमन्दारॉ इशारा काफी अस्त।' बुद्धिमान इशारे मे ही समझ जाते है। धन उन्हे देना चाहिये, जो वास्तव मे गरीब या मुहताज हैं, चाहे वे राह के भिखारी हो, चाहे सफेदपोश और महलो के रहने वालो हो। हजारो परिवार धन के अभाव से प्राण-त्याग कर देते हैं, पर लज्जा के मारे किसी के दरवाजे नहीं जाते। अमेरिकन धनकुबेर कारनेगी और राकफेलर प्रभृति सदा ऐसे लोगो का खूब ध्यान रखते थे—ऐसो को खोज-खोज कर धन दान करते थे, और उनको हर तरह सुखी बनाने की फिक्र रखते थे। वजह यह थी, कि ये लोग शिक्षित भी थे और धनी भी थे। बहुत लिखने से क्या, धन उन्हे देना चाहिये, जिनको उसकी सच्ची जरूरत हो। जिनके पास है, उन्हें देने से कोई लाभ नहीं। कहा है—

वृथा वृष्टि समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दान धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापि च ॥
मरुस्थल्या यथा वृष्टिः क्षुधार्त्ते भोजन तथा।
दरिद्रे दीयते दान सफल पाण्डुनन्दन ॥
दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषध पथ्य नीरुजस्य किमौषधं ॥

समुद्र मे वर्षा का होना वृथा है, अघाये हुए को भोजन कराना वृथा है, धनवान को धन देना वृथा है और दिन मे दीपक जलाना वृथा है।

मरुभूमि मे वर्षा होने से लाभ है, भूखे को भोजन कराना सफल है, उसी तरह, हे पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर ! दरिद्र को दिया दान सार्थक है।

हे कुन्तीपुत्र ! दरिद्रो का भरण-पोषण कर। धनियो को धन मत दे। रोगी को दवा हितकारी है, निरोग को दवा से क्या लाभ ?

वृन्द ने भी कहा है—

दान दीन को दीजिये, मिटे दरिद की पीर।
औषधि ताको दीजिये, जाके रोग शरीर ॥

आजकल के दानियो मे एक और दोष है। वे लोग अपने गाँव वालों, अपनी जान-पहचान वालो या अपनी लल्लोचप्पो करने वालो को ही ज्यादातर देते हैं, लेकिन यह सकीर्ण-हृदयता है। उदारो के लिये कोई पराया नही, सारा जगत उनका कुटुम्ब है। कहा है—

अय निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

यह अपना है, यह पराया है—ऐसा विचार छोटी समझ वाले ही करते हैं, उदारचरितो के लिए तो सारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है।

जब सुकरात से पूछा गया कि तुम किस देश के निवासी और नागरिक हो, तब उसने जवाब दिया—"सारे ससार का।" सचमुच ही महात्मा पुरुष सारे जगत को अपना देश, हर नगर को अपना नगर, हर आदमी को अपना नातेदार समझते हैं। जो निर्बुद्धि है, जो अज्ञानी है, वे ही किसी को अपना और किसी को पराया समझते हैं। महापुरुष सब का ही भला करते हैं और उसमे भी खूबी यह, कि बिना कहे, बिना जाँचे ही परोपकार करते है, यानी सत्पुरुष किसी के कहने-सुनने, अनुनय-विनय करने या खुशामद करने से किसी का भला नही करते। उनका तो ध्यान ही हर किसी की भलाई पर रहता है। वृन्द कवि ने कहा है—

बिना कहेहु सत्पुरुष, पर की पूरं आस।
कौन कहत है सूर को, घर-घर करत प्रकास ।।
जो सब ही को देत है, दाता कहिये सोय।
जलधर बरसत सम-विषम, थल न विचारत कोय ।।

सत्पुरुष बिना कहे ही पराया दुःख दूर करते हैं। सूरज से घर-घर मे प्रकाश करने को कौन कहता है? जो सभी को देता है, वही दाता है। ऐसा दाता मेघ है, क्योकि वह सम और विषम स्थल का विचार न करके जल बरसता है।

एक चीज का और ध्यान रखना चाहिए। वह यह है कि जिसे कुछ साहाय्य करना हो, उसे उसकी जरूरत के वक्त देना चाहिए। समय का दिया हुआ एक पैसा, बिना समय के रुपये से अच्छा होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

का वर्षा जब कृषि सुखाने, समय चूकि पुनि का पछताने।

पर-स्त्रियो की चर्चा

पर-स्त्रियो की चर्चा न तो स्वय करनी चाहिए और न ही दूसरो से सुननी चाहिए। इनकी बातें करने और सुनने से ही मद छा जाता है और फिर अनर्थों की राह खुल जाती है। इसीलिए विद्वानों ने खराब किताबो और दुष्टो की सगति से दूर रहने की सलाह दी है। स्त्रियो के रूप, यौवन और हाव-भाव का वर्णन सुनने और पढ़ने से मन शीघ्र ही विचलित हो जाता है। इस ससार मे ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं, जो कुत्सित रूप-वर्णन सुनकर, अपने हृदयों को निर्विकार रख सकें। एक बार हमारा विचार 'Mysteries of the court of London' नामक अँगरेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करके या कराकर प्रकाशित करने का हुआ। हमने उसकी दो जिल्दें पढी। पढ़ कर हमारे मन की जो बुरी दशा हुई, उसे लिख कर बता नही सकते। उसमें इस तरह का कुत्सित रूप-वर्णन है, जिसे पढ़ कर दिल न बिगड़े, ऐसे पाठक हमे बहुत कम दीखते हैं। उस किताब ने यूरोप मे लाखो नवयुवक और नवयुवतियो को भ्रष्ट कर दिया। गन्दे स्त्री-चरित्र सुनने से पैशा-

चिक प्रवृत्ति उत्तेजित हो ही जाती है—लोग सत्यानाशी राह मे कदम धर ही देते हैं; इसी से हमने उस पुस्तक को प्रकाशित न किया। यद्यपि हमको उससे धन-लाभ होता, पर और तो हजारो-लाखो घर नष्ट हो जाते—लाखो सती-साध्वी कुल्टा हो जाती, लाखो अपने पतियो के कुपथगामी हो जाने से विरह-वेदना मे जलती—लाखो नौजवान चरित्रभ्रष्ट हो कर दो कौडी के हो जाते। ऐसी भ्रष्ट पुस्तको के शौकीनो की कमी नही। पर जिन्हे अपना लोक-परलोक बनाना हो, जिन्हे अपने जीवन का बेडा सुख से पार करना हो, वे ऐसी पुस्तको से सदा काल-भुजग की तरह दूर रहे। पर-स्त्रियो का रूप-वर्णन सुन कर ही लोग पहले भी नष्ट हुए है। इन्द्र अहिल्या का और रावण सीता का रूप-वर्णन सुन कर ही उस ओर झुके। परिणाम जो हुआ, सो सभी को मालूम है। न रावण सीता की रूप-माधुरी की बातो पर कान देता न उसका पतन होता। पहले मनुष्य पर-स्त्री के रूप-लावण्य की बात सुनता है, पीछे उसका मन उसी ओर खिच जाता है। उसके बाद वह न्याय, नीति और धर्म को तिलाञ्जलि दे कर, उसे प्राप्त करने की धुन मे लग कर, विविध प्रकार के उपाय करता है। बस, इस तरह उसके सर्वनाश की राह साफ हो जाती है। 'धर्म-पद' मे लिखा है—"जो अविचारी पर-स्त्री की अभिलाषा करता है उसे चार फल मिलते है—(१) अपयश, (२) निद्रानाशक चिन्ता (३) दण्ड और (४) नरक।"

ससारी जीव अपना सर्वनाश न करें, अपने सुखमय जीवन को दुखमय न करें, इसी गरज से राजर्षि भर्तृहरि बुद्धिमानो को पर-स्त्री की चर्चा से ही अलग रहने की शिक्षा देते हैं, क्योकि आफत की जड इनकी चर्चा ही है। हम भी पाठको को इस उपदेश पर आँख बन्द करके चलने की सलाह देते हैं।

तृष्णा का प्रवाह तोडना

तृष्णा सब दुख और आफतो की जड है। जिसे तृष्णा नही है, वह निर्धन होने पर भी राजाओ का राजा और सम्राटो का सम्राट है। तृष्णाहीन की जगत मे कौन बराबरी कर सकता है? तृष्णा ही मनुष्य को नीचे-से-नीचा बनाती है, तृष्णा ही मनुष्य से पराई चाकरी कराती है, तृष्णा ही मनुष्य से नीच-से-नीच बनियो की खुशामदें कराती है, तृष्णा ही मान का नाश कराती है।

तृष्णा का दास ही अभिमानियो की खाटी-खरी सुनता है, क्षुद्र लोगो को हाथ जोडता है और उनके पैर पडता है। तृष्णार्त क्या कर्म नही करता? तृष्णा का सेवक, तृष्णा के वश मे हो, दुर्गम पर्वत और अगम्य वनो मे फिरता है, समुद्र मे गोते लगाता है और रात-रात भर श्मशान मे जाप करता है, पर तृष्णा कभी शान्त नही होती। तृष्णा का स्वभाव है, कि वह दिन-दिन बढ़ती है। कुछ भी पास न होने पर, सौ रुपये की इच्छा होती है, सौ हो जाने पर हजार की, हजार हो जाने पर लाख की और लाख हो जाने पर करोड की, करोड हो जाने पर राज्य की, राज्य मिल जाने पर साम्राज्य की और साम्राज्य मिल जाने पर त्रिलोकी के आधिपत्य की इच्छा होती है। इन्द्र को स्वर्गराज्य भोगते करोडो क्या अरबो-खरबों वर्ष हो गये, पर अब भी उसकी इच्छा स्वर्गराज्य त्यागने की नही होती, तब मनुष्य बेचारा किस खेत की मूली है?

तृष्णा के फेरे मे पडकर मनुष्य इस लोक मे क्षण-भर भी सुख नही पाता, इस दुष्प्राप्य मानव-शरीर को वृथा नष्ट करता और बारम्बार जन्म-मरण के बन्धन मे पडकर सदा दुःख भोगता है। फिर भी न जाने मनुष्य क्यो तृष्णा को नही त्यागता? अज्ञानी इतना नही समझता कि जितना मैंने पहले जमा कराया है, उतना मुझे अवश्य मिलेगा। यदि मैं न लूँ, तो भी मुझे जबरदस्ती लेना पडेगा और जो मैंने जमा नही कराया है, वह मुझे किसी तरह—हजार भटकने-भ्रमने और नीच-से-नीच कर्म करने पर भी नहीं मिलेगा। शेख सादी ने कहा है—"जो तेरे भाग्य मे नही है, वह तुझे हरगिज न मिलेगा, और जो तेरे भाग्य में है, वह तुझे, जहाँ तू होगा, वहीं मिल जायगा। सिकन्दर अमृत की तृष्णा से अँधेरी दुनिया मे गया, किन्तु वहाँ पहुँच जाने पर भी, वह अमृत को न चख सका।" मतलब यही है कि प्रारब्ध का लिखा हर जगह, बिना प्रयास, बिना उद्योग के ही मिल जाता है और जो प्रारब्ध में नही है, वह हजार-हजार चेष्टाएँ करने से भी नहीं मिलता। इसलिये मनुष्य को तृष्णा—इच्छा-त्याग कर सन्तोष करना चाहिए। सन्तोष मे ही सच्चा सुख है। सन्तोषी के बराबर इस जगत मे कोई सुखी नही। सन्तोष ही सबसे बडी दौलत है। जिसे सन्तोष नहीं, तृष्णा है, वह अरब-खरब और सारे ससार का स्वामी होने पर भी सुखी नहीं।

मनुष्य-जीवन कोई लम्बा-चौड़ा नहीं। यह बदली की छाया और बिजली की चमक के समान क्षणस्थायी है। मनुष्य जीवन खान-खोदने वाले के चकमक पत्थर के पहिये की चिनगारी है। जब तक पहिया घूमता है, रोशनी है, जहाँ पहिया ठहरा, कि अन्धकार है। ऐसे क्षणिक जीवन को, तृष्णा के भुलावे मे आकर, नष्ट करना और ईश्वर ने कुछ दिया है, उसको सुखपूर्वक न भोगना, महा अज्ञानता है। तृष्णा का ओर-छोर नहीं, एक इच्छा पूरी नहीं होती और दूसरी सामने आ जाती है। इस तरह इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं और मृत्यु झट मनुष्य को अपने पजो मे दबा कर ले भागती है। इसलिये बुद्धिमान वही है, जो तृष्णा को सन्तोष से शान्त करके परमात्मा की भक्ति और परोपकार मे अपना अमूल्य और क्षणिक जीवन अतिवाहित करे। कहा है—

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुधा धेनु, सन्तोषो नन्दननं वनम्॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्र का बगीचा है।

तृष्णा की शान्ति का उपाय मोटा-मोटी सन्तोष है। सन्तोष तभी होता है, जब मनुष्य को ज्ञान होता है। अत ज्ञान ही तृष्णा को शान्त करने वाला है। विषयो के भोगने से तृष्णा बढ़ती है और विषयो के त्यागने से तृष्णा शान्त होती है। अगर आप तृष्णा के दोषो को जान कर तृष्णा से दूर रहना चाहते हैं, तो आप मन को वश मे कीजिये। मन के वश में हो जाने से इन्द्रियाँ आप ही काबू मे हो जायँगी। इन्द्रियो के वश मे होने से इन्द्रियो के विषय—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द की चाह न रहेगी। जब इन विषयो की चाह न रहेगी, तब किसकी चाह रहेगी? अर्थात् किसी भी पदार्थ की चाह न रहेगी। जब चाह ही न रहेगी, तब तृष्णा कैसी? विषयो के भोग के लिये ही तो मनुष्य धन की तृष्णा करता है। जब विषयो को भोगने की इच्छा नहीं, तब धन की क्या जरूरत? इसलिए तृष्णा के नाश के लिये, आप अपनी इन्द्रियो को वश मे कीजिये। फिर देखिये, आपको इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग से अधिक सुख

मिलता है कि नही। जिसने इन्द्रियो को जीत लिया, उसने जगत को जीत लिया। जिसने इन्द्रियो को स्वाधीन कर लिया, वही सच्चा स्वाधीन है। जो स्वाधीन है, वह तृष्णा क्या—किसी के भी अधीन नहीं है।

महात्मा बुद्ध ने कहा है—घास से खेत का नाश होता है, तृष्णा से मनुष्य का नाश होता है। जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे दान देने से अधिक फल मिलता है।

कबीर साहब ने कहा है—

कबिरा तृष्णा पापिनी, तासो प्रीति न जोरि।
पेंड-पेंड पाछे परे, लागे मोटि खोरि॥

साराश—तृष्णा को मुँह न लगाइये। मुँह लगाने मे ही यह पीछे पडती है। इसके नाश के लिये, आप ज्ञान का सञ्चय कीजिए और ज्ञान-बल से मन और इन्द्रियो को वश मे करके, सदा सन्तोष से प्रीति कीजिए।

गुरुजनों के प्रति नम्रता

सुखाभिलाषी मनुष्यो को अपने माता-पिता-गुरु आदि बडो के आगे नम्र रहना चाहिए और सहनशीलता से काम लेना चाहिए। रूसो नामक एक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है—"सहनशीलता सीखना ही बालक का सर्व प्रथम और परम आवश्यक पाठ है।" हमारे शास्त्रो मे ऐसे नर-रत्नो के बहुत उदाहरण हैं, जिन्होने गुरुजनो की बात सहने और उनकी आज्ञापालन करने मे हद ही कर दी। उन सब मे श्रीरामचन्द्र जी सबसे आगे हैं। उनके समान नम्र और सहनशील पुरुष बहुत कम हुए है। किसी मे दो उत्तम गुण थे, तो किसी मे चार या छह, पर रामचन्द्रजी तो सभी उत्तम गुणो के आगार थे। इसी से आप मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। चाणक्य ने लिखा है—

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव॥

धर्म मे अभिरुचि, मुख मे मधुरता, दान मे उत्साह, मित्र के साथ निश्छल व्यवहार, गुरुजनो के साथ नम्रता, चित्त मे गम्भीरता, आचार मे पवित्रता, गुणो मे रसिकता, शास्त्रज्ञान, रूप की सुन्दरता और शिवजी की भक्ति—ये सब गुण, हे राघव ! आप ही मे है।

नीच लोग अपने माँ-बाप और उस्ताद या गुरु अथवा बडे भाई आदि से सदा रुखा और कड़ा बर्ताव करते हैं; पर महापुरुष गुरुजनो के आगे सदा नम्र रहते हैं और उनकी बुरी-भली सभी बातो को बर्दाश्त करते हैं। रामचन्द्र ही थे, जिन्होंने पिता की आज्ञा से राज्य छोड, चौदह साल तक वनवास के कठोर कष्ट सहन किये। अपने बडे भाई युधिष्ठिर के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने भी कम कष्ट नही सहे। ऐसे आदर्श ससार के इतिहास मे और कहाँ हैं ?

वृन्द कवि ने कहा है—

भले बुरे गुरुजन वचन, लोपत कबहुँ न धीर।
राज-काज को छाँडि के चले विपिन रघुवीर ॥
गुरु वच जोग अजोगहु, करिये भ्रम बिसराय।
राम हते जमदग्नि के, वचन सहोदर माय ॥

धैर्यवान पुरुष गुरुजनो की भली और बुरी बातो का खयाल नहीं करते। पिता की इच्छा से रामचन्द्रजी राज्य छोड कर वन को चले गये।

माता-पिता आदि बडो की उचित और अनुचित आज्ञा का, भ्रम छोड कर, पालन करना चाहिये। परशुरामजी ने पिता जमदग्नि की आज्ञा से सहोदर भाइयो और माता के प्राण नष्ट कर दिये।

प्राणिमात्र पर दया

ससार मे दया के समान और गुण नही है। जो दयालु-स्वभाव है, वह देवता है। जिसमे दया नही, वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं—राक्षस है। दयालु पुरुष समझते है कि जैसे हमे अपने प्राण प्यारे हैं, वैसे ही दूसरो के भी हैं। चीटी अगर हमारे पैर के तले दब जाय, तो उसे उतना ही कष्ट

होगा, जितना हम हाथी के पैर तले दबने से होगा। दया दो तरह से की जा सकती है—(१) दूसरों के दिल को अपने समान समझ कर उनका दिल न दुखाने से और (२) जो दुखी हैं, उनका दुख दूर करने से। अगर मनुष्य दूसरों के कष्ट और अभावों को दूर न कर सके, दूसरों की मदद न कर सके, तो कम-से-कम दूसरों का दिल तो न दुखाये, किसी को अपनी जुबान और अपने शरीर से तकलीफ तो न दे। यह भी दया ही है।

आप बालकों को असमर्थ समझ कर उन पर दया कीजिए। अपनी सामर्थ्य भर उनकी इच्छा पूरी कीजिए, उनसे कठोर बात न कहिए। उनको प्यार कीजिए—यह भी दया ही है।

आप मातृहीन, पितृहीन अनाथ बालकों पर यह समझ कर दया कीजिए, कि उन बेचारों ने अपने माता-पिता को देखा ही नहीं। उनको अपने ही बालक समझ कर, उनके भरण-पोषण और शिक्षा प्रभृति का प्रबन्ध कर दीजिए।

आप स्त्रियों पर यह समझ कर दया कीजिए कि वे अबला हैं। उनमें स्वयं कमाने और पैसा लाने की शक्ति नहीं। ये बेचारी जन्म से ही पराधीन और परमुखापेक्षी हैं, उनको यथासामर्थ्य गहने, कपड़े और अन्य आवश्यक पदार्थ दीजिए। उनकी इच्छापूर्ति के लिये कुछ नकद भी दीजिए। मन में समझ लीजिए, जैसा जी हमारा है, वैसा ही उनका भी है। घर की बहुओं पर यह समझ कर दया कीजिए, कि ये हमारे भरोसे ही अपने माँ-बापों को छोड़ कर चली आई हैं। यदि हम ही इनसे कड़वी बातें कहेंगे, इनका दिल दुखाएंगे, इनकी इच्छाएँ पूरी न करेंगे, तो ये बेचारी क्या करेंगी? अगर आज हम इन्हीं की तरह होते, तो हमारी क्या हालत होती? घर की बेवाओं पर सबसे अधिक दया कीजिए, क्योंकि वे पतिहीना हैं। संसार में पति ही स्त्री को सब तरह के सुख देने वाला है। आप उनको घर की अन्य औरतों की अपेक्षा उत्तम वस्त्र दीजिए, उनकी उचित इच्छाओं को सबसे पहले पूरी कीजिये, रोग होने पर सबसे पहले उनका इलाज कराइये, भूल कर भी उनसे कठोर वचन न कहिए। यदि उनसे कोई गलती भी हो जाय, तो उनको नादानी समझ कर क्षमा कर दीजिए; मीठी-मीठी बातों से उन्हें समझा दीजिए, कि वे फिर वैसी गलती न

करे। घर की और स्त्रियो मे भी कह दीजिए, कि उनको सबसे पहले खिलाएँ और सबसे उत्तम वस्त्र दे, भूल कर भी उनका दिल न दुखाएं। ऐसी कीजिए जिससे उन्हे पति का अभाव बहुत ही कम अखरे। ये सब काम दयालुता के ही हैं। घर की औरतों के बाद बाहर की औरतो का हक है। यथासामर्थ्य मन, वच और कम से उनके भी दुख दूर कीजिये।

देश के शासको पर भी दया कीजिये। उन बेचारो के कन्धो पर बडा बोझा है—उन्हे बहुत काम करना पड़ता है। उनको जरूरत के समय सहायता दीजिये, ताकि उनकी कठिनाइयाँ दूर हो। अगर उनसे भूल हो जाए, तो शीघ्र ही उनकी बदनामी पर कमर न कस लीजिए। मन मे सोचिए—यदि हम स्वयं इस जगह होते, तो हमसे भी ऐसी भूल होती या न होती।

आप पुस्तक-लेखकों पर दया कीजिये। उनकी भूल नजर आते ही, उनकी निन्दा पर कमर न कस लीजिये। उनकी गलतियो या त्रुटियों पर ही नजर गडा कर, उनकी गर्दनो पर कलम-कुल्हाडी चलाने को तैयार न हो जाइये। मन मे जरा इन्साफ कीजिये, कि अगर आपकी कृति पर कोई दूसरा कलम-कुल्हाडी चलाए या वाग्बाण छोडे, तो आपकी क्या दशा होगी ? आपका दिल दुखेगा या नहीं ? साथ ही इस बात का भी विचार कीजिए, कि हमसे भी भूल और गलतियाँ होती हैं या नहीं और हमारे कामो मे त्रुटियाँ रहती हैं या नही। अगर आपकी आत्मा कहे कि बेशक हमसे भी भूलें होती हैं, हमारे काम भी सर्वथा दोषहीन नही होते, तब आप ही सोचिये, कि आपको दूसरो की निन्दा करने या धूल उडाने का क्या अधिकार है ? अगर आप यह कहे कि हमसे भूलें तो होती हैं, पर औरो से कम, तब मन मे समझिये कि ऐसे भी हैं, जिनसे आपसे भी कम भूलें होती है। अगर वे आपकी धूल उडाएँ, आपकी गर्दन पर कलम-कुल्हाडी चलाएँ, तो आपको कष्ट होगा कि नही ? अगर आपकी आत्मा कहे कि दुख तो हमे भी जरूर ही होगा, तब इस हिसाब से भी आपको दूसरो के दोषो पर हँसी न उडानी चाहिये। गोल्डस्मिथ महोदय कहते हैं—"जो परले सिरे के मूर्ख हैं, वे ही सदा दूसरो की मूर्खता की बातो का मजाक उडाया करते हैं।" लेंगविन महाशय कहते हैं—"मूर्ख दूसरों के दोष पकड सकते

है, पर वे स्वय उनसे अच्छा काम नही कर मकते ।" निस्सन्देह जो दुष्टस्वभाव हैं, जो निष्ठुर-हृदय हैं, वे ही दूसरो के ऐब ढूंढ़ा करते हैं और उनकी बदनामी उड़ाने मे अपना सारा जोर लगा देते हैं । जो सज्जन हैं, सचमुच ही विद्वान हैं, वे अव्वल तो गुणो को देखते है, दोषो पर उनकी दृष्टि जाती ही नही, यदि दोष नजर तले आ भी जाते हैं, तो वे उनको क्षमा कर देते हैं, क्योकि महापुरुषो का तो स्वभाव ही होता है कि वे पराये अवगुणो को दबाते और गुणो को प्रकाशित करते हैं । जिनके दिलो मे ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, क्रोध प्रभृति दुर्गुण होते है, वे ही बेचारे लेखकों का दिल दुखाया करते हैं । वे अपने मन मे जरा इस बात का भी विचार करें, कि आरम्भ मे क्या वे आज जैसे ही थे ? हमने अपनी आँखो से देखा है कि जो लोग आज-दिन अपने तई साहित्य के बादशाह समझते हैं, उनकी आरम्भ-काल की लिखी पुस्तकें किसी भी काम की नही । जिस तरह लिखने-लिखते वे आज साहित्य मे बादशाह बन गये हैं—दूसरे भी, कोशिश करने से, वैसे ही हो जाएँगे । हमने देखा, कि एक शख्स प्रत्येक लेखक की पुस्तको की धूल उड़ाया करता था । एक दफा उसको भी धूल उड़ाने वाला मिल गया, फिर तो मियाँ जी को दिन में तारे दीख गये । आपको इज्जत बचानी कठिन हो गई । मेरा इतना कागज काला करने का यही मतलब है, कि आप दुष्टो की-सी चाल न सीखें—आप सब पर दया करें, क्योकि ये काम निन्द्य और सज्जनो के स्वभाव के विरुद्ध हैं—ऐसा काम शराफत के बईद है । जो अपने से नीचे वालो पर दया करता है, वही सच्चा महात्मा है ।

पाश्चात्य विद्वानो ने ऐसे लोगो के सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा है । उनमे से दो-एक विद्वानो के कथन, हम अपनी अनुभव की हुई बातो के प्रमाण मे, लिख देना अनुचित नही समझते, नहीं तो बहुत से महापुरुष यह कहने लगेंगे कि लेखक महाशय अपनी रक्षा के लिये ऐसा कहते हैं । कोलरिज महाशय कहते हैं—"ग्रन्थो के गुण-दोष-निरीक्षक अक्सर वे लोग हैं, जो कवि, इतिहास-लेखक या जीवनी लिखने वाले होना चाहते थे, पर जब उन्होंने सब तरह से अपनी क्षमता की परीक्षा कर ली, उन्हे सफलता न हुई, तब पर-छिद्रान्वेषी बन गये ।" उन्होंने सोचा—अगर यो नाम न हुआ, तो इस तरह ही नाम कमायें ।

शैली महाशय लिखते हैं—"चन्द लोगों को छोड कर, अधिकाश समालोचक आलसी और दुष्ट लोग है। जिस तरह चोर जब चोरी करने मे सफल नही होता, तब वह चोर पकडने वाला हो जाता है, उसी तरह जिसे ग्रन्थ लिखने मे सफलता नही होती, वह पर छिद्रान्वेषी—पराये दोष ढूढ़ने वाला बन जाता है।"

आपको ग्रन्थ-प्रकाशको पर भी दया करनी चाहिए। आप नही समझते, प्रकाशक कितनी हिम्मत करके, अपने रुपयो को कागज प्रभृति मे लगा देते है। बहुत से प्रकाशक ऐसे भी होते है, जो पैसा पास न होने पर, जहाँ-तहाँ से माँग-ताँग कर अथवा स्त्री का जेवर गिरवी रख कर किसी पुस्तक को प्रकाशित करने का साहस कर बैठते है। यदि वैसे प्रकाशक पर आप हाथ साफ करने लगे, दुर्भाग्य से लोग आपकी बात मान कर बेचारे की पुस्तक न खरीदें, तो उसकी कैसी दुर्गति हो ? आपकी लिखी पुस्तक उसने नही ली, यही अपराध किया है न ? पर भाई ! यह तो कोई अपराध नही। शायद आपके देने लायक रुपया उसके पास न हो—अथवा और ही कोई वजह हो। पर क्या इसे आप अपने प्रति अपराध समझते हैं ? आप बाजार में कोई चीज खरीदने जाएँ, दूकानदार के दिखाने और कहने-सुनने पर भी आप उसे न लें और वह आपको गालियाँ दे, तो क्या आप उसकी गालियो का बुरा न मानेंगे ? आप उस दूकानदार को अन्यायी, नीच प्रभृति न कहेंगे ? वास्तव मे दूकानदार को वैसा करने का कोई अधिकार नही है। मन मे आई चीज ली; मन मे आई, न ली। बस, यही बात अपने और प्रकाशक के दर्म्यान समझिये। आप उस बेचारे पर दया कीजिए, उसकी हानि न कराइये। खुदा न ख्वास्ता उसकी किताब रुक गई, रकम नष्ट हो गई, तो बेचारे की कैसी बुरी दशा होगी ? अगर आप उस प्रकाशक की जगह प्रकाशक होते और वह अपनी नीचता से आपके साथ वैसा ही सलूक करता जैसा कि आप कर रहे हैं, तब आपको दुःख होता कि नही, जरा अपनी छाती पर हाथ धर कर, अपनी अन्तरात्मा से पूछिए तो सही। अगर उसने बुरी पुस्तक प्रकाशित की है, उससे साहित्य गन्दा होता है, अथवा पाठक बिगड़ते हैं, तो कम-से-कम एक-दो बार आप उसे पत्र द्वारा गुप्त रूप से सावधान तो कर दीजिये। तब भी वह न माने, तभी आप

उस पर खड्गहस्त होना। आपकी ऐसी कार्रवाही का उसके चित्त पर बडा प्रभाव पडेगा। वह भविष्य मे, भूल कर भी, वैसा काम न करेगा और साथ ही वह आपकी दया का—आपकी उच्चाशयता का कृतज्ञ होगा। यह भी दया ही है।

आप अपने नौकर से मनुष्यता का वर्ताव कीजिए। उसके प्राणो को भी अपने प्राणो-जैसा समझिये। उसके और अपने शरीर मे भेद न समझिए। उसके भी ठीक आपके-से प्राण और शरीर हैं। भेद इतना ही है कि आपके पास दो पैसे हैं और उसके पास नही। आपके एक पैसा पाने के लिये उसने आपकी गुलामी की है। अगर उससे कोई काम बिगड जाए या कुछ नुकसान हो जाए, तो आप उसे तग मत कीजिए। आप उससे काम लीजिए, पर, गालियाँ देकर उसका दिल न दुखाइये, उस पर प्रहार मत कीजिए, उसके शरीर मे भी दर्द होता है। अगर वह बीमार हो जाये, तो उसका इलाज कराइये। अगर आपसे इतना न हो सके, तो उसे जरूरत के माफिक रुखसत ही दीजिए। उसको आपकी तरह शिक्षा लाभ करने और अपनी उन्नति करने के अवसर नही मिले, इसीलिये वह आपका गुलाम है और आपकी दया का हकदार है। सज्जन पुरुष अपने नौकरो पर अत्याचार नही करते, उनको अधिक कष्ट नही देते, उनको किसी तरह दु खित नही करते, उनके दु ख-सुख को अपने दु ख-सुख के समान समझते हैं, उनकी हितचिन्तना करते है। सज्जनो को सब पर दया आती है। 'गुलिस्ताँ' मे लिखा है—

बर बन्द मगीर खश्म बिसियार।
जोरश मकुन व दिलश मयाजार॥
ओरा तो बदह दिरम खरीदी।
आखिर न ब कुदरत आफरीदी॥

"अपने खरीदे गुलाम पर जुल्म मत करो—उसका दिल मत दुखाओ। तुमने उसे दस दीनारो मे खरीदा जरूर है, पर उसे बनाया नहीं है।" और भी कहा है—"तेरा यह घमण्ड, गुस्ताखी और गुस्सा कहाँ तक चलेगा? तेरे ऊपर तुझसे भी बडा मालिक है। विचार के दिन बडा भारी दुख होगा, जब

कि नेक गुलाम स्वर्ग मे पहुँचाया जायगा और दुष्ट स्वामी नरक मे जलाया जायगा।"

दुर्जनो पर भी दया कीजिए, क्योकि उनका भविष्य अन्धकारमय है। वह दूसरो पर जल-जल कर आप ही खाक हुए जाते है। दाह-रूपी शत्रु उनके पीछे लग रहा है, अब आप उन पर भी दया कीजिए।

जब आप स्वय बे-ऐब या निर्दोष नही हैं, तब आप दूसरो के दोष ढूँढने की चेष्टा क्यो करते हैं? दूसरो के अपराधो-व्यभिचारो पर आपका क्रोध करना वृथा है, इससे आपको क्या फायदा? बुरा तो इस तरह सुधरेगा नही, आपकी ही क्षति होगी। अच्छा हो, अगर आप ऐसो पर दया करें। सम्भव है, आपके मधुर वचनो और दया से उनमे कुछ सुधार हो जाये। बच्चा मारने-पीटने से सुधरने के बजाय बिगडता ही है, मगर प्रेम से—दयापूर्ण व्यवहार से बडे-बडे दुष्ट सुधरते देखे गये हैं। वाक्य-बाण बडे बुरे होते हैं। प्यार किया जाना, प्यार करने से उत्तम है। कठोरता की अपेक्षा दया के द्वारा बालको पर अधिक प्रभाव डाला जा सकता है।

एक राजा ने मरण-शय्या पर अपने पुत्र को उपदेश दिया—"बेटा! दीनो को सुखी करना, कमजोरो की जबरदस्ती से रक्षा करना, अपनी प्रभुता पर गर्व न करना, भटके हुए को राह पर लाना। अगर तुम ऐसा करोगे, तो परमेश्वर तुमसे सन्तुष्ट होगा।"

लार्ड एवरी ने कहा है—"प्रेम, दया और चित्त की शान्ति के बिना मनुष्य सुखी कदापि नही हो सकता। इसके बिना स्वर्ग भी नरक है। लोग कहते हैं कि मित्रो को प्यार करो और शत्रुओ से घृणा करो, परन्तु मैं कहता हूँ—शत्रुओ पर भी दया करो। जो तुम्हे गाली दे, उसे तुम आशीर्वाद दो। जो तुमसे घृणा करे, उसका उपकार करो। जो तुमको दु ख दे, उसके लिये ईश्वर से क्षमा माँगो। फिर देखो, कैसा आनन्द आता है।" कहा है—

जो तोकू कांटा बुवे, ताहि बोउ तू फूल।
तोकू फूल के फूल हैं, वाकूं हैं तिरशूल॥

अपराधी या निरपराध, धर्मात्मा या पापात्मा-सब पर दया करो। दया मे सब ही का समान हक है। हमारे देश के लोग बहुधा पापियो और अपराधियो से घृणा करते हैं। यह बडी भारी भूल है। सच्चा दयावान तो वही है, जो सब दया करता है। देखिये, परमात्मा सब पर दया करता है। चन्द्रमा राजा, तपस्वी, अपराधी, निरपराध, चोर, बदमाश, चमार, भगी सबके घर मे समान रूप स अपनी चाँदनी छिटकाता है। सूर्य अमीर-गरीब, छोटे-बडे, बुरे-भले, सबके घर मे रोशनी करता है।

ससार मे ऐसे लोग बहुत कम है, जो पापियो के पापकर्मों पर पर्दा डालें, उन पर दया प्रकाशित करें, उनके सुधारने की चेष्टा करें। पापियो को देख कर हँसने वाले और घर-घर उनकी निन्दा करके अपना मुँह काला करने वाले बहुत है। 'गुलिस्ताँ' मे लिखा है—"हे भक्त! पापी से तुझे घृणा न करनी चाहिए, उस पर दया करनी चाहिये।"

रोगियो की बकवास से आप नाराज न हों, बल्कि उनकी अवस्था पर तरस खाएँ। आपसे हो सके, जितनी उनकी सेवा-सुश्रूषा करे। इस दया का बडा पुण्य होता है। महात्मा हावर्ड ने अपना जीवन रोगियो और कैदियो की भलाई मे ही बिता दिया। उसने कैदियो के सुख के लिये जेल की भयानक यन्त्रणायें भोगीं और इन्हे रोगियो की सेवा करत हुए अपने प्राण त्यागे। ऐसे ही दयालु महापुरुषो का जीवन धन्य है। महात्मा बुद्ध जब कि राजकुमार थे—एक कोढी को दुःखित देख कर गोद मे ले कर बैठ गये। सारथी ने कहा—"राजकुमार! ऐसे रोगियो को कोई भी नही छूता—ऐसे रोगियो के ससर्ग से दूसरो को भी रोग हो जाता है। आप राजकुमार है, आपको ऐसा हरगिज न करना चाहिये।" बुद्ध ने कहा—"क्या राजकुमार और राजघराने वालो के रोग नहीं होता?" बहुत क्या कहें—उन्होने ससार के दुःखो से विचलित हो कर ही—दयावश अपना राज्य, अपनी स्त्री और अपने शिशु-पुत्र को त्याग कर वन की राह ली कबीरदास ने कहा है—

आवै जाओ बावरी, भावै जावहु गया।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब तें बडी दया॥

सारांश—किसी का भी दिल न दुखाओ, हो सके तो उपकार करो। इससे बढ़कर और धर्म नहीं है।

तजै प्रान की घात, और परधन नहि राखै।
पर-युवती को त्याग, वचन झूठे नहि भाषै॥
निज हाथन जुति दान देत, तृष्ना को रोकत।
दया सबन मे राख, गुरुन के चरनन ढोकत॥
यह सम्मति है श्रुति स्मृति की, सबको सुखदायक सुभग।
सब विधि दायक कल्यान को, अति उत्तम यह सुगम मग॥२६॥

26 Abstinence from murder and robbery, truthfulness, giving alms at the proper time silence in the matter of a talk about people's wives, checking the springs of avarice, respect for elders, sympathy with all, a general knowledge of all the sacred books, an unbroken compliance with religious duties, all these are the ways leading to a man's welfare.



प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥२७॥

संसार मे तीन तरह के मनुष्य होते हैं—(१) नीच, (२) मध्यम और (३) उत्तम। नीच मनुष्य, विघ्न होने के भय से, काम को

आरम्भ ही नही करते । मध्यम मनुष्य काम को आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीच मे ही छोड देते हैं । परन्तु उत्तम मनुष्य जिस काम को आरम्भ कर देते हैं, उसे विघ्न पर-विघ्न होने पर भी, पूरा करके ही छोडते हैं ।

उत्तम मनुष्य विचारवान और धैर्यवान होते हैं । वे जिस काम को करना चाहते हैं, पहले उसे सब पहलुओ से विचार लेते हैं । जब खूब अच्छी तरह से समझ लेते हैं, तभी उसमे हाथ डालते हैं, और जब हाथ डाल देते है—आरम्भ कर देते हैं, तब बारम्बार विघ्न होने, बारम्बार सफलता न होने पर भी, उसे किये ही जाते हैं और शेष मे उसे पूरा करके ही दम लेते हैं । देवताओ ने अमृत के लिये समुद्र मथना आरम्भ किया, मथते-मथते उसमे से ऐसा हलाहल विष निकला, जिससे सब जलने लगे, पर देवताओ ने धैर्य न त्यागा, विष से घबराये नही, मथन-कार्य किये ही गये, उनके दृढ अध्यवसाय से उन्हे सिद्धि हो ही गई—अमृत निकल आया और वे उसे पीकर अमर हो गये ।

महाराजा भगीरथ ने गगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने के लिये कठोर तपश्चर्या आरम्भ की । उनकी तपस्या भग करने के लिए इन्द्र ने वर्षा की, अग्नि प्रजज्वलित की, वज्र छोडा, उससे पृथ्वी कांप उठी, दशो दिशायें थरनि लगीं, पर वे आसन से न उठे, जरा भी विचलित न हुए । उन्होने दृढ प्रतिज्ञा कर ली, कि चाहे मरण ही क्यो न हो, कार्य सिद्ध करके ही उठेंगे । सुरपति जब डराकर हार गये, तब उन्होने, विश्वामित्र का तप भग करने के लिए जिस तरह अप्सरा भेजी थी, इनका तप भग करने के लिए भी अप्सरा भेजी । पर महाराज भगीरथ को अप्सरा भी काबू मे न कर सकी । तब शकर भगवान उनकी कठोर तपस्या और दृढ अध्यवसाय से परम सन्तुष्ट हुए । आपने महाराज को दर्शन देकर गगा को अपने सिर पर धारण करने का वचन दिया । ब्रह्मा पहले सन्तुष्ट हो ही चुके थे, इसलिए गगाजी स्वर्ग से आईं । महाराज की कामना सिद्ध हुई । असम्भव सम्भव हुआ । अगर महाराज घबराकर बीच मे ही तप करना छोड देते, तो क्या गगा स्वर्ग से आती ? रघुवशी राजाओ ने काम को

आरम्भ करके, विना पूरा किये, अधूरा छोडने का स्वभाव नही था, इसीसे वे ससागरा पृथ्वी के अधीश्वर हो सके थे। 'रघुवश' मे लिखा है:—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥'

सूर्यवशी राजा अपने जन्म से ही शुद्ध थे। जव तक उन्हे सफलता नही हो जाती थी, तव तक दृढता से काम किये जाते थे। सफलता प्राप्त किये विना, काम को अधूरा न छोडते थे, इसी से ससागरा पृथ्वी के स्वामी थे और तो क्या, स्वर्ग तक मे उनका रथ वेरोक-टोक चलता था।

हमारे राजा अँगरेजो मे भी यह गुण है। ये भी जिस काम को आरम्भ कर देते हैं, उसे हजार विक्षेप होने पर भी, सफल किये विना विश्राम नही लेते। इसी उत्तम गुण की वजह से, वारम्वार हारने पर भी, विश्वव्यापी महासमर मे, अन्त मे इनकी ही जीत हुई। इनके इस गुण पर मुग्ध होकर ही, विजय-लक्ष्मी ने, इनके ही गले मे विजयमाल डाली। इस गुण के कारण ही ये भी रघुवशियो की तरह ससागर पृथ्वी के अधीश्वर हैं।

महात्मा विदुर ने कहा है,—"जो मनुष्य खूव सोच-विचार कर काम को आरम्भ करता है, आरम्भ किये काम को समाप्त किये विना नही छोडता, किसी समय भी काम करने से मुँह नही मोडता और इन्द्रियो को अपने वश में रखता है, वही 'पण्डित' कहलाता है।"

वीलेण्ड नामक एक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है,—"उत्तम पुरुषो की यह रीति है कि किसी काम को अधूरा नही छोडते।"

एनन नामक एक यूरोपीय विद्वान कहते है,—"काम मे सफलता न होने से चेष्टा का परित्याग कर देना महामूर्खता है। असफलतायें चरित्र-विकास मे अद्भुत उपादान—सामग्री हैं।"

अल्काट महाशय लिखते है,—"सफलता मीठी है, पर यदि सफलता वडी-वडी तकलीफो और पराजयो के वाद, वडी देर से, प्राप्त की जाय, तो वह और भी मीठी है।"

साराश यही है, कि मनुष्य जिस काम को आरम्भ करे, उसे विना पूरा किये न छोडे। हार-पर-हार, असफलता-पर-असफलता, विघ्न-पर-विघ्न हो। पर भी, जो हतोत्साह होकर काम को न छोडे, वही उत्तम पुरुष है। उसे दृढ अध्यवसाय के बल से सफलता होगी ही। ससार मे जिन्होने रेल, तार, हवाई जहाज प्रभृति ईजाद किये हैं अथवा बडे-बडे मत फैलाये हैं, उन्हें बडी-बडी तकलीफें उठानी पडी हैं—बडे-बडे विघ्नो का सामना करना पडा है। लोगो ने उनकी खूब दिल्लगियाँ की—पर वे तो अपने आरम्भ किये काम को पूरा करके ही उठे। यह उत्तम गुण प्रत्येक सिद्धि-अभिलाषी मनुष्य को ग्रहण करना चाहिये। मध्यम पुरुषो की तरह घबराकर काम को अधर पर छोड देना अथवा नीचो की तरह असफलता या विघ्नो के भय से आरम्भ ही न करना अच्छा नही। ऐसे पुरुषो के कोई काम सिद्ध नहीं होते और वे दूसरो का भी कुछ भला नही कर सकते।

यूरोप-विजयी वीर-शिरोमणि फ्रान्स-सम्राट नेपोलियन 'असम्भव' शब्द को नही मानते थे। उनका कहना था कि ससार मे कोई काम असम्भव नही। उनका कहना यथार्थ है। स्वर्ग से गगा को लाने से अधिक क्या असम्भव होगा? एक दृढ अध्यवसायी ने वह असम्भव भी सम्भव कर डाला। मनुष्य परमात्मा पर भरोसा करके डटा रहे, कोई भी काम हुए बिना न रहेगा। डाक्टर नारमेन मेकलियड ने कहा है—

"Let the road be rough and dreary,
And its end far out of sight,
Foot it bravely, strong or weary,
Trust in God, and do the right

"राह चाहे कैसी ही खतरनाक और अन्धकारपूर्ण हो, उसका अन्त दूर और दृष्टि से बाहर क्यो न हो, आपमे बल हो और चाहे आप थके हुए हो, आप साहसपूर्वक चले जाइये, परमात्मा का भरोसा रखिये और न्याय से काम करते रहिये।" आपको सफलता होगी, आप लक्ष्य-स्थान या मजिल मकसूद पर पहुच ही जायँगे, आपकी अभीष्ट सिद्धि हो जायगी।

शेख सादी ने कहा है—

मुशकिले नेस्त कि आसाँ न शवद।
मर्द बायद कि परेशाँ न शवद॥

ऐसी कोई मुश्किल नही, जो आसान न हो जाय, पर यह जरूरी है कि मर्द घबराये नही। और भी कहा है—"हिम्मते मर्दां मददे खुदा।" साहसी की मदद खुदा करता है। मतलब यह है कि जो भगवान पर भरोसा रखकर, विना घबराये काम किये जाता है, उसको कामयाबी होती ही है।

करहि न कार्यारम्भ, विघ्नभय अधम अनारी।
मध्यम काजहिं छेड, विघ्नभय देहि विसारी॥
उत्तम त्यागहि नाहिं, करे जो काज अरम्भा।
परे अनेकन विघ्न, तदपि रहे अडिग अथम्भा॥
धन जन वैभव मे पाप बिन, रहे ऐसे जन सूर है।
ते दै मूछन पै ताव को, फिरै जगत सुख पूर है॥२७॥

27. The weak-minded do not begin (a work) for fear of obstacles Ordinary men, having begun a work, give it up finding obstacles (in the way). But the best men, once they have begun, never give up their work even if they are hindered by obstacles again and again



असतो नाभ्यर्थ्या सुहृदपि न याच्य· कृशधन
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेप्यसुकरम्।
विपद्युच्चै. स्थेय पदमनुविधेयं च महता
सता केनोद्दिष्टं विपममसिधाराव्रतमिदम्॥२८॥

सत्पुरुष दुष्टो से याचना नही करते, थोडे धन वाले मित्रो से भी कुछ नही माँगते, न्यायपूर्ण जीविका से सन्तुष्ट रहते हैं; प्राणो पर वन आने पर भी पाप-कर्म नही करते, विपाद-काल मे भी वे ऊँचे वने रहते है, यानी घवराते नही और महत् पुरुषो के पद-चिन्हो का अनुसरण करते हैं, अर्थात् वडे लोगो की चाल पर चलते हैं। इस तलवार की धार के समान कठिन व्रत का उपदेश उन्हे किसने दिया ? किसी ने नही। वे स्वभाव से ही ऐसे होते है। मतलब यह है कि सत्पुरुषो मे उपरोक्त गुण किसी के सिखाने से नही आते। उनमे ये सव गुण स्वभाव से या पैदायशी होते हैं ॥२८॥

प्रथम तो 'याचना' या माँगना शब्द ही बुरा है। याचक के मान तो होता ही नही। याचना से भगवान को भी नीचा होना पडा, मनुष्य वेचारा तो कौन चीज है। याचना के वरावर बुरा और नीचा कर्म नही। तिनका सवसे हलका है, तिनके से रूई हल्की है, पर माँगने वाला रूई से भी हल्का है। हवा रूई को भी उडा ले जाती है, पर याचक के पास नही आती। हवा डरती है कि कही मुझसे भी कुछ न माँग बैठे। 'शुक्र-नीति' मे लिखा है—धनी, गुणी, वैद्य, राजा और जल—इनसे रहित स्थान मे सदा रहना, एक भी कन्या का होना और माता-पिता से भी माँगना—ये सव दुखदायी हैं। माँगने मे अनेक दोष हैं। माता-पिता से माँगना भी बुरा है। माता-पिता से माँगने मे भी मनुष्य को दुख होता है, तो दुष्ट और नीचो से माँगना तो कैसा न दुखदायी होगा। गैर-तो-गैर, दुष्ट-स्वभाव वन्धु-वान्धवो से भी याचना करना मरण से भी अधिक कष्टदायक है। यही वजह है कि सत्पुरुष चाहे भूखे मर जायँ, छोटे-छोटे वालक भी तडप-तडप कर क्यो न प्राण दे दें, पर वे नीचो से कभी कुछ नही माँगते। सत्पुरुषो की नजर मे मान का मूल्य सवसे अधिक है। वे मान के आगे स्वर्गराज्य को भी तुच्छ समझते हैं। जिसने मान-रक्षा नही की, उसने किसी की रक्षा नही की। याचना करने या माँगने से मर जाना कही अच्छा है।

वृन्द कवि ने कहा है—

मानधनी नर नीच पै, जांचे नाहीं जाय।
कवहु न मांगे स्यार पै, वरु भूखो मृगराय ॥

मान-धनी पुरुष नीच से जाकर नही माँगते। भूखा सिंह स्यार से जाकर कभी खाने को नही माँगता।

यदि मनुष्य अपनी मानरक्षा चाहे, तो भूखा मर जाय, पर किसी से न माँगे और जिसमे दुष्ट भाई-बन्धुओ से तो किसी हालत मे भी न माँगे—भाई-बन्धुओ से तो गैर भला। भाई-बन्धु कुछ देते भी नहीं, उलटी हँसी उड़ाते और दिल मे खुश होते है। घरवालो को दया नही आती, पर गैरो को रहम आ जाता है।

तुलसीदास ने कहा है—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर न करो।
जा दिन कर तर करो; ता दिन मरन करो॥
घर मे भूखा पड रहे, दस फाके हो जायें।
तुलसी भैया-बन्धु के, कबहुँ न मांगन जाय ॥

शेख सादी ने कहा है—

अगर हिनज़ल फुरी अज दस्त खुशरुए।
वह अज शरीनी दस्ते तुर्शरुए ॥

दुष्ट के हाथ से मिठाई खाने की अपेक्षा, सज्जन के हाथ से इन्द्रायण का कड़वा फल खाना अच्छा।

जो बन्धु-बान्धव या मित्र गरीब हैं जिनके पास नाममात्र को धन है, उनसे कुछ माँगना उन्हे वृथा कष्ट देना और अपने समान दुःखी बनाना है, सो बुद्धिमान ऐसा कैसे कर सकते है?

सत्पुरुष न्याय से कमाये धन को पसद करते हैं—न्याय्य-जीविका ही उन्हें अच्छी लगती है, यह उचित ही है। जो अन्याय से कमाये धन से कुछ माँगना चाहते है, उन्हें सत्पुरुष कौन कहेगा? सभी शास्त्रो मे न्याययुक्त जीविका ही उत्तम जीविका लिखी है। 'शुक्र-नीति' मे लिखा है—

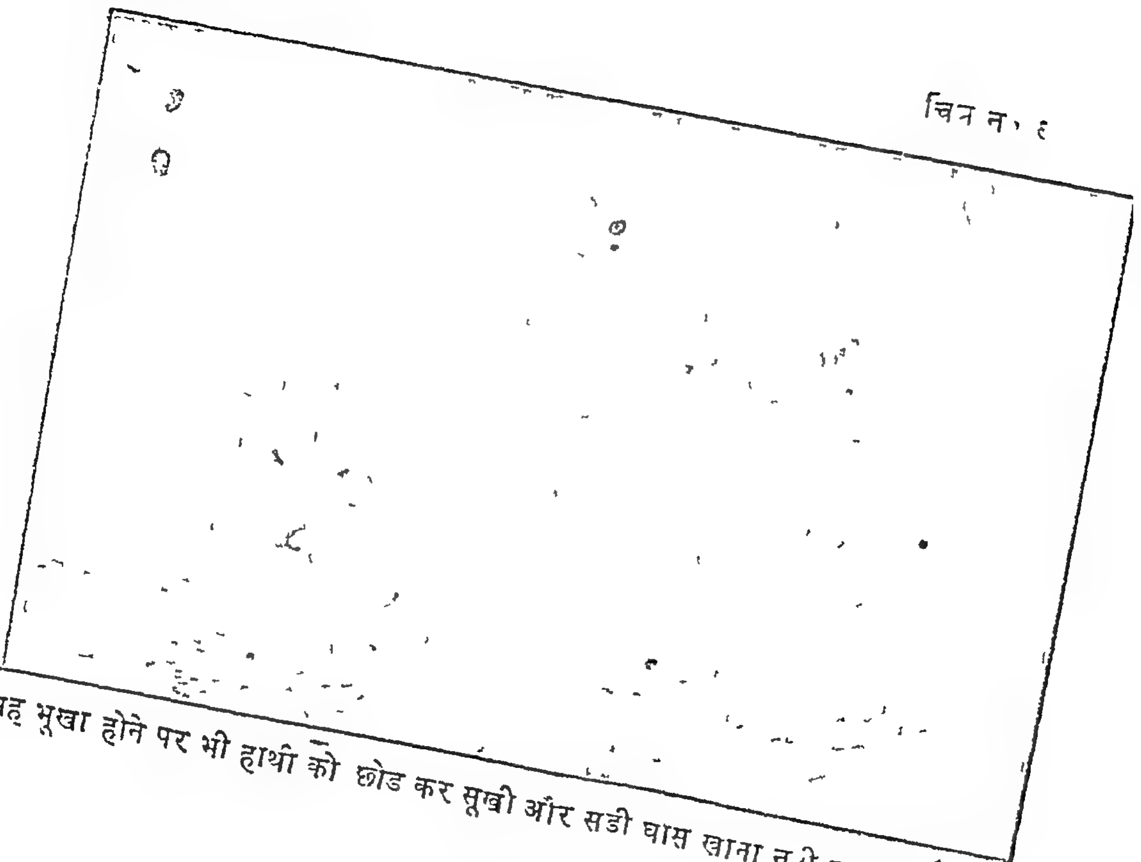
"वही जीविका श्रेष्ठ है, जिससे अपने धर्म की हानि न हो और वही देश उत्तम है,जहाँ कुटुम्ब का पालन हो।" चाणक्य ने भी कहा है—"अत्यन्त क्लेश से, धर्म के त्याग से और दुश्मनो के पैरो मे, पढने से जो धन मिले, वह धन मुझे नही चाहिये।" महाभारत मे लिखा है,—"जो मनुष्य पढा-लिखा न होने पर भी घमण्डी हो, दरिद्र होकर भी ऊँची-ऊँची वासनाओ के भोगने की इच्छा करे और बुरे कामो से धन पैदा करना चाहे—वह मूर्ख है। अन्यान्य-कर्म से कमाया धन वश का नाश कर देता है, किन्तु न्याय से कमाया धन बेटे-पोतो तक स्थिर रहता है, अत मनुष्य को सुमार्ग से ही धन सग्रह करना चाहिये।" और भी कहा है,—अन्याय का धन दस वर्ष तक ठहरता है—ग्यारहवाँ वर्ष लगने पर समूल नष्ट हो जाता है।

नीच लोग इन बातो का खयाल नहीं करते। वे तो ज्यों-ज्यो धनवान होने मे ही अपनी भलाई समझते हैं, पर सज्जन, कण्ठ मे प्राण आ जाने पर भी बुरे काम नही करते और विपद् मे नहीं घबराते तथा बडो की राह पर चलते हैं। सज्जनो को ये तलवार की धार के समान कठिन व्रत कोई नही सिखाता। इस तरह तलवार की धार पर चलने का उनका स्वभाव ही है। ससार मे ऐसे ही नररत्न धन्य हैं।

माँगें नाहिं जो दुष्ट सो, लेत मित्र को नाहिं।
प्रीति निबाहत विपद मे,न्याय वृत्ति मन माहिं॥
न्याय वृत्ति मन माहिं,उच्च पद प्यारो जिनको।
प्राणन हूँ के जात, अकृत नहिं भावत तिनको॥
खड्गधारवत् धार, रहै केहूँ नहि त्यागें।
सन्तन को यह मत्र, दियो कौने बिन माँगे॥२८॥

28 They like a livelihood lawfully gained They dislike doing evil deeds even when their life is in danger They do not beg from their true friends, if the latter are poor in wealh. They take a high

चित्र नं० ६



सिंह भूखा होने पर भी हाथी को छोड कर सूखी और सडी घास खाना नहीं चाहता।

stand when in distress and follow in the footsteps of great men. Oh, who has taught good men to observe this vow, which is as sharp as the edge of a sword ?

मान-शौर्य-प्रशंसा

क्षुत्क्षामोपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोपि कष्टा दशा-
मापन्नोपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृह
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसर केसरी ॥२९॥

जो सिंह माननीयों में अगुआ है और जो सदा मतवाले हाथियों के बिदारे हुए मस्तक के ग्रास का चाहने वाला है, वह चाहे कितना ही भूखा, बुढापे के मारे शिथिल, शक्तिहीन, अत्यन्त दुःखी और तेज-हीन क्यों न हो जाय, पर वह, प्राणनाश का समय आने पर भी सूखी हुई सडी घास खाने को हरगिज तैयार न होगा ॥२९॥

सिंह और आत्माभिमानी पुरुष एक-से होते हैं। सिंह भूखा भले ही मर जाय, पर वह सडी घास कदापि न खायगा। इसी तरह मानी पुरुष मर भले ही जाय वह मान और प्रतिष्ठानाशक नीच कर्म हरगिज न करेगा। शेख सादी ने कहा है—

न खुरद शेर नीम खुरदये सग।
गर गसखती बमीरद अन्दर गार॥

शेर भूख के मारे माँद में ही भले ही मर जाये, पर वह कुत्ते का जूठा हरगिज न खायगा।

गिरिधर कविराय ने भी कहा है—

पीवे नीर न सरवरो, बूंद स्वाति की आस।
केहरि तृण नहिं चर सके, जो व्रत करे पचास॥
जो व्रत करे पचास, विपुल गज-युत्थ विदारे।
सत्पुरुष तजें नहिं धीर, जीव वरु कोऊ मारे॥
कह गिरिधर कविराय जीव जोधक मरि जीवैं।
चातक वरु मर जाय, नीर सरवर नहिं पीवैं॥

विदा ना, ८

स्वाति-बूँद की आशा रखने वाला चातक—पपीहा प्यासा ही क्यो न मर जाय, पर वह तालाब का जल नही पीता। सिंह जो हाथियो के झुण्डो का फाडने वाला है, पचास फाके करने पर भी घास नही चर सकता। सत्पुरुष अपना धैर्य नही त्यागते, चाहे कोई उनका प्राणनाश ही क्यो न करे।

साराश यही है कि मनुष्य पर कैसी भी विपद् पडे, वह कितना ही दुखित क्यो न हो, पर वह धैर्यच्युत न हो, सब्र को हाथ से न जाने दे, घबरा कर मान और प्रतिष्ठा को नष्ट करने वाले नीच कर्मो पर उद्यत न हो जाय। सिंह भूखा मर जाता है, पर घास नही खाता। पपहिया प्यासा मर जाता है, पर स्वाति-बूँद के सिवा और जलो को नही पीता। उत्तम पुरुष को सिंह और चातक की तरह, अपनी मान-रक्षा प्राणो से भी अधिक समझनी चाहिये।

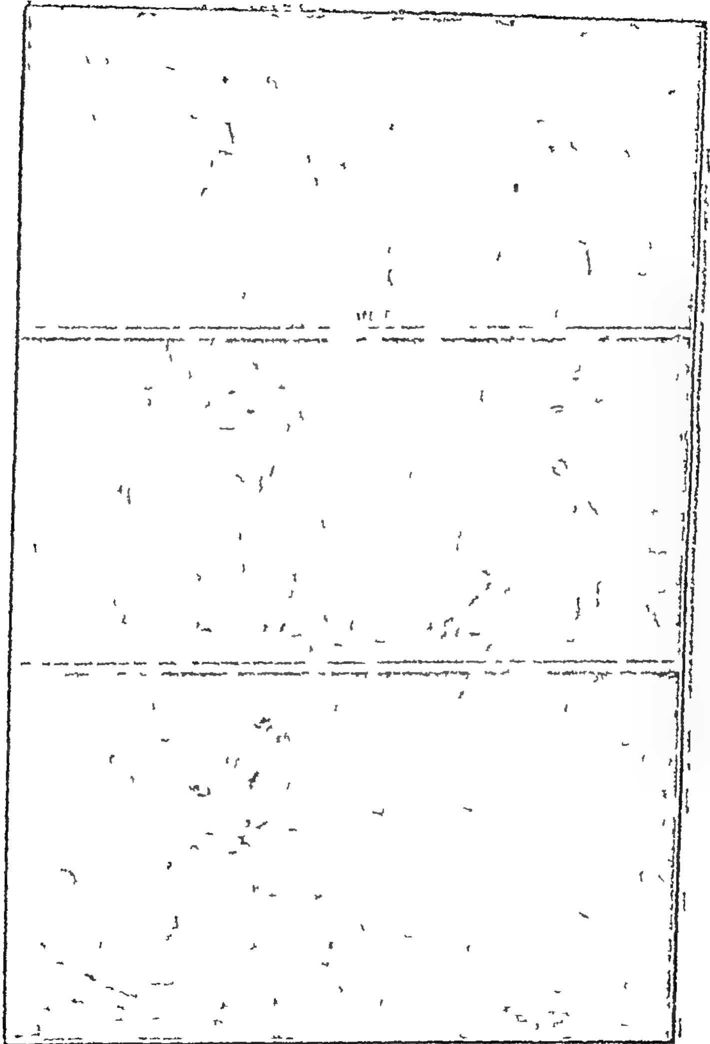
नाहर भूखो उदर कृश, वृद्ध वयस तन छीन।
शिथिल प्राण अति कष्ट सों, चलिवे ही मे लीन॥
चलिवे ही मे लीन, तऊ साहस नहिं छाँडे।
मद गज कुम्भ विदार, माँस भक्षण मन माँडे॥
मृगपति भूखौ, घास पुरानी खात न जाहर।
अभिमानिन में मुख्यशिरोमणि, सोहत नाहर॥२६॥

नीतिशतक

29 Will the lion, first in the list of honourable creatures and desirous of eating mouthfuls of flesh off the broken trunk of a mad elephant, be con-

नीतिशतक

चित्र नं० १८



tented with the eating of rotten grass, even if he is weak with hunger, old age and loss of vigour and confronted by distress, acute agony and even death itself ?



स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिन निर्मांसमप्यस्थि गो
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपम्
सर्व कृच्छ्रगतोऽपि वाछति जन सत्त्वानुरूप फलम् ॥३०॥

गाय प्रभृति पशु का जरा-सा पित्त और चरबी लगा हुआ मलिन और मास-हीन छोटा-सा हाड का टुकडा पाकर—जिससे उसकी क्षुधा शान्त नही हो सकती, कुत्ता अत्यन्त प्रसन्न होता है, लेकिन सिंह गोद मे आये हुए स्यार को भी त्याग कर हाथी को मारने को दौडता है। इससे सिद्ध होता है कि बडे लोग कैसे भी दुखित क्यो न हो, अपने पुरुषार्थ के अनुसार ही फल की आकाक्षा करते है ॥३०॥

वृन्द कवि ने कहा है—

बडे कष्ट हू जे बडे करें उचित ही काज ।
स्यार निकट तजि खोज के सिंह हने गजराज ॥

नीच मनुष्य कुत्ते के समान और बडे लोग सिंह के समान होते हैं। नीच लोग बुरी-से-बुरी चीज पर नीयत डिगा देते हैं, पर बडे लोग, घोर विपद्ग्रस्त होने पर भी, अपने पुरुषार्थ के अनुसार ही जीविका करते हैं। वे मर भले ही जायँ, पर वे नीच काम नही करते। हस या तो मोती ही चुगते हैं, नहीं तो लघन कर के मर जाते हैं। सिंह या तो गजराजो को मारकर ही खाते हैं, नहीं तो भूखो ही मर जाते हैं।

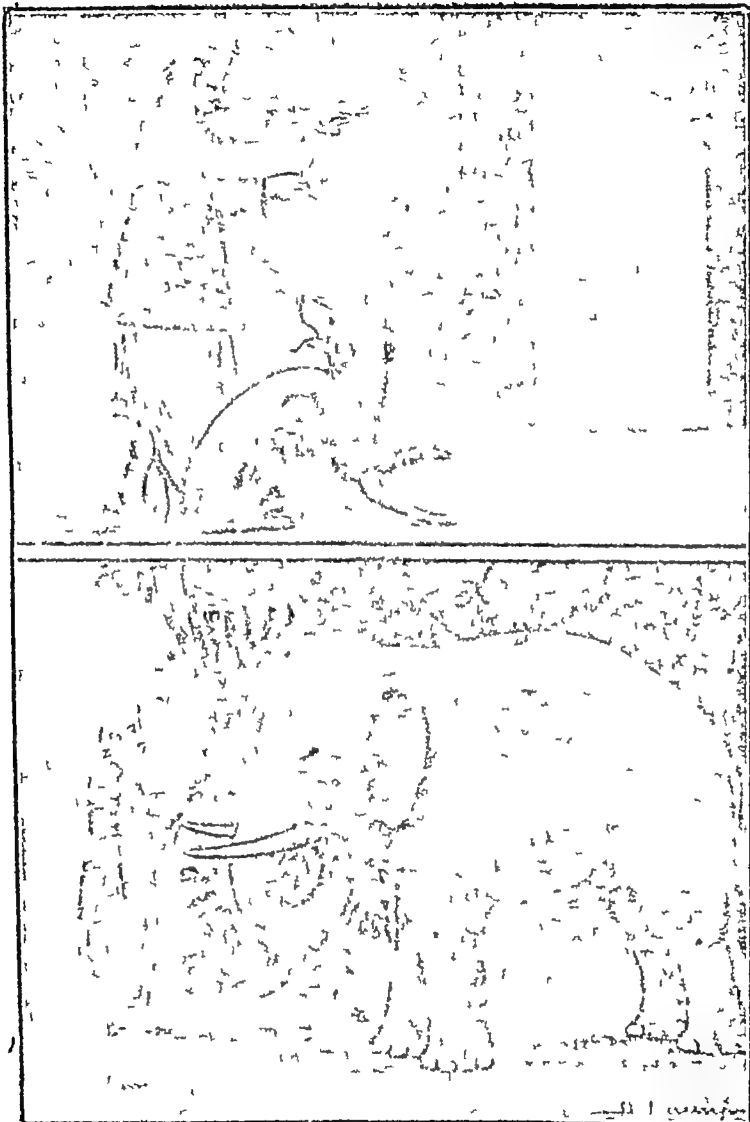
कुकर सूखे हाड सो, मानत है मन मोद ।
सिंह चलावत हाथ नहि,गीदड आये गोद ॥
गीदड आये गोद, आँखहू नाहि उघारे ।
महामत्त गज देख, दौर के कुम्भ विदारे ॥
ऐसे ही नर खरे,बडो कृत करत दुहूँ कर ।
करें नीचता नीच,कूर कुत्सित ज्यो कूकर ॥

30 A dog is delighted if he finds a small, dirty bone of beef consisting only of a little fatty matter inside and without any flesh, although it can in no way satisfy his hunger, while a lion, unheeding a jackal fallen into his arms, goes to kill an elephant This proves that every one desires for a fruit in accordance with his spirit, no matter if it be hard to attain



लांगूलचालनमाधश्चरणावपातम्
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनञ्च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीर विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥३१॥

कुत्ते को देखिये, कि वह अपने रोटी देने वाले के सामने, पूँछ हिलाता है, उसके चरणो मे गिरता है, जमीन पर लेटकर अपना मुँह और पेट उसे दिखाता है । उधर श्रेष्ठ हाथी को देखिये, कि वह अपने खिलाने वाले की तरफ धीरता से देखता है और सैकडो तरह की खुशामदे कराके ही खाता है ॥३१॥



कुत्ता अपने रोटी देने वाले के सामने मुँह और पेट दिखाता है, किन्तु गजराज सौ सौ खुशामदें कराकर खाता है।

राजर्षि भर्तृहरि नीच की नीचता और महाजन की उच्चता कुत्ते और हाथी के दृष्टान्त से दिखाते हैं। कुत्ता इतना नीच है कि एक टुकडे के लिये, रोटी देने वाले की सौ-सौ खुशामदें करता है और हाथी इतना उच्च है कि अपने रोटी देने वाले के सामने जरा भी दीनता नही करता, उल्टे सैकडो खुशामदें कराता है, तब खाता है।

मनुष्यो मे भी कुत्ते और हाथी के समान मनुष्य हैं। दुनियाँ मे ऐसे भी लोग हैं, जो अपना पेट भरने के लिये, अथवा कुछ द्रव्य प्राप्त करके विषय-विष भोगने के लिये, महाभिमानी नीच धनियो को अपना पेट दिखाते हैं, उनके पैर पकडते हैं, सैकडो तरह की झूठी खुशामदें करते है, किसी दशा मे भी न करने योग्य निन्द्य कर्म करते है, उनकी खोटी-खरी सुनते हैं, उच्च जाति होकर उनके बच्चो का मल-मूत्र तक साफ कर देते हैं, समय पर उनकी धोतियाँ तक धो डालते हैं और तो क्या—उनकी स्त्री तक की बुरी-से-बुरी लल्लो-चप्पो करते हैं, भगवान् को भूलकर हरदम बाईजी, वाईजी की रटना लगाये रहते है। ऐसे भी लोग हैं, जो अपने घरो से नही निकलते, लोग स्वय उनके घर जाकर उनकी पूजा और खुशामद करते हैं। ऐसे लोग, भूखे मरने पर भी किसी की खुशामद नही करते, क्योकि वे पराई खुशामद करके स्वर्ग-सुख भोगने को नरक के दुःखो से भी बुरा समझते है। अगर घर मे खाने को भी नही होता, तो पेट को बाँधकर या दबाकर सो जाते हैं। किसी की खुशामद से खाना और कपडा पाने की अपेक्षा, निराहार रहना और राह के चीथडे लपेट कर लज्जा-निवारण करना कही बेहतर समझते है, क्योकि किसी की खुशामद-बरामद करके जो चीज ली जाती है, उससे काया को तो लाभ होता है, पर आत्मा की हानि होती है। बडे लोगो ने कहा है—"मान-सहित मरना, अपमान-सहित जीने से भला है।"

'गुलिस्ताँ' मे लिखा है—

नानम अफजूदो आ बरूयम कास्त।
बेनवाई वह अज मजिल्लते ख्वास्त ॥

जिस रोजी से इज्जत घटे उस रोजी मे गरीबी भली है।

स्वान लेत लोयो लपक, दीन मान करि दूर ।
सौ को दे भक्षण करत, धीर वीर गजपूर ॥३१॥

31 A dog wags his tail before his bread-giver, falls at his feet and lies down on the ground to show his mouth and belly, but the noble elephant looks (on his mahout-) composedly and only eats his meal when he is flattered a hundred times



स जातो येन जातेन याति वश समुन्नतिम् ।
परिवर्त्तिनि ससारे मृत को वा न जायते ॥३२॥

इस परिवर्त्तनशील जगत मे मरकर कौन नही जन्म लेता ? पर जन्म लेना उसी का सार्थक है, जिसके जन्म से वश की गौरव-वृद्धि या उन्नति हो ॥३२॥

जिस तरह सूर्य, चाँद, शुक्र, शनि प्रभृति घूमने वाले ग्रह हैं, उसी तरह हमारी यह पृथ्वी भी एक ग्रह है । यह भी सदा ग्रहो की तरह घूमती रहती है । इस घूमने वाली पृथ्वी पर सदा परिवर्त्तन होते रहते है । ससार एक अवस्था मे नही रहता । जो आज जिन्दा है, कल वही फिर मुर्दा हो जायगा, जो मर जायगा, वही फिर जन्म लेगा, यानी इस ससार मे जीना और मरना लगा ही रहता है— रोज परिवर्त्तन होते ही रहते हैं । इस परिवर्त्तनशील जगत मे मरकर जन्म लेना उसी का सार्थक या सफल है, जिसके जन्म लेने से वश की उन्नति हो,—वश का नाम ऊँचा हो । जो जन्म लेकर अपना पेट भरते हैं और उम्र पूरी करके मर जाते हैं, पर उनमे वश की गौरव-वृद्धि नही होती, उसका जन्म लेना वृथा ही है । वैसे लोग वृथा पृथ्वी-माता को बोझो मारने को पैदा होते हैं । यदि वैसे लोग पैदा ही न होते, तो भला था, बेचारी पृथ्वी तो बोझो न मरती ।

'पञ्चतन्त्र' मे लिखा है—

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा ॥

माता की जवानी नष्ट करने वाले उस पुरुष के जन्म से क्या, जो अपने वंश मे ध्वजा के अगले भाग की तरह स्थित नही होता ?

और भी कहा है—

जातस्य नदीतीरे तस्यापि तृणस्य जन्मसाफल्यम् ।
यत् सलिलमज्जनाकुलजनहस्तावलम्बनं भवति ॥

नदी के किनारे पैदा हुए उस तिनके का भी जन्म सफल है, जो जल मे डूबने से घबराये हुए का अवलम्ब होता है ।

दानी, परोपकारी, शूर-वीर, तपस्वी, विद्वान और धर्मात्माओ के जन्म लेने से निश्चय ही कुल की गौरव-गरिमा बढ़ती है । महाराज रघु, दिलीप, राम प्रभृति महापुरुषो से उनके कुल का नाम हुआ । अभी कई सौ साल पहले इटली के एक साधारण गृहस्थ के घर मे जन्म लेकर महावीर नेपोलियन ने अपने कुल को उजागर किया । आप अपनी अपूर्व शूरता, दृढ अध्यवसाय एवं लोक-प्रियता प्रभृति गुणो से फ्रान्स के अद्वितीय सम्राट् हुए । महाराज भगीरथ ने श्री गंगाजी को स्वर्ग से लाकर रघुवंश का नाम सदा को अमर कर दिया । ऐसो की ही जननी जननी है और ऐसो ही का जन्म लेना जन्म लेना है । जिनके जन्म लेने से संसार का उपकार न हुआ, वंश का नाम न हुआ—उनकी जननी वन्ध्या और उनका जन्म लेना, जन्म लेना नही ।

जन्म-मरण जगचक्र मे, ये दो बात महान ।
करै जु उन्नति वंश की, जन्म्यो सो ही जान ॥३२॥

32 Who is not born after having died in this everchanging universe ? But he is really born, by whose birth his family gets prosperity

कुसुमस्तवकस्येव द्वे गती स्तो मनस्विनाम् ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥३३॥

फूलो के गुच्छे की तरह महापुरुषो की गति दो प्रकार की होती है—या तो वे सब लोगो के सिर पर ही विराजते हैं, अथवा वन मे पैदा होकर वन मे ही मुर्झा जाते है ॥३३॥

आत्मसम्मान चाहने वाले पुरुष फूलो की तरह होते हैं। फूल या तो देवताओ के सिर पर ही चढ़ते हैं अथवा वन के वन मे ही नष्ट हो जाते हैं। मनस्वी पुरुष भी या तो सब लोगो के ऊपर ही रहते हैं, या जहाँ पैदा होते हैं; वही चुपचाप जीवन बिताकर शेष हो जाते हैं। हिन्दू कुल-सूर्य महाराणा प्रताप ने सब राजाओं के अकबरी अधीनता स्वीकार कर लेने पर भी, स्वय अधीनता स्वीकार न की। उनके बच्चे रोटी के टुकडो के लिये तरसे, उन्होंने क्षण-भर भी चैन न पाया, पर अकबर के चरण-सेवक होने की अपेक्षा उन्होंने ये सब कष्ट अच्छे समझे। महापुरुषो का स्वभाव ही ऐसा होता है। वे जीवन से मान को बड़ा समझते हैं।

वृन्द कवि ने कहा है—

द्वै ही गति हैं बडन की, कुसुम मालती भाय ।
कै सब के सिर पर रहैं, कै वन माहि बिलायँ ॥

पहुपगुच्छ सिर पै रहै, कै सूखै वन माहिं।
मान ठौर सत्पुरुष रहि, कै सुख दुख धन माहिं ॥३३॥

33 Like a bunch of flowers there are only two alternatives for a self-respecting man He will either find a place at the head of all men or end his life silently where he is born

*

सत्यन्येऽपि वृहस्पतिप्रभृतय सभाविता पचषा-
स्तान्प्रत्येप विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भासुरौ
भ्रात पर्वणि पश्य दानवपति शीर्षावशेषीकृत ॥३४॥

आकाश मे वृहस्पति प्रभृति और भी पाँच-छह श्रेष्ठ ग्रह है; पर असाधारण पराक्रम दिखाने की इच्छा रखने वाला राहु, इन ग्रहों से वैर नही करता। यद्यपि दानवपति का सिर मात्र अवशेष रह गया है; तो भी वह अमावस्या और पूर्णिमा को—दिनेश्वर—सूर्य और निशानाथ—चन्द्रमा को ही ग्रसता है ॥३४॥

महापुरुषो का स्वभाव होता है कि वे छोटो मे वैर-भाव नही करते, क्योकि छोटो से जीतने मे नेकनामी नही मिलती, पर हार जाने मे वदनामी होती है—छोटो से जीतने मे भी हार और हारने मे भी हार। महापुरुष, इसलिये, अपने समान या अधिक बलवानो से ही युद्ध करते हैं।

कहा है—

निवल जान कीजै नहीं, कबहूँ बैर विवाद।
जीते कछु शोभा नहीं, हारे निन्दावाद॥
कै सम सो कै अधिक सो, लरिये करिये वाद।
हारे जीते होत है, दोऊ भांति सवाद॥

'पञ्चतन्त्र' मे लिखा है—

तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचै प्रणतानि सर्वत.।
समुच्छ्रितानेव तरून्प्रबाधते महान्महत्येव करोति विक्रमम्॥

सव तरह से नीचे को झुके हुए कोमल तिनके को पवन नही उखाडता, खूब खडे वृक्ष को ही उखाडता है। इससे प्रत्यक्ष है कि बडा पुरुष बडे पर ही अपना बल-विक्रम प्रकाशित करता है।

'भामिनी-विलास' मे लिखा है—

वेतु इ गडकडूति पाण्डित्यपरिपन्थिना ।
हरिणा हरिणालीषु कथ्यता क. पराक्रम ॥

हाथियो के मस्तको की खुजली मिटाने वाला, सिंह हिरणो मे अपने किस पराक्रम का वर्णन करे ?

हाथियो के मस्तक मे जो मद-जल होता है, उसके लिये भौंरे उनके पास जाते हैं और उन पर चरण-प्रहार करते हैं, पर महाबली हाथी, उनको तुच्छ समझकर, उनपर क्रोध नही करते। इससे भी यही सिद्ध होता है कि बलवान बराबर वाले से ही वैर करते हैं, पर नीच लोग अपने से कमजोरो पर ही अपनी बल-परीक्षा लिया करते हैं, वे दुर्बलो को ही सताते हैं। नीच इस बात को नही समझते कि दबे को दबाने और मरे को मारने मे कोई वीरता नही है। वे उस हवा की तरह है, जो बलवान आग को तो जगाती है, पर निर्बल दीपक को बुझाती है। नीचो का स्वभाव ऐसा होता है और महापुरुषो का स्वभाव वैसा ही होता है।

राजा निशि अरु दिवस को, शशि रवि तेज निधान ।
पाँचो ग्रह इन सम नही, ताते तजै निदान ॥
ताते तजै निदान, आन इनही सो अकडत ।
रह्यो शीश कौ राहु, चाहकर जब तब पकडत ॥
ऐसे ही नर धीर, मरत हू करत सुकाजा ।
गिरत परत रणमाहिं, सुभट पहुँचत जहँ राजा ॥३४॥

34 There are five other well-known planets such as Jupiter etc, but against these Rahu, the lover of specially heroic deeds, professes no enmity Look, O brother, it is only the two great luminaries' the sun and the moon, that this lordly

rakshasa catches hold of at the time of an eclipse although head is the only part of its body that in now left



वहति भुवनश्रेणी शेष फणफलकस्थिता
कमठपतिना मध्ये पृष्ठ सदा स विधायते
तमपि कुरुते क्रोडाधीन पयोधिरनादरा-
दहह महिता नि सीमानश्चरित्रविभूतय ॥३५॥

शेषनाग चौदह भुवनो की श्रेणी को अपने फण पर धारण करता है। उस शेषनाग को कच्छपराज ने अपनी पीठ के मध्य भाग पर धारण कर रखा है; किन्तु समुद्र ने इस कच्छपराज को भी हलकी-सी चीज समझकर अपनी गोद मे रख छोडा है। इससे प्रत्यक्ष है कि बडो के चरित्र की विभूति की कोई सीमा नही है ॥३५॥

चौदह लोको को अपने फण पर धारण करने मे शेषजी को बोझा नही लगता, यह बडे आश्चर्य की बात है। इसमे भी अधिक विस्मय की यह बात है, कि कच्छपराज ने चौदहो लोक समेत शेषनाग * को भी अपनी पीठ पर धारण कर रखा है और उन्हे भार नही लगता। जब यह देखते हैं कि समुद्र ने चौदहो लोक, शेषनाग और कच्छप इन सबको मामूली-सी—अत्यन्त हलकी-सी—चीज समझकर, अनादर से, अपनी गोद मे रख रखा है, तब तो

---

*हमारे पुराणो मे लिखा हुआ है कि पृथ्वी शेषनाग के फणो पर ठहरी हुई है। शेषनाग कच्छपराज की पीठ पर स्थित हैं। कच्छपराज बैल के सींग पर हैं इत्यादि। पर असल मे यह बात नहीं है। पृथ्वी सूर्य की आकर्षण-शक्ति से ठहरी हुई है। ऊपर की बात बडो की महिमा दिखाने के लिये कही गई है।

आश्चर्य की सीमा ही नही रहती। तात्पर्य यह कि बडो की सामर्थ्य की हद नही, वे जो करें वही थोडा है।

वृन्द ने वडो की महिमा के सम्वन्ध मे खूव कहा है—

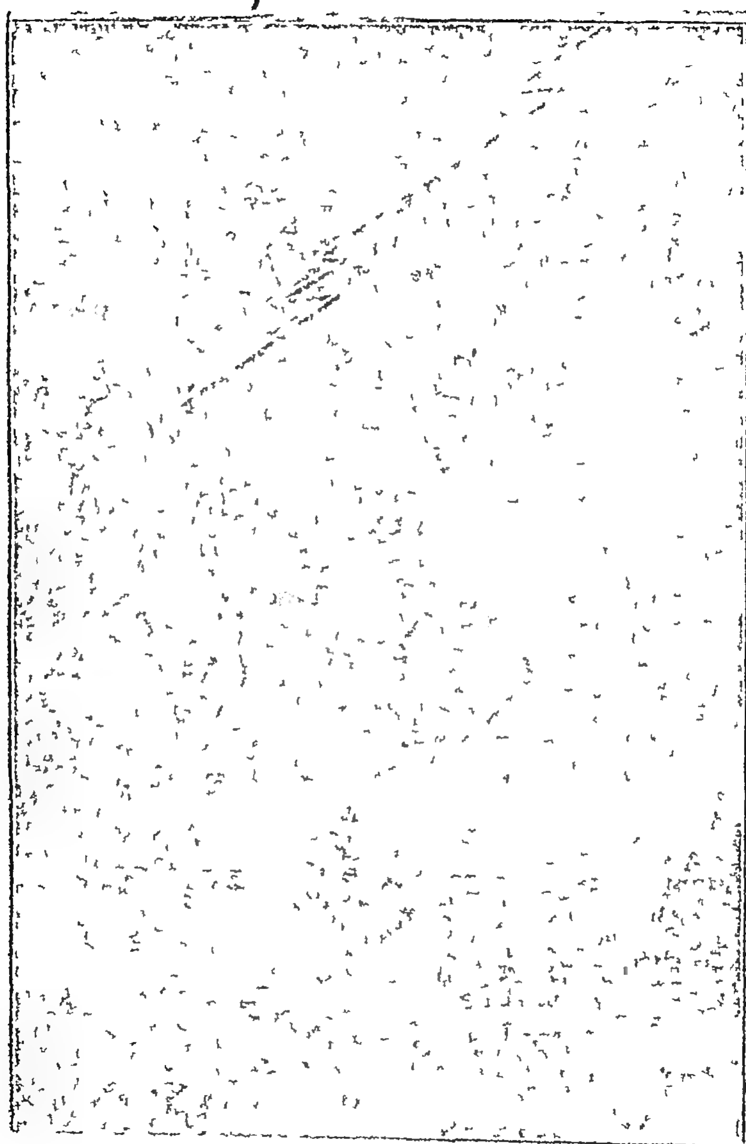
वडे जो चाहे सो करें, करन मतो उर धार।
वडे भार ले निरवहे, तजत न खेद विचार॥
वडे भार ले निरवहे, तजत न खेद विचार।
शेष धरा धरि धर धरैं, अव लो देत न डार॥

धर्‌यो धरा को शीश, शेष अति कर्‌यो पराक्रम।
शेष सहित सव भूमि, कमट धरि रह्यो विना श्रम॥
कमठ, शेष अरु भूमिभार वाराह रह्यो धर।
इन सवहिन कौ भार, एक जल के आश्रित कर॥
इक इक सो विक्रम अधिक ही, करत वडे अद्‌भुत सुकृति।
तिनके चरित सीमा रहित, अति विचित्र राखत सुकृति॥३५॥

35 The Shesha (serpent) lifts the fourteen worlds on its hood It is (in its turn) borne by the Kachhapa, the great tortoise on the middle part of its back. The tortoise again is subjected to a dependent position by the ocean which shelters the tortoise in its bosom contemptuously. Oh, how endless are the forms of behaviour displayed by the great!

वर पक्षच्छेद समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद् वहुलदहनोद्गारगुरुभि।
तुषाराद्रे सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
न नागो मपात पयसि पयसा पत्युरुचित॥३६॥

चित्र नं० ५९



मैनाक ने इन्द्र के वज्र से भयभीत होकर, पिता को संकट में छोड़ समुद्र की शरण ली। मैनाक ने यह अच्छा नहीं किया।

हिमालय-पुत्र मैनाक ने, पिता को सकट मे छोडकर, अपनी रक्षा के लिये समुद्र की शरण ली—यह काम उसने अच्छा नही किया। इससे तो यही अच्छा होता, कि मैनाक स्वय भी मदोन्मत्त इन्द्र के अग्निज्वाला उगलने वाले वज्र से अपने भी पख कटवा लेता है।।३६।।

हिमालय की स्त्री का नाम मेनका था। उसके एक पुत्र हुआ, उसका नाम मैनाक रखा गया। उस जमाने मे पहाडो के पख होते थे। उन पखो से पहाड उडते फिरते थे और विना किसी विचार के; चाहे जहाँ उडकर, मनुष्यो का सहार करते थे। इससे पृथ्वी-निवासी अतीव भयभीत हुए। तब इन्द्र ने, मनुष्यो की रक्षा के लिये, पर्वतो के पख काटने को अपना वज्र छोडा। उस समय मैनाक, अपने पिता हिमालय को सकट मे छोडकर, समुद्र से मैत्री करके उसमें जा छिपा और इस तरह अपने तईं इन्द्र-वज्र के कष्ट से बचा लिया। वहाँ जाकर उसने नागकन्याओ से शादी कर ली।

'कुमार-सम्भव' मे कालिदास ने लिखा है—

> असूत सा सा नागवधूपभोग्य मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् ।
> क्रुद्धे पि पक्षच्छदि वृत्रशत्रावदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ।।

मैनका ने नागवन्धुओ को व्याहने वाले, समुद्र के साथ सख्यसूत्र मे आवद्ध एव पख काटने वाले इन्द्र के क्रुद्ध होने पर भी वज्र-प्रहार-जनित वेदना के अनुभव से विहीन मैनाक को जना।

पिता को कष्ट मे छोडकर, अपनी प्राण-रक्षा के लिये मैनाक का समुद्र मे जा छिपना और वहाँ आनन्द करना अच्छा काम नही हुआ। जो माता-पिता जन्म दें, जो पुत्र के पालन-पोषण मे असीम कष्ट सहन करें, उन्हे विपद् के मुख मे छोडकर अन्यत्र भाग जाना वडी बुरी वात है। ऐसे लोगो की ससार निन्दा करता है। यह काम मानियो के योग्य नही।

सुख और दुःख दोनो मे मनुष्य को अपनो के साथ रहना चाहिये। जो सम्पद् मे साथ रहते हैं और विपद् मे किनारा कस जाते हैं, वे नीच है।

हिमगिरि सिर धुन कै कहै, कहा कियौ मैनाक ।
सहिवौ हौ निज सीम पै, इन्द्रवज्र परिपाक ।।
इन्द्रवज्र परिपाक, अग्निज्वाला मे जरिवौ ।
नीको हौ सब भाँति, जहाँ सन्मुख ह्वै मरिवौ ।।
दुर्यो सिन्धु के माँहि, कहौ कौलो ह्वै है थिर ।
निलज लजायो माहि, पिता नहि जान्यो हिमगिरि ।।३६।।

36 It would have been better for the Mainaka mountain if its wings had been chopped off by the hard blow given by the enraged god Indra with his thunderbolt like so many hideous sparks of blazing fire But its action of falling into the water of the ocean (saving itself from danger), taking no care of its father, the Himalaya, while the latter was in the grip of distress, was rather disgraceful



यदचेतनोऽपि पादै स्पृष्ट प्रज्ज्वलति सवितुरिनकात ।
तत्तेजस्वी पुरुप परकृतविकृति कथ सहते ।।३७।।

जब चेतना-रहित सूर्यकान्त-मणि भी सूर्य-किरण-रूपी पैरो के लगने से जल उठती है, तब चेतना-सहित तेजस्वी पुरुप, दूसरे का किया अपमान कैसे सह सकते है ? ।।३७।।

सूर्यकान्त-मणि बेजान चीज है, पर वह भी सूर्य के किरण-रूपी पैरो के लगने से अपने तई अपमानित समझकर मारे क्रोध के जल उठती है तो जानदार तेजस्वी पुरुप, दूसरो के किये अपमान को कैसे सह सकते हैं ? अर्थात नही सह सकते । मानियो को अपमान से क्रोध आये विना नहीं रह सकता

उन्हे अपमान मृत्यु-यन्त्रणा से भी अधिक भयंकर यन्त्रणादायक बोध होता है । चन्दन का स्वभाव शीतल है, पर घिसने से उसमे से भी आग निकल आती है ।

बचन बाणसम श्रवण सुन, सहत कौन रिस त्याग ?
मूरजपद-परिहार ते, पाहन उगलत आग ।।३७।।

37 The Suryakanta stone, although lifeless, spits forth fire, if it touched by the rays of the Sun as if (it were touched) by his feet, Then how can a respectable man bear an indignity inflicted by others ?



सिंह: शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेपु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ।।३८।।

सिंह चाहे छोटा बालक भी हो, तो भी वह मद से मलीन कपोलो वाले उत्तम गज के मस्तक पर ही चोट करता है । यह तेजस्वियों का स्वभाव ही है । निस्सन्देह अवस्था तेज का कारण नही होती ।

सिंह का बच्चा, नितान्त छोटा होने पर भी, मदोन्मत्त हाथी के गण्डस्थलो पर ही चोट करता है, यह उसका स्वभाव है ।

अवस्था से तेज नही होता । शकुन्तला-पुत्र राजकुमार भरत, बाल्यावस्था मे ही, हिमालय पर, सिंह के कान पकडकर उसके साथ खेला करते थे । स्वयं उनके पिता दुष्यन्त को बालक को देखकर बडा विस्मय हुआ था । उन्होने कहा था—"यह निश्चय ही किसी महातेजस्वी सौभाग्यवान का पुत्ररत्न है ।" जब उन्हें मालूम हुआ कि यह उनका ही पुत्र है, तब उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही तेजस्वियो मे शूर-वीरता स्वभाव मे ही होती है । कृष्णचन्द्र ने शिशु अवस्था मे ही पूतना जैसी विकराल राक्षसी के प्राणनाश किये । सात-आठ

साल की उम्र मे तो उन्होने अनेक महावली राक्षसो का हनन किया। कस जैसे महाबलशाली को भी उन्होने लडकपन मे ही हँसते-हँसते मार दिया। महात्मा बुद्ध ने, ऐश-आराम मे पलने और अतीव कोमल होने पर भी, ऐसे नटखट घोडे को अपने काबू मे कर लिया, जो बडे-बडे शहसवारो को अपनी पीठ से गेंद की तरह उछाल-उछालकर नीचे फेंक देता था। सिकन्दर आजम ने भी बालकपन मे ऐसे ही एक घोडे को अपने वश मे कर लिया था, जिसे राज्य के नामी-नामी चाबुक सवार काबू मे न कर सके थे। उनके पिता फिलिप को पुत्र के इस अपूर्व कौशल मे बडी प्रसन्नता हुई। कहाँ तक बतायें, ऐसे-ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं। अभिमन्यु कोई बडी उम्र के न थे, पर उन्होने वह पराक्रम दिखाया कि सात-सात महारथियो के दाँतों पसीने आ गये। निस्सन्देह तेजस्वियो मे शूर-वीरता स्वभाव से ही होती है। इसमे अवस्था को हेतु मानना भूल है।

'पञ्चतन्त्र' मे लिखा है—

बालस्यापि रवे पादा पतन्त्युपरि भूभृताम् ।
तेजसा सहजाताना वय कुत्रोपयुज्यते ॥

बालसूर्य की किरणे पर्वतो पर गिरती हैं। तेज के साथ पैदा होनेवालो की अवस्था नही देखी जाती।

हाथी इतना बडा जानवर है कि पहाड-सा दिखता है। उसमे बल की भी कमी नही, पर वह जरा-से अकुश के वश मे हो जाता है। क्या अकुश हाथी के बराबर होता है? वज्र की चोट से पर्वत गिर पडते हैं, क्या वज्र पर्वत के समान है? दीपक के जलने से घोर अन्धकार नष्ट हो जाता है, पर क्या दीपक अन्धकार के बराबर है? जिसमे तेज है, वही बलवान है। शरीर की मुटाई और अवस्था से कुछ नही होता है।

टूट सिह शिशु करि निकर, विचलावै छन माहि ।
तेजवान की प्रकृति यह, तेज हेतु वय नाहि ॥३८॥

28 Even the cub of a lion falls on the elephants, the upper parts of whose trunks are besmeared with mada (fluid). It is the nature of the high-spirited and not their as that is the cause of their boldness and courage



धन-महिमा



जातिर्यातु रसातल गुणगणस्तस्याप्यधोगच्छता-
च्छीलं शैलतटात्पततवभिजन सन्दह्यता वह्निना ।
शौर्यं वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु न केवल
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्राया. समस्ता इमे ॥३९॥

यदि जाति पाताल को चली जाय, सारे गुण पाताल से भी नीचे चले जायँ, शील पर्वत से गिरकर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्नि में जलकर भस्म हो जायँ और वैरिन शूरता पर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय—तो कोई हर्ज नही, लेकिन हमारा धन नष्ट न हो, हमे तो केवल धन चाहिये, क्योकि धन के विना मनुष्य के सारे ही गुण तिनके की तरह निकम्मे है ॥३९॥

कोई अनुभवी पुरुष कहता है,—मनुष्य की जात-पाँत, उत्तमोत्तम गुण, सुशीलता और शूरवीरता प्रभृति नष्ट हो जायँ, तो जरा भी हर्ज नही—उन सबके नष्ट होने से कोई भी हानि नही । सब नष्ट हो, पर एकमात्र धन नष्ट न हो, क्योकि धनवान में यदि ये सब गुण न भी हो, तो भी लोग उसकी पूजा करते है, और निर्धन मे ये सब गुण हो, तो भी लोग उसका आदर नहीं करते । धन विना सभी गुण निकम्मे हैं । संसार मे धन सर्वोपरि गुण है ।

धन से ही गुणो की शोभा है। जिस तरह पदार्थों मे सूर्य से प्रकाश आता है, उसी तरह लक्ष्मी से गुण प्रकाशित होते हैं।

जिनके पास धन है, वह नीच-से-नीच कुलोत्पन्न क्यो न हो, उसको सभी पूजते हैं—सभी उसका सम्मान करते हैं। निर्धन ने चाहे जैसे उत्तम कुल मे जन्म लिया हो, पर उसकी ओर लोग देखते तक नहीं। धनवान ब्रह्महत्यारे की भी लोग पूजा करते हैं। निर्धन चाहे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वंश मे पैदा हुआ हो, तो भी उसका तिरस्कार ही करते हैं।

मनुष्य चाहे कृपण हो, नीच कुलोत्पन्न हो, सज्जनो ने चाहे उसके पास जाने और उसकी सेवा आदि करने की मनाही कर दी हो, पर यदि उसके पास धन हो, तो लोग इन सब बातो की परवा न करके भी उसके पास जाते और उसकी सेवा करते हैं।

लोग, उत्तम कुल मे पैदा हुए चतुर और सज्जन निर्धन को त्यागकर, नीच कुल मे पैदा हुए महा मूर्ख दुर्जन से भी कल्पवृक्ष की तरह अनुराग करते हैं।

इस लोक मे धन होने से गैर भी अपने हो जाते है और निर्धन होने पर अपने नजदीकी नाते-रिश्तेदार भी गैर हो जाते हैं।

निर्धन की जगत मे बडी दुर्गति है। निर्धन को स्त्री-पुत्र तक त्याग देते है, निर्धन का न कोई मित्र है न नातेदार, निर्धन के सारे ही काम बिगड जाते हैं—उसे किसी भी काम मे सिद्धि नही मिलती, उसके उत्तम-से-उत्तम काम करने पर भी उसे यश नही मिलता।

कहा है—

स्वामी द्वेष्टि सुसेवितोऽपिसहसा प्रोज्झन्ति सद्बान्धवा
राजन्ते न गुणास्त्यजन्ति तनुजाः स्फारीभवन्त्यापद।
भार्या साधु सुवंशजाजपि भजने नो यान्ति मित्राणि च
न्यायारोपितविक्रमाण्यपि घृणां येषां नहि स्याद् धनम्॥

उत्तम सेवा करने पर भी, धन-हीन सेवक का स्वामी आदर नही करता, उसके अच्छे-अच्छे बन्धु-बान्धव उसे त्याग देते हैं, उसकी आपदायें बढ जाती

है। अच्छे कुल मे पैदा हुई भार्या भी उसे प्यार नही करती और नीति-मार्ग से पुरुपार्थ द्वारा प्राप्त हुए मित्र भी उसके पास नही जाते।

निर्धनता शरीर-धारियो को परम दु खदायिनि और उनका कदम-कदम पर अपमान कराने वाली है। निधनता की वजह से, निर्धन मनुष्य के वन्धु-बान्धव निर्धन को जीविताावस्था मे ही मृतक समझते है। जिसके पास कौडी नही होती, उससे उसके निकट सम्बन्धी भी लजाते हैं और उसमे अपना सम्बन्ध—रिश्ता छिपाते हैं। बहुत क्या, जिसके पास कौडी नही होती, उसके गाढे मित्र भी उसके शत्रु हो जाते हैं।

शरीर-धारियो की निर्धनता, दरिद्रता की मूर्ति और आफतो का घर है। सच तो यह है, 'मरण' का ही दूसरा नाम 'निधनता' है।

दरिद्र मनुष्य यदि कुछ देने की इच्छा से भी किसी धनी के घर जाता है, तो धनी और उसके घर वाले मन मे यही समझते है कि यह कुछ मांगने आया है, इसलिए उससे बैठने को भी नही कहते। अतएव निर्धनता को धिक्कार है!

जिस तरह काक-जौ और वन-तिल निकम्मे समझे जाते हैं, उसी तरह धनहीन भी निकम्मा समझा जाता है।

बिना दाड का सांप और बिना मद का हाथी जिस तरह निकम्मा होता है, उसी तरह बिना धन का पुरुप भी निकम्मा होता होता है।

जिसके पुत्र और सुमित्र नही, उसका घर सूना है, मूर्ख की सब दिशाएँ सूनी है और दरिद्र का तो सभी सूना है।

ऐसा कोई काम नही, जो धन से सिद्ध न होता हो, धन से स्वर्ग मे भी सीढी लग जाती है। निर्गुण धनी गुणी समझा जाता है, नीच धनी उत्तम वशज समझा जाता है। दुश्चरित्र धनी सच्चरित्र समझा जाता है, महाकायर धनी बडा भारी शूरवीर समझा जाता है। इसी से कहने वाला कहता है—जाँत-पाँत रसातल को चली जाय, गुण रसातल से भी नीचे चले जायँ, सुशीलता पर्वत से गिरकर चूर-चूर हो जाय, स्वजन अग्नि मे भस्म हो जायँ और शूरता पर वज्र गिरे तो हर्ज नही, केवल हमारा धन नष्ट न हो, उसके आने की राहे खुली रहे।

सारांश—संसार में धन ही सर्वोपरि और दूसरा परमेश्वर है। धनहीन मनुष्य प्राणहीन है।

जाति रसातल जाहु, जाहु गुण ताहू के तर।
परो शील पर शैल, अग्नि में जरो सुपरिकर॥
शूरातन के शीश, वज्र बैरिन को वरसहु।
एक द्रव्य वहु भाँति; रैन दिन घन ज्यों सरसहु॥

जिहि विन सब गुण हैं तृणहिं सम, कछु कारज नहिं कर सकहिं।
कञ्चन अधीन सब साज सुख, विन कञ्चन अकबक वकहिं॥३९॥

39 Let (the superiority of caste go to the devil, let a host of good qualities find even a worse fate, let good manners fall down from a mountain (and meet an unnatural death), let kinsmen be burnt (down) by fire, let a thunderbolt soon fall over (the head of) chivalry, ours are riches alone, without which all these good things are no better than a bit of straw

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥४०॥

सारी इन्द्रियाँ वे की वे ही हैं; काम भी सब वैसे ही हैं, परन्तु एक धन की गरमी विना वही पुरुष और-का-और हो जाता है, निस्सन्देह यह विचित्र बात है॥४०॥

मनुष्य नहीं बदल जाते, केवल अवस्था बदल जाती है, अवस्था के बदल जाने से ही मनुष्य और-का-और हो जाता है। धनावस्था में जिस मनुष्य के कर्म, बुद्धि और वचन-शक्ति की लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, निर्धनावस्था होते ही, उसी मनुष्य के उन्हीं कर्म, बुद्धि और वचन-शक्ति की लोग घोर निन्दा करने लगते हैं।

धनावस्था में मनुष्य के नाक, कान, नेत्र प्रभृति जो इन्द्रियाँ होती हैं, निर्धनावस्था में भी वे सब ज्यों-की त्यों, जहाँ-की-तहाँ और जैसी-की-तैसी बनी रहती हैं। धनावस्था में वह जैसी बातें करता है, वैसी ही निर्धनावस्था में भी करता है, धनावस्था में वह जैसे कर्म करता है, वैसे ही कर्म वह निर्धनावस्था में भी करता है, धनावस्था में वह जैसी अक्ल की तेजी दिखाता है, वैसी ही तेजी वह निर्धनावस्था में भी दिखाता है, अर्थात् निर्धनावस्था में उस मनुष्य की वे ही सब शक्तियाँ—विचार-शक्ति, वचन-चातुरी और काम करने की शक्ति कम नहीं हो जाती है—ज्यों-की-त्यों रहती हैं। पर लोगों को निर्धनावस्था में वही मनुष्य इन सबसे हीन मालूम होता है, यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। बात यह है कि मनुष्य के पास से धन का निकल जाना वैसा ही है, जैसा कि शरीर से प्राण का निकल जाना। प्राणहीन देह को जिस तरह मनुष्य निकम्मी समझते हैं, उसी तरह धनहीन मनुष्य को भी निकम्मा समझते हैं।

कहा है—

> दौर्गत्यं देहिनां दुःखमपमानकरं परम् ।
> येन स्वैरपि मन्यन्ते जीवन्तोऽपि मृता इव ॥

निर्धनता मनुष्य को घोर दुःख और अपमान करने वाली है। निर्धन के भाई-बन्धु निर्धन को जीवित अवस्था में ही मुर्दे की तरह समझते हैं।

> वे इन्द्री वे कर्म हैं, वही बुद्धि वहि ठौर ।
> धनविहीन नर छिनहि में होत और ते और ॥४०॥

40 All his senses remain the same, the same are his actions, his unfaltering reason as well as his

speech, even the individual is the same But it is strange that, destitute of the pride of wealth, in a moment he looks like another man.



यस्यास्ति वित्त स नर कुलीन
स पण्डित स श्रुतवान्गुणज्ञ ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय.
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति ॥४१॥

जिसके पास धन है, वही कुलीन, पण्डित, शास्त्रज्ञ, वक्ता और दर्शनीय है। इससे सिद्ध हुआ कि सारे गुण धन मे ही हैं ॥४१॥

जिसके पास धन है, वह अकुलीन होने पर भी कुलीन, अपण्डित होने पर भी पण्डित, अशास्त्रज्ञ होने पर भी शास्त्रज्ञ, बोलना न जानने पर भी सुवक्ता और कुरूप होने पर भी देखने योग्य खूबसूरत है। कहा है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा ।
यस्यार्था स पुमाँल्लोके यस्यार्था स हि पण्डित ॥
शूर सुरूप सुभगश्च वाग्मी शस्त्राणि शास्त्राणि विदाकरोति ।
अर्थं विना नैव यशश्च मान प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके ।

जिसके पास धन है, उसके मित्र है, जिसके पास धन है, उसी के बन्धु-बान्धव है, जिसके पास धन है, ससार मे वही पुरुष है, जिसके पास धन है, वही पण्डित है ।

शूरवीर, रूपवान, सुन्दर, वाचाल, शस्त्र-विद्या और शास्त्र-विद्या जानने वाला मनुष्य भी, इस लोक मे धन बिना यश और मान नही पाता, अर्थात् धनहीन मे उन गुणो का होना न होने के ही समान हैं ।

और भी कहा है—

पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते ।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि स प्रभावो धनस्य च ॥

धनवान यदि पूजा करने-योग्य नही होता, तो भी लोग उसकी पूजा करते है, धनवान यदि पास जाने लालक भी नही होता, तो भी लोग उसके पास जाते है, और धनवान यदि प्रणाम करने योग्य नही होता, तो भी लोग उसे प्रणाम करते हैं। यह सब धन की माया है।

भोजन से जिस तरह इन्द्रियो मे सामर्थ्य आती है, उसके बल से ये सब कामो मे समर्थ होती हैं, उसी तरह धन से ससार के सब काम होते हैं। ससार मे पैसा ही हर्ता कर्ता और विधाता—पैसा ही माता, पिता और मित्र है। बहुत क्या, पैसा ही परमात्मा है। लूथर महाशय कहते हैं—

The God of this word is riches, pleasures and pride

इस ससार का खुदा धन, सुख और गरूर है।

सचमुच, धन मे ही सारे गुण है। धन से ही मनुष्य मनुष्य है, धन बिना मनुष्य मृतक है। धनहीन का मर जाना या वन मे रहना भला, क्योंकि धन-हीन का कोई आदर नही करता। और तो क्या, सगे माँ-बाप और स्त्री तक धनहीन को नफरत की नजर से देखते है। इसलिए, समझदार लोग जब उद्योग करने पर भी धन को प्राप्त नही कर सकते—सब कुछ करके थक जाते है, तब अपमान के भय से वन मे चले जाते हैं।

कहा है—

वर वन व्याघ्रगजेन्द्र सेवित द्रुमालय पक्वफलाम्बुभोजनम्।
तृणानि शय्या परिधान वल्कल न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।

सिंह-व्याघ्रादि वाले वन मे पेड के नीचे बसना, पके-पके फल खाना, जल पीना और घास की शय्या पर सोना भला, पर भाई-बन्धुओ के बीच मे निर्धन होकर रहना भला नही।

और भी कहा है—

यत्र देशेऽथवा स्थाने भोगाभुक्ता स्ववीर्य्यत।
तस्मिन् विभवहीनो यो वसेत्स पुरुषाधम ॥

जिस देश या जिस स्थान मे अपने पराक्रम से अनेक भोग भोगे हो, उसी स्थान मे जो ऐश्वर्यहीन होकर रहता है, वह नीच है।

धन से ही मनुष्य मे मान, दर्प, विज्ञान, विलास और बुद्धि प्रभृति होते हैं और धन के साथ ही ये सब नष्ट हो जाते हैं। बुद्धि प्रभृति रहें कहाँ से ? कुटुम्ब के भरण-पोषण की चिन्ता इन सबको नष्ट कर देती है। धन का नाश होने पर निश्चय ही मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। उसे रात-दिन घी, तेल, नमक, चावल, कपड़े और ईंधन की चिन्ता लगी रहती है। जब बुद्धि ही नष्ट हो गई, तब मनुष्य मे रहा ही क्या ? वह तो बिना पतवार की नाव हो गई। इसलिये, जीवन का बेड़ा पार करने के लिये, मनुष्य को धन अवश्य ही सग्रह करना चाहिये। धन के बिना धर्म भी नहीं होता। धर्म और अर्थ आपस मे एक दूसरे को पुष्टि करते हैं। अर्थ—धन द्वारा धर्म अर्जित होता है। धन प्राप्त होने पर या इन्द्रियो के तृप्त होने पर जो सुख मिलता है, उसे 'काम' कहते हैं। सुखसेव्य द्रव्य के भोगने से मनुष्य जिस प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं, वही काम का फल है। उसके उपयोग मे वचित होने पर मानव-जन्म निष्फल हो जाता है। अर्थ और काम के त्रिवर्ग मे परिगणित होने से—धर्म, अर्थ और काम—इन त्रिवर्ग के प्रति समान यत्न करना पड़ता है। मनुष्य को दिन के पहले भाग मे धर्माचरण, दूसरे भाग मे अर्थ-सञ्चय और तीसरे भाग मे कामानुशीलन करना चाहिये। जो यथासमय त्रिवर्ग-साधन करते हैं वे धर्मतत्व के जानने वाले पण्डित हैं। धन बिना धर्म और काम की प्राप्ति मे बाधा पड़ती है, इसलिये धनोपार्जन अवश्य ही करना चाहिये और साथ ही सचित धन की रक्षा करनी चाहिये*। धन से स्वय सुख भोगना चाहिये और उसे सत्पात्रो को देकर पुण्य-सचय करना चाहिये। धन की गर्मी मनुष्य के तेज को बढ़ाती है और यदि उसका भोग और त्याग हो, तब तो कहना ही क्या है ?

---

*लक्ष्मी कैसे आती है, किनके पास आती है और लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये—ये सब बातें हमने विस्तारपूर्वक, इसी पुस्तक के ८८ वें श्लोक के नीचे लिखी हैं।

सोइ पंडित वक्ता गुणी, दर्शन जोग कुलीन ।
जाके ढिग लक्ष्मी अहे, सब गुण तिहिं आधीन ॥४१॥

41 That man is nobly born and is wise as well as qualified and is to be considered a good speaker as well as personage fit to be seen, who has wealth. All the good qualities rest in the possession of gold



दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यति सगात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुल कुतनयाच्छील खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषि स्नेह प्रवासाश्रयान्
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४२॥

दुष्ट मन्त्री से राजा ससारियो की सगति से सन्यासी, लाड से पुत्र, न पढने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, खल की सेवा से शील, मदिरा पीने से लज्जा, देख-भाल न करने से खेती, विदेश मे रहने से स्नेह, प्रीति न करने से मित्रता, अनीति से सम्पत्ति और अन्धाधुन्ध खर्च करने से धन नष्ट हो जाता है ॥४२॥

जो मन्त्री दिल से राजा का भला चाहता है, समय पर राजा को उचित सलाह देता है, राजा के धन को स्वय नही हडपता, रिश्वत नही खाता, व्यसन और व्यभिचार से परहेज करता है, प्रजा को सन्तुष्ट करके राजा का धन बढ़ाता है, स्वार्थ-साधन के लिये राजा को कुपथ पर नही चलाता, वलिक राजा कुपथ पर चलता है, तो निर्भय होकर राजा और राज्य की भलाई के लिये राजा को रोकता है, वही मन्त्री अच्छा होता है, उससे राजा का राज नष्ट नही होता । किन्तु यदि मन्त्री विपरीत गुणो वाला होता है, अपना उल्लू सीधा

करो के लिय राजा के व्यभिचारादि निन्द्य कर्मों का समर्थन करता है, वह राजा का वैरी होता है। वैसे मन्त्री को कुमन्त्री कहते हैं। कुमन्त्री की कुमन्त्रणा से राजा अवश्य ही नष्ट हो जाता है। कहा है—

लुब्धस्य नश्यति यश पिशुनस्य मैत्री
नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्म ।
विद्याफल व्यसनिन कृपणस्य सौख्य
राज्य प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य ॥

लोभी का यश, चुगलीखोर की मित्रता, नष्ट-क्रिया वाले का कुल, धनलोलुप का धम, कामासक्त का विद्याफल, कृपण का सुख और खराब मन्त्री वाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है। राजा और राज्य एक ही बात है। राज्य नष्ट हो, तो राजा नष्ट होगा और राजा नष्ट होगा, तो राज्य नष्ट होगा। शकुनि की मन्त्रणा से दुर्योधन नष्ट हुआ और दुर्योधन के नष्ट होने से कौरवो का राज्य ही नष्ट हो गया। शकटार ने अपने अन्नदाता राजा को खोटी-खोटी सलाहे देकर राजा और राज्य का विनाश करा दिया। वह ऊपर मे राजा से मीठी-मीठी बातें करता और जो सलाह देता वह राजा के विनाश की, क्योकि भीतर से वह दुष्ट राजा के वैरी चाणक्य मे मिला रहता था।

सन्यासी—ससार-त्यागी वैरागी गृहस्थो की और विशेष कर स्त्रियो की सगति से नष्ट हो जाता है, इसमे जरा भी सन्देह नहीं। 'गुलिस्तॉं' मे एक कहानी है—"दमस्कम शहर के निकट एक वन में एक फकीर रहता था। वह पेडो के पत्ते खाकर जीवन-निर्वाह करता था। एक रोज वहाँ का बादशाह उसके दर्शन करने गया और उसे बहुत कुछ कह-सुनकर अपने शहर मे ले आया। अपने निज के बाग मे उसका डेरा करा दिया और चन्द अव्वल दर्जे की खूबसूरत दासियाँ उसकी सेवा मे नियुक्त कर दी। चन्द रोज़ बाद ही वह फकीर उत्तमोत्तम भोजन करने और भाँति भाँति की बढिया पोशाकें पहनने तथा कुँवारी स्त्रियो और उनकी सहेलियो की सुहबत का आनन्द लूटने लगा। बहुत लिखना वृथा है वह पूरा अमीर और ऐयाश बन गया। महापुरुषो ने

कहा है कि सुन्दरी युवती की जुल्फे विचार-शक्ति के पैरो की बेडियाँ और अक्ल की चिडिया का फन्दा है—यह बात सोलह आने ठीक हुई।

"एक दिन बादशाह फिर उस फकीर से मिलने गया। उसने देखा कि फकीर का रङ्ग-रूप ही बदल गया है। वह खूब मोटा-ताजा हो गया है और शरीर का रङ्ग गुलाब-सा हो गया है। वह एक रेशमी मसनद के सहारे लेटा हुआ है और एक परीजाद-सा उसके पीछे खडा मोरछल कर रहा है। कुछ बातचीत के बाद बादशाह ने कहा—'मुझे विद्वान और एकान्तवासी सन्यासी अच्छे लगते हैं।' एक अनुभवी और समझदार मन्त्री ने कहा—'हुजूर! आप विद्वानो को धन दें, जिससे और लोग भी विद्वान् बने और सत्याग-त्यागी सन्यासियो को कुछ भी न दें, जिससे उनकी विरक्ति बनी रहे।' बादशाह बुद्धिमान मन्त्री की बात से खुश हुआ और अपने किये पर पछताया।"

उन अमीरो को, जो साधुओ को बुलाकर मखमली गद्दे-तकियो पर बिठाते हैं, उन्हे उत्तमोत्तम षट्रस भोजन कराते है, मोटरो और बग्गियो मे हवा खिलाते हैं, युवतियो को उनकी सेवा मे नियुक्त करते हैं—इस कहानी से सबक सीखना चाहिए और वैरागियो को तो इससे खूब ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। उन्हे खूब ख्याल करना चाहिए कि इन्द्रियाँ बडी प्रबल हैं। ये सदा मनुष्य को विषयो की ओर खीचकर ले जाने की चेष्टा किया करती है। विश्वामित्र जैसे तपस्वी, मेनका के रूपजाल मे फँसकर, तप-भङ्ग कर बैठे। शङ्कर जैसे योगीश्वर, मोहिनी की रूपच्छटा पर मुग्ध होकर, अपनी अक्ल खो बैठे। और पाराशर, नाव मे ही नाविक की कन्या पर लट्टू हो गये। जब ऐसे-ऐसे जितेन्द्रियो के दिल मोहनियो के मोह-पाश मे फस गये, तब साधारण साधु-सन्यासी किस बाडी के बथुए है? कहा है —

तीव्र तपस मे लीन, नहि कर इन्द्रिय विश्वास।
विश्वामित्र जु मेनका, कण्ठ लगाइ हुलास॥

गिरधर कविराय भी कहते हैं —

रहनो सदा एकान्त को, पुनि भजनो भगवन्त।
कथन श्रवण अद्वैत को, यही मतो है सन्त॥

यही मतो है सन्त, तत्व को चितवन करनो ।
प्रत्येक ब्रह्म अभिन्न, सदा उर अन्तर धरनो ॥
कह गिरधर कविराय, वचन दुर्जन को सहनो ।
तज के जन-समुदाय, देश निजन मे रहनो ॥

बहता पानी निर्मला, पडा गन्ध सो होय ।
त्यो साधू रमता भला, दाग न लागे कोय ॥
दाग न लागे कोय, जगत मे रहे अकेला ।
राग द्वेष पुन प्रेत, न चित को करे विछेदा ॥
कह गिरधर कविराय, शीत उष्णादिक सहता ।
होइ न कहूँ आसक्त, यथा गगा जल बहता ॥

लाड या दुलार से पुत्र निस्सन्देह खराब हो जाता है। अनेक लोग बचपन मे अपने लडको को इतना लाड करते हैं, कि उनकी हद नही। लडके नीचो की सगति मे रहने लगते हैं, तो उन्हे मना नही करते। वे जूआ खेलते, सिगरेट-तम्बाकू पीते, वेश्याओ मे जाते हैं, तो भी चुप्पी साध जाते हैं। पीछे वही लडके जब बडे हो जाते हैं, तब माता-पिता का कलेजा जलाते हैं। उस वक्त क्या हो सकता है? बडे होने पर, वे एक नहीं सुनते। बाजे-बाजे तो अपनी जनक-जननी पर ही हाथ तक उठाने लगाते हैं। विद्वानो ने कहा है—मिट्टी के कच्चे घडे पर जैसे निशान बनाइये, बन जायेंगे, पर पके घडे पर निशान नही हो सकते। हरी लकडी को चाहे जितना मोड लीजिये, वह मुड जायगी, सूखने पर वह नही मुड सकती। जिसका बचपन मे लाड किया जाता है—सत्शिक्षा नही दी जाती, वह बडा होने पर गुणवान और शीलवान नही होता। इसलिये कहा है —

लालने बहवो दोषा ताडने बहवो गुणः ।
तस्मात् पुत्र च शिष्य च ताडयेत् न तु लालयेत् ॥

लाड करने मे बहुत से दोष हैं, ताडना करने मे बहुत गुण है, इसीलिये

पुत्र और शिष्य को ताड़ना देनी चाहिये, लाड न करना चाहिये। 'गुलिस्ताँ' मे भी कहा है—

बरसरे लौह ओ नविश्त वजर।
जोरे उस्ताद इह, जे मेहरे पिदर॥

यह बात सोने के अक्षरो मे लिखी जाने योग्य है कि माँ-बाप के लाड मे शिक्षक की ताडना अच्छी है, पर ताडना का यह मतलब नही, कि लडके डण्डो से पीटे जाँय। मारने पीटने से लडके अकसर खराब होते देखे जाते हैं। आँखो मे जो काम होता है, वह डण्डे से नही होता।

ब्राह्मण का सबसे पहला काम ब्रह्मचर्य व्रत रखकर विद्या पढना है। जो ब्राह्मण विद्याध्ययन नही करता, वह निस्सन्देह नष्ट हो जाता है। पर आजकल अधिकाश ब्राह्मण-सन्तान रोटियाँ पकाने, पानी भरने, दरबानी करने या अन्यान्य सेवा-वृत्ति करके जीवन-निर्वाह करने मे ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। आजकल बहुत से ब्राह्मण अपने मन मे इस बात को समझ बैठे है कि हम मन्वादिक स्मृतिकारो की आज्ञा पालन करे चाहे न करे, हम वेदो का पठन-पाठन और यज्ञ-हवनादि कर्म करें चाहे न करें, हमे हमारे ब्राह्मण पद मे कोई उतार नही सकता। हम चाहे परले सिरे के अज्ञानी, कुकर्मी, जूआ-चोर और व्यभिचारी ही क्यो न हो—हैं हम ब्राह्मण के ब्राह्मण। पहले वेद के न जानने वाले ब्राह्मण को लोग श्राद्ध तक मे निमन्त्रण न देते थे, अपढ ब्राह्मण से कोई कर्मकाण्ड न कराते थे, क्योकि शास्त्रकारो ने वेद न जानने वाले का कराया हुआ श्राद्ध मृतकवत् कहा है। इसीलिये ब्राह्मण लोग, कम-से-कम अपनी उपजीविका के खयाल से अवश्य ही वेदपाठी होते थे। आजकल अधिकाश द्विवेदी-त्रिवेदियो की सन्तान जमादारी करती, रसोईगीरी करती या बसूला चलाती है। बहुसख्यक चतुर्वेदियो ने तो माँगना खाना ही अपना काम समझ लिया है। हम यह नही कहते कि सभी ब्राह्मण विद्वान नही, विद्वान भी होते है, पर जिन्हे विद्वान कहना चाहिये, जिन्हे वेद के पूर्ण ज्ञाता कहना चाहिये, ऐसे बडी कठिनता से, खोजने पर मिलते हैं। गुरुओ का अध पतन होने से शिष्यो

का भी अध पतन हो रहा है। हमने ये पक्तियाँ अपने गुरुओ की निन्दा या हँसी करने की गरज मे नही लिखी है। हमारे अन्तरात्मा मे वेदना होती है, हमे गुरुओ का अध पतन खटकता है, इसी से लिखी हैं।

प्राचीन समय मे ब्राह्मण आदि चारो वर्ण समझते थे कि जाति गुण और कर्म से है—जन्म से नहीं, इसी से वे गुण-सम्पादन करने की फिक्र करते थे और धर्मशास्त्र पर चलते थे। प्रत्येक वर्ण अपने-अपने कर्म करता था। जब से यह डर मिटा, लोग समझने लगे कि हम चाहे मिस्त्रीगीरी करें अथवा बावर्ची-गीरी करें—रहेगे वही जो है, अर्थात् ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण, क्षत्रिय की सन्तान क्षत्रिय और वैश्य की सन्तान वैश्य ही कहलायेगी। ससार मे भय से ही काम होता है। दण्ड-भय से ही जगत मे शान्ति है। अगर दण्ड-भय न हो, तो एक मनुष्य दूसरे की चटनी कर डाले।

शुक्राचार्य महाराज लिखते हैं—

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभि ॥
ब्रह्मणस्तु समुत्पन्ना सर्वे ते किं नु ब्राह्मणा ।
न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्म तेज प्रपद्यते ॥
ज्ञान-कर्मोपासनाभिर्देवताराधने रत ।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणस्य गुण स्मृत ॥
इज्याध्ययनदानानि कर्माणि तु द्विजन्मनाम् ।
प्रतिग्रहोऽध्यापन च याजन ब्राह्मणोऽधिकम् ॥
सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणा ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और म्लेच्छ—ये सब जन्म से नहीं होते, किन्तु गुण और कर्म से होते हैं।

यो तो सभी जीव ब्रह्मा से ही पैदा हुए हैं। क्या वे सभी ब्राह्मण हो सकते हैं ? कभी नहीं। वर्ण और पिता से ब्रह्मतेज की प्राप्ति नहीं हो सकती

जो मनुष्य ज्ञान और कर्म से देवताओ की उपासना-आराधना मे लगा रहता है एव शान्त, जितेन्द्रिय और दयालु होता है,—वही ब्राह्मण होता है।

यज्ञ करना, पढना और दान देना,—ये द्विजातियो यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के कर्म है। दान लेना यज्ञ कराना और पढाना,—ये तीन कर्म ब्राह्मण के लिये अधिक है।

ब्राह्मण अपने कर्म के कारण से ही सबसे अधिक माना जाता है।

अब अगर हम इन सब बातो की विस्तृत आलोचना करे, तो पचासो पृष्ठ इस एक ही विषय से काले हो जायें। इस ग्रथ मे इन बातो को इतना भी लिखना उचित नही, और भी विस्तृत रूप से लिखना हो तो और भी अनुचित होगा। पाठक स्वय ऊपर की महात्मा शुक्राचार्य की कही हुई बातो पर विचार करें। इशारा हमने कर दिया है। कितने ब्राह्मण शान्त, जितेन्द्रिय और दयालु-चित्त आपको नजर आते है? कितने अपने कर्त्तव्य-कर्मों पर आरूढ दिखाई देते हैं? विचार करे कि क्रोध, अजितेन्द्रियता और अशान्तता का ठेका आजकल किसने ले रखा है? जिन भूदेवो मे पहले बडे-बडे महीपाल थर-थर कांपते थे, उनके स्वागत के लिये नगर-द्वार तक जाते थे, उनकी आज की हालत देखकर हमारी काठ की कलम भी रोती है, इसी से हमने ये पक्तियाँ लिखी हैं। अगर यही दशा और सौ-पचास वर्ष रही, तो क्या ब्राह्मण—वास्तविक ब्राह्मण—अमेरिका के रेड इण्डियनो की तरह दुष्प्राप्य और दुलभ न हो जायेंगे? और जब गुरु न रहेंगे—उपदेशो का अभाव हो जायगा, तब हम शिष्यो की और भी अधोगति न हो जायगी? हमारा तो यही कहना है—हमारे गुरु योगिराज भर्तृहरि के 'विप्रोऽनध्ययनात् नश्यति'—ब्राह्मण विद्या न पढने से नष्ट हो जाते हैं—इस महोपदेश पर ध्यान धरे, तभी भारत का मगल होगा। ब्राह्मण जाति ही भारत की उन्नति और अवनति की मूल कारण है।

कपूत से कुल नष्ट हो जाता है, इस बात को प्राय सभी जानते हैं, तो भी दस-पाँच पक्तियाँ लिखने मे हर्ज नही। कपूत से न माता-पिता को सुख मिलता है, न बधु-बान्धवो का भला होता है। कपूत चोरी, अन्याय, व्यभिचार, पर-स्त्री हरण, गुण्डागीरी प्रभृति ऐसे-ऐसे कुकर्म करता है, जिनसे उसे स्वय

पिटना पड़ता और जेल की हवा खानी पड़ती है। इससे माता पिता का हृदय जलता और कुल मे कालिमा लगती है। सपूत कुल को ऊँचा उठाता है और कपूत कुल को रसातल मे पहुँचाता है। कौरव कुल को एक कपूत दुर्योधन ने नष्ट ही कर दिया। कहा है—

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना।
दह्यते तद्वन सर्व कुपुत्रेण कुल यथा॥

आग से जलता हुआ एक ही सूखा वृक्ष सारे वन को नष्ट कर देता है, उसी तरह एक कपूत से कुल नाश हो जाता है।

शेख सादी ने कहा है—

जनाने बारदार ऐ मर्द हुशियार।
अगर वक्त विलादत मार जायेन्द॥
अजां बेहतर के नजदीके खिरदमन्द।
के फर्जन्दाने ना हमवार जायेन्द॥

कपूत जनने की अपेक्षा अगर जननी सर्प जने, तो बुद्धिमान उसको अच्छा समझता है।

हमारे यहाँ भी कहा है—

वर गर्भस्रावो वरमृतुषु नैवाभिगमन
वर जात. प्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता।
वर वन्ध्या भार्य्या वरमपि च गर्भेषु वसति-
र्न चाविद्वान् रूपद्रविणगुणयुक्तोऽपि तनय.॥

गर्भ गिर जाना भला, ऋतुस्नान के बाद स्त्री के पास न जाना अच्छा, पैदा होते ही मर जाना भला, कन्या पैदा होना भला, स्त्री का बाझ रहना भला, गर्भ मे रहना ही भला, परन्तु रूप–धन–सम्पन्न मूर्ख–कपूत–का पैदा होना भला नहीं।

दुष्ट की सगति मे सुशीलता नष्ट हो जाती है, इसमे सन्देह नहीं। इस

विषय में पहले कई बार लिख आये हैं। एक बार लिखी बात को बारम्बार लिखने से कोई लाभ नही। दुश्चरित्र कोई भी हो, चाहे स्वामी हो, चाहे सेवक हो, चाहे मित्र हो, चाहे पडोसी—दुश्चरित्र की सगति से सच्चरित्र भी नष्ट हो जायगा।

मदिरा-पान करने की चाल प्राचीन काल से ही चली आती है। शास्त्रो मे लिखा है, मदिरा के परिमित रूप से या मात्रा से पीने से बुद्धि फुरती है, श्रेष्ठता, धीरता और चित्त के निश्चय का विस्तार होता है एवं स्वास्थ्य-लाभ और शोक-नाश होता है। वैद्यक-ग्रथो मे लिखा है कि मदिरा से बढ़कर शोकनाशक पदार्थ और है ही नही, पर बुद्धिमानो को इसस सर्वथा दूर ही रहना चाहिये। थोडी-थोडी पीने से यह बढ़ जाती है और अत्यन्त पीने से बुद्धि का लोप और विनाश होता है। इससे सब अनर्थों के मूल—काम और क्रोध की उत्पत्ति होती है। विकलता, पृथ्वी पर गिरना, मन मे आये सो बकना प्रभृति जो लक्षण सन्निपात मे होते हैं, वही सब मद्य मे होते हैं। मनुष्य के हाथ कांपने लगते हैं, कपडे-लत्तो की सुध नही रहती, नगे हो जाने मे भी लाज नही आती। पश्चिम दिशा मे सूर्य के अस्त होते समय तेज हानि और रागता प्रभृति जो दशा सूर्य की होती है, वही दशा शराबी की होती है। क्रोध और निर्लज्जता इनके सबसे बडे दुर्गुण हैं। माता, पिता, बहन और बेटी तक के सामने शराबी ऐसी बेशरमी करता है, जिसके लिखने मे काठ की कलम भी लजाती है। कहा है—

> एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्य तथैकत ।
> एकत सर्वपापानि मद्यपान तथैकत. ॥

एक ओर चारो वेद, एक ओर ब्रह्मचर्य, एक तरफ सारे पाप और एक तरफ मद्यपान।

किसी कवि ने कहा है—

> मद्यव्यसन सो मत्त नर, करै न निश्चर काम।
> मद्य पीय यादव गये तृण प्रहरण यमधाम ॥

मद्य पीने से ही यादव-कुल नष्ट हो गया। मद्य पीकर यादवगण इतने निर्लज्ज हो गये थे, कि उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान की भी कान न की।

विदेश मे रहने से स्नेह निश्चय ही घट जाता है। प्रीति से प्रीति बढती है और अप्रीति से प्रीति घटती है। कठोर वचन से कौन मित्र रह सकता है? कहा है—

तीक्ष्णवाक्यात् मित्रमपि तत्काल याति शत्रुताम् ।
वक्रोक्तिशल्य मुद्धर्तुं न शक्य मानस गतम् ॥

कठोर वचन से मित्र भी तत्काल शत्रु हो जाता है, क्योंकि कठोर वचन के शल्य को मन से कोई नही निकाल सकता। नम्रता और मधुर भाषण से ही ससारी लोग प्रसन्न होते हैं। सभी इनके वश मे हो जाते हैं, तब मित्र की तो बात ही क्या? मित्र का गुप्त भेद प्रकाशित करना, माँगना, निष्ठुरता करना, क्रोध करना, झूठ बोलना और चित्त का चचल रखना—ये मित्रता के दूषण हैं। इनके होने से मित्रता नही रहती। इन दुर्गुणो को त्यागकर, मित्र से निष्कपट प्रीति करो, हर बात मे अनुराग दिखाओ, मित्रता हर्गिज न टूटेगी। मीठा बोलने और नम्र व्यवहार करने से वन मे भी श्रीरामचन्द्रजी के लाखो-करोडो वानर और रीछ मित्र हो गये, तब मनुष्य का तो कहना ही क्या?

अनीति से ऐश्वर्य का निश्चय ही नाश हो जाता है। जिन्होने अनीति की, उनका धन-वैभव नष्ट ही हुआ। दुर्योधन की अनीतियो से कौरव-कुल की श्री नष्ट हो गई। वाली ने छोटे भाई की स्त्री को अपनी स्त्री बनाने की अनीति की। रावण ने, बल के मद मे अन्धे होकर, देवताओ और ब्राह्मणो पर अत्याचार किये, जगज्जननी सीता को काम के वश मे होकर चुरा ले गया, भगवद्भक्तो को अनेक प्रकार के कष्ट दिए और गरीब का धन हरण किया—नतीजा यह हुआ, कि वाली और रावण दोनो का धनैश्वर्य नष्ट हुआ। मुगल सम्राट औरगजेब ने पूज्यपाद पिता शाहजहाँ को कैद किया, भाइयो की बडी दुर्गति से कत्ल कराया, हिन्दुओ का धर्म-नाश करके जबर्दस्ती मुसलमान बनाया और जजिया वगैर टैक्स लगाकर अनेकानेक अन्याय और अत्याचार किए। परिणाम यह हुआ कि मुगलिया सल्तनत की नीव हिल गई। उसके बाद जो दो-चार बादशाह हुए, वे नाम मात्र के ही बादशाह हुए। 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' कहलाने वाले खानदान की श्री समूल नष्ट हो गई। आज उस खानदान

के अनेक लोग पराधीन होकर अपना जीवन बिता रहे है। सुनते हैं, कोई-कोई मजदूरी तक करके पेट पाल रहे हैं। अनीति से भगवान का चिढ है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

निडर अनय कर अनकुशल, बीस बाहु सम होय।

निशक होकर अनीति करने वाला यदि बीस भुजा वाले रावण के समान ही क्यो न हो, उसकी कुशल नही।

धन को समझ-बूझकर खर्च करना चाहिए। जो बिना समझे अन्धाधुन्ध खर्च करते हैं, वे एक दिन अवश्य ही कगाल हो जाते हैं। हिमालय के समान धन भी लगातार खर्च करने से एक-न-एक दिन चुक हो जाता है। जिस कुएँ मे पानी का सोता न हो, उसमे अगर कोई जल निकाले ही जाय, तो एक दिन वह रीता हो जायगा। जिसके अस्सी की आमदनी और चौरासी का खर्च होता है, उसका एक-न-एक दिन दिवाला अवश्य ही निकल जाता है। कहा है—

क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययमानः स्ववाञ्छया।
परिक्षीयत एवासौ धनी वैश्रवणोपमः॥
अतिदानेन दारिद्र्य तिरस्कारोऽतिलोभतः।
अत्याग्रहान्नरस्यैव मौर्ख्य सजायते खलु॥

शीघ्र ही आमदनी को न देखकर, अपनी इच्छानुसार खर्च करने से कुबेर के समान धनवान भी दरिद्र हो जाता है।

अत्यन्त दान से दरिद्रता, अत्यन्त लोभ से तिरस्कार और अत्यन्त आग्रह से मनुष्य की निश्चय ही मूर्खता होती है।

कुत्सित मन्त्री भूप, सन्त बिनसत कुसङ्ग ते।
लाड लडाये पूत, गोत कन्या कुढङ्ग ते॥
बिन विद्या ते विप्र, शील खल सङ्ग लिये ते।
होत प्रीति को नाश, बास परदेश किये ते॥

बनिता विनता मदहास सो, खेती विन देखे हगन ।
सुख जात अनय अनुराग ते, अति प्रमाद ते जात धन ॥४२॥

42 A king is ruined by bad counsel, a celibate by (bad) company, a son by (too much) fondling a Brahman by absence of study, a family by (the birth of) a bad daughter (one's) character by the society of profligate persons, modesty by wine, agriculture by want of care, love by living abroad, friendship by arrogant behaviour, prosperity by unfair dealing and wealth by (too much) expense and lavishness



दान भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥४३॥

दान, भोग, और नाश—धन को यही तीन गति हैं। जिसने न दिया और न भोगा, उसके धन को तीसरी गति होती है ॥४३॥

जो अपने कमाये हुए धन को न आप भोगता है और न किसी को देता है, उसका धन नष्ट हो जाता है। या तो उसे चोर ले जाते हैं या राजा छीन लेता है। 'गुलिस्ताँ' मे लिखा है—"धन द्वारा दीन दुखियो की सहायता करने से आफत टलती है। जो दुखियो को धन नही देते, उनका धन अत्याचारी जबर्दस्ती छीन लेते हैं। मनुष्य को चाहिये कि अच्छे दिनो मे धन-माल को दुखियो के दुःख दूर करने मे लगाये, जिससे इस लोक और परलोक मे भला हो। जो न स्वयं भोगते और न दूसरो को देते हैं, उनका धन नष्ट हो जाता है और दूसरे लोग उन कजूसो के धन को बड़ी बेदर्दी से खर्च करते हैं। मैंने एक बुद्धिमान से पूछा—'कौन भाग्यवान और कौन अभागा है?' उसने

कहा—जिसने खाया और भोगा वह भाग्यवान है, किन्तु जिसने भोगा नही, लेकिन छोडकर मर गया, वह भाग्यहीन या अभागा है।''

कहा है—

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चा मने ।
कृपणस्त धन याति वह्निस्करपार्थिवे ॥
धनेन किं तो न ददाति नाश्नुते बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत् किमात्मना यो न जितेन्द्रितो भवेत ॥

कजूस अपने धन को न देवता के काम मे खर्च करता है, न ब्राह्मण को देता है, न भाई-बन्धुओ को देता है और न अपने काम मे लाता है। कजूस का धन या तो आग मे जल जाता है, या चोर ले जाते हैं, अथवा राजा छीन लेता है।

उस धन से क्या, जो न दान किया गया, न भोगा गया ? उस बल से क्या, जिससे शत्रु न दवाया गया ? शास्त्र सुनने से क्या, यदि उसका आचरण न किया गया ? उस आत्मा से क्या, जो जितेन्द्रिय न हुआ ?

वृन्द ने कहा है—

खाय न खर्चे सूम धन, चोर सबै ले जाय ।
पीछे ज्यो मधु मच्छिका, हाथ मले पछताय ॥

गिरधर कविराय ने भी कहा—

खातो जाय जो खाय रे, दितो जाय सो देह ।
इन दोनों से जो मचै, सो तुम जानो खेह ॥
सो तुम जानो खेह, सिक्के पुनि काम न आवे ।
सर्व शोक को बीज, पुन. पुनि तुझे रुलावे ॥
कह गिरधर कविराय, चरण त्रै धन के गायो ।
दान भोग विन नाश होत, जो दितो न खायो ॥
दान भोग अरु नाश, तीन होत गति द्रव्य को ।
नाहिन द्वै को वास, तहाँ तीसरी बसत है ॥४३॥

43 There are three ends to riches i. e, giving away in charity, enjoyment (of pleasures) and destruction The wealth of a man who neither spends it on charity nor on his enjoyments has only the third course (i e, it is destroyed)



मणि शाणोल्लीढ समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नाग शरदि सरित श्यानपुलिना ।
कलाशेषश्चन्द्र सुरतमृदिता बालललना
तन्निम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नृपा ॥४४॥

सान पर खरादी हुई मणि, हथियारो से घायल विजयी योद्धा, मदक्षीण हाथी, शरद ऋतु की सूखे किनारो और अल्प-जलवाली नदी, कलाहीन दूज का चन्द्रमा, सुरत के मदन-चुम्बन आदि से थकी हुई नवयुवती और अपना सारा ही धन दान करके दरिद्र हुए सज्जन पुरुष—ये सब अपनी हानि या दुर्बलता से ही शोभा पाते हैं ॥४४॥

हीरा प्रभृति रत्न सान पर रखकर घिसे जाते हैं, तो पहले से अधिक सुन्दर हो जाते हैं, उनका कुछ अग क्षय होने से उनकी खूबसूरती और भी बढ जाती है। हथियारो से सजा हुआ विजयी योद्धा अच्छा जान पडता है, पर जिस विजयी के शरीर मे शस्त्रो के घाव हो रहे हो, उसकी सुन्दरता और भी बढ जाती है। शरद ऋतु मे नदी के किनारो से जल हटकर बीच मे रह जाता है, वह जल यद्यपि थोडा होता है, पर बड़ा ही साफ होता है। उस समय जल के घटने से वह सूखे किनारो वाली और थोडे जल वाली नदी बडी सुन्दर मालूम होती है। चन्द्रमा ऐसे ही मनोहर है, पर जब द्वितीया को वह घटी हुई कलाओ से क्षीणावस्था मे उदय होता है, तब उसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। नवयुवती षोडशी बाला स्त्री ऐसे ही सुन्दर होती है, पर

आलिङ्गन-चुम्बन आदि से जब उसका बल कुछ क्षीण हो जाता है, तब वह और भी अधिक सुन्दरी जान पडती है । इसी तरह दानी पुरुष, जब अपना सारा ही माल-खजाना याचको को लुटाकर, दरिद्र हो जाते हैं, तब उनकी शोभा बहुत ही बढ जाती है । तात्पर्य यह है कि मणि और योद्धा प्रभृति की शोभा क्षीणता से उल्टी बढ जाती है । विशेष करके वह दानी, जो अपने दान के कारण दरिद्र हो जाता है, सब से अधिक शोभायमान लगता है । उसकी जितनी ही प्रशसा की जाय थोडी है । महाराज हरिश्चन्द्र और राजा बलि ने अपना सर्वस्व दान करके जो शोभा और अक्षय कीर्त्ति सम्पादन की है, वह प्रलयकाल तक स्थिर रहेगी ।

छोटी हू नोकी लागे, मणि खरपाण चढीसु ।
वीर अग कटि शस्त्र सो, शोभा सरस बढीसु ॥
शोभा सरस बडीसु अऊ गज मदकर छीनहि ।
द्वैज कला शशि सोह शरदि सरिता जीमि हीनहि ॥
सुरत दलमली नार, लहत सुन्दरता मोटी ।
अर्थिन का धन देत, घटी सो नाहिन छोटी ॥४४॥

44 The following look even more beautiful in their loss—a precious stone after being polished on a grinding-stone, a victorrious warrior after being wounded in a battle, an elephhant after having exhausted its MADA (restiveness), a stream after its sandbanks have been left dry in autumn, a new moon (after she had lost all her brightness), a young woman after she has been exhausted by cohabitation and a king after he has spent all his treasure in charity to mendicants.



परिक्षीण कश्चित्स्पृहयति यवाना प्रसृतये
स पश्चात्सपूर्ण कलयति धरित्री तृणममाम् ।
अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयार्थेपु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च सकोचयति च ।।४५।।

जब मनुष्य दरिद्री होता है तब तो एक पसे जौ की भूसी की इच्छा करता है, पर वही मनुष्य जब धनवान हो जाता है, तब सारी पृथ्वी को तिनके के समान समझने लगता है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य को विशेष अवस्थायें ही पदार्थ मे अपनी लघुता या गुरुता के कारण भिन्नता पैदा करती हैं, कभी उन्ही वस्तुओ को फैलाती और कभी सिकोडती है, अर्थात धनावस्था और दरिद्रावस्था ही मनुष्य को बडा और छोटा बनाती है ।।४५।।

सारांश यह है कि पदार्थ का कोई मूल्य नही, अवस्था ही उसे बडा बना देती है और अवस्था ही उसे छोटा बना देती है। जो आज छोटा है, वही धनैश्वर्य से कल बडा हो जाता है और जो आज बडा है, वही दरिद्रावस्था होने से कल छोटा हो जाता है।

जब मनुष्य निर्धन होता है—दीनावस्था होती है, तब वह दो-चार पैसे या पेट भर रोटी को ही बहुत समझता है, सबसे नम्र व्यवहार करता है, अपने को सबसे छोटा समझता है, किन्तु जब वही मनुष्य धनवान हो जाता है, तब वह ससार को अपने सामने तुच्छ समझता है, जगत को अपने से नीचा और अपने को सबसे ऊँचा समझता है। मनुष्य से यह सब कौन कराता है? चञ्चल अवस्थाये—गरीबी और अमीरी। गरीबी उसे नम्र और सन्तोषी बनाती है और अमीरी उसे अभिमानी और असन्तोषी बना देती है। साराश यह, कि अवस्था ही मनुष्य को छोटा और बडा करती है, मनुष्य तो वही का वही रहता है।

होत वहै धनहीन, ता अ जलि जौ माँगत ।
धन पाये बौराय, ताहि महि तृणसम लागत ॥
दशा यही द्वै चपल, नरहि लघु दीर्घ बनाव ।
करहि नीच को ऊँच, ऊँच को नीच जनावै ॥
जग यह विलोकि सज्जन पुरुष, सदा रहै समता धरे ।
ते पूर्ण रहै अम्भोधि जनु, प्रेम ईश बस मे करे ॥४५॥

45 A man overtaken by poverty wishes for a small quantity, but afterwards, when he has got wealth, he reckons the whole world as a straw Therefore, it is the particular conditions of a man a variety in his objects of life, now expanding and then contracting the same things



राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेना
तेनाद्य वत्समिव लोकममु पुपाण ।
तस्मिश्च सम्यगनिश परिपोष्यमाणे
नानाफलै फलति कल्पलतेव भूमि ॥४६॥

हे राजा ! यदि तुम पृथ्वी-रूपी गाय को दुहना चाहते हो, तो प्रजा-रूपी बछडे का पालन-पोषण करो। यदि तुम प्रजा-रूपी बछडे का अच्छी तरह पोषण करोगे, तो पृथ्वी, स्वर्गीय कल्पलता की तरह आपको नाना प्रकार के फल देगी ॥४६॥

जो राजा खूब अच्छी तरह प्रजा का पालन करता है, उसके सारे मनोरथ पूरे होते हैं। राजा के धन-वैभव की वृद्धि प्रजा से ही होती है। अगर राजा

अत्याचारी या अन्यायी होता है—प्रजा के पालन-पोषण की फिक्र नहीं रखता, तो उस राजा की प्रजा निश्चय ही नष्ट हो जाती है। प्रजा के नष्ट होने या दरिद्र होने से राजा भी नष्ट हो जाता हैं। उसके भाण्डार धन-धान्य शून्य पड़े रहते हैं और खजानो मे चूहे दण्ड पेलते हैं। जो राजा अपनी समृद्धि की वृद्धि करना चाहे, वे प्रजा पालन में दत्तचित्त हो और प्रजा पालन को ही अपना कर्त्तव्य समझें। 'शुक्रनीति' मे लिखा है—

सदानुरक्तप्रकृति प्रजापालनतत्पर ।
विनीतात्मा हि नृपतिर्भूयसीं श्रियमश्नुते ॥

जो राजा प्रजा से अनुराग रखता है, प्रजा-पालन में तत्पर रहता है और विनीत होता है, वह राजा लक्ष्मी को खूब भोगता है।

राजा प्रजा का स्वामी नहीं—सेवक है। प्रजा ने ही अपनी भलाई के लिए उसे राजा बना रखा है, पर राज्य की लगाम हाथ मे आते ही राजा लोग इस बात को भूल जाते हैं। वे अपने तईं स्वामी और प्रजा को अपना सेवक समझकर, उसका सर्वस्व हरण करने और आनन्द मनाने मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। राजा का काम पिता की तरह प्रजा को पालना और उसकी समृद्धि बढ़ाना है। रघुवश मे महाकवि कालिदास ने रघुवशी राजाओ के सम्बन्ध मे जो लिखा है, उसे पढकर मन मे अनेक तरह की तरगें उठती हैं।

अहा! वह समय कैसा होगा, जिस समय वैसे राजा इस पृथ्वी की शोभा बढाते होंगे। लीजिये, दो श्लोक आप भी पढिये और अब का और तब का मिलान कीजिये—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रस रवि ॥
प्रजाना विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासा केवल जन्महेतव ॥

महाराजा दिलीप धन जमा करने के लिए कर न लेते थे। जो धन धन लेते थे, उसे वे अपने काम मे न लाते थे, पर उसे प्रजा की भलाई मे खर्च कर देते थे।

इस काम मे वे अपने पूर्वपुरुष सूर्य का अनुकरण करते थे । सूर्य जिस तरह पृथ्वी से रस लेता है, पर उसे वृष्टि के रूप मे, हजारगुणा करके, वापिस दे देता है, उसी तरह वे भी करते थ ।

वे प्रजा के पिताओं का काम करते थे । जन्म से ही शिक्षा का भार अपने हाथ मे रखते थे । विपद् से रक्षा करने का कर्त्तव्य भी उन्ही का था, और वे ही पालन-पोषण करते थे । असल मे वे ही प्रजा के पिता थे । पिता केवल जन्मदाता थे, इतनी ही विशेषता थी ।

कहिये पाठक ! ऐसे राजा आपकी नजरो मे कहाँ-कहाँ और कितने है ? कितने राजा आजकल एकगुणा लेकर सहस्रगुणा प्रदान करते हैं ? कितने राजा पिता की तरह प्रजा-रूपी पुत्र का पालन-पोषण और फिक्र करते है ? सच कहने मे भय नही, समाचार-पत्रो मे जो पढते और कानो से सुनते हैं, अगर वह सच हो तो, यही कहना पडता है, कि हमारे भाइयो से विदेशी अँगरेज लाखो दर्जे भले हैं, औरो की अपेक्षा ये अपनी प्रजा का पालन अच्छा ही करते हैं । प्रजा से जो लेते हैं, उसे यदि सम्पूर्ण रूप से लौटा नही देते, तो भी बहुत कुछ हमारी ही भलाइयो मे लगा देते हैं । जितनी फिक्र प्रजा की ये रखते हैं, उतनी हमारे भाई-राजे नही रखते । जितनी जल्दी दीन-दुखियो की पुकार वे सुनते है, उतनी हमारे भाई-राजे नही सुनते । देशी राज्यो की प्रजा जब अत्याचारियो से पीडित होती है, बारम्बार पुकारती है, तो अर्जियो-पर-अर्जिया देती है, पर हमारे भाई-राजो के कानो पर जूँ नही रेंगती । इस राज्य मे आप उन यातनाओं से—जिनके मुकाबले मे सारे राजा भी कोई चीज नही पुकार कीजिये, फौरन सुनाई होगी—शीघ्र रक्षा होगी । ये बाते हमने सुनकर नही लिखी है, वरन् स्वय देखकर लिखी है । इसकी सत्यता मे राई के दाने के बराबर भी मिथ्या नही यह झूठी खुशामद नही, सच्ची तारीफ है । हमने तो इतनी उम्र मे जो कुछ देखा, सुना, समझा और विचार किया है, उसका निचोड यही है, कि लाख-लाख दोष और त्रुटियां होने पर भी, हमारे अँगरेज शासक हमसे बहुत अच्छे है जो सुख-स्वाधीनता हम इस राज्य मे भोग रहे है, वह हमारे अपने राज्य मे भी—जब तक हम लोगो की बुद्धि आजकल

की-सी ही रहे—हमे नही मिल सकती। किसी से असन्तुष्ट होकर उसके अवगुणो का ही बखान करना, गुणो का नाम न लेना—सज्जनता नही। सुनते है, देखा नही, कोई-कोई देशी नरेश अपनी प्रजा के पालन मे अच्छा ध्यान देते हैं, पर वैसे दो-चारो से क्या हो सकता है ?

धेनु-धरा कौ चहत पय, प्रजा वत्स करि मान।
याकौ परिपोषण किये, कल्पवृक्ष सम जान ॥४६॥

46 O king, if thou wouldst milk this cow of thy kingdom, it beheves thee now to nourish thy subjects who are like (that cow's) calf If thou wilt take proper care of them unceasingly, thy land will bear thee various (kinds of) fruits like the heavenly creeper,



सत्याऽनृता च परुषा प्रियावादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥४७॥

राजनीति वेश्या की तरह अनेक रूपिणी होती है। कही यह सत्यवादिनी और कही असत्यवादिनी, कही कटुभाषिणी और कही प्रियभाषिणी, कही हिंसा करने वाली और कही दयालु, कही लोभी और कही उदार, कही अपव्यय करने वाली और कही धन सञ्चय करने वाली होती है ॥४७॥

राजा सदा एक नीति पर नही चलते। उनकी नीति वेश्या की तरह अनेक रूप धारण करने वाली होती है। कही राजा सत्य बोलता है, तो कही मिथ्या बोलता है, कही कठोर भाषण करता है; तो कहीं मधुर भाषण करता है, कही

निष्ठुरता करता है, तो कहीं दयालुता दिखाता है, कहीं लोभी का-सा व्यवहार करता है, तो कहीं उदारता दिखाता है, कहीं बिना विचारे अन्धाधुन्ध खर्च करता है, तो कहीं संग्रह करता है ।

राजाओं का काम एक नीति से चल भी नहीं सकता। कूटनीति बिना राज्य का चलना कठिन है और कूटनीति में केवल सत्य, दया, उदारता प्रभृति सद्गुणों से काम नहीं चल सकता, मौके-मौके पर रंग बदलना ही कूटनीति है। राजा अगर सदा दयालु-स्वभाव रहे, तो उसे कोई न गिने। जब कोई उसका भय ही न माने, तो वह किस तरह प्रजा की रक्षा करे, किस तरह दुष्टों का दलन करे और किस तरह शत्रुओं को परास्त करे? राजा के अति दयालु होने में भी बड़ी भारी हानि है। नीति में कहा—"अति दयालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, निर्लज्ज स्त्री, दुष्टमति सहायक, प्रतिकूल सेवक, असावधान अधिकारी और काम न जाननेवाला पुरुष त्यागने योग्य है।" बिना उपद्रव किये कोई बड़े-से-बड़े को नहीं मानता। देखिये, मनुष्य सर्पों को पूजते हैं, पर सर्प को खा जाने वाले गरुड को नहीं पूजते, क्योंकि सर्प उपद्रवी है और गरुड उपद्रवी नहीं। 'गुलिस्ताँ' में भी लिखा है—"तीन चीजें तीन चीजों के बिना कायम नहीं रहती—दौलत बिना सौदागरी के, इल्म बिना बहस के और बादशाहत बिना दबदबे के।" बहुत लिखने में क्या, जो राजा वेश्या की तरह अनेक रूप बदलते हैं, वेश्यारूपिणी नीति को बर्तते हैं, उनका ही राज्य रहता है और बढ़ता है। अँगरेज भी इस तरह की नीति पर चलते हैं, कहीं सत्य बोलते हैं और कहीं मिथ्या, कहीं प्रतिज्ञा-पालन करते हैं और कहीं प्रतिज्ञा-भंग। हमारे परम योगेश्वर भगवान कृष्ण प्रथम श्रेणी के कूट-नीतिज्ञ थे। नीति में लिखा है—

न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत् ।
न कूटनीतितत्त्वज्ञ श्रीकृष्णसदृशो नृप ॥

इस पृथ्वी पर श्रीरामचन्द्र के समान नीतिमान और श्रीकृष्ण के समान कूटनीतिज्ञ राजा दूसरे नहीं हुए। श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी नीति के बल से वानरों

को अपने वश मे कर लिया और श्रीकृष्ण ने अपनी ही बहिन सुभद्रा, छल से अर्जुन को व्याह दी।

सांचो है सब भाँति, सदा ,सब बातनि झूठी ।
कबहुँ रोस सो भरी, कबहुँ प्रिय बनै अनूठी ॥
हिंसा को डर नाहि, दयाहू प्रगट दिखावत ।
धन लेवे की बान, खर्चहू धन को भावत ॥
राखत जु भीर बहु नरन की, सदा सँवारत रहत गृह ।
इह भाँति रूप नाना रचति, गनिकासम नृपनीति यह ॥४७॥

47 The policy of a king like that of a prostitute is manifold It is truthful as well as false, heartless as well as sweet-tongued, destrucitive as well as merciful avaricious as well as charitable and ever prodigal as well as ever economical.

★

विद्या कीर्त्ति पालन ब्राह्मणाना
दान भोगो मित्रसरक्षण च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ता
कोऽर्थस्तेषा पार्थिवोपाश्रयेण ॥४८॥

जिन पुरुषो मे विद्या, कीर्ति ब्राह्मणो का पालन दान, भोग और मित्रो की रक्षा–ये छह गुण नही हुए, उनकी राज-सेवा वृथा है ॥३७॥

तात्पर्य यह है, जिनका हुकम चलता हो, जिनकी नेकनामी हो, जिनके द्वारा ब्राह्मणो का पालन होता हो, जो सत्पात्रो को धन दान करते हो, स्वय सुख भोगते हो और अपने बन्धु-बान्धवो की रक्षा करते हो—उनका ही राजा की सेवा करना सफल है—जिनमे ये गुण न हो, उनकी राज-सेवा निरर्थक है।

विद्या यश द्विज पालना, दान भोग सन्मान ।
नृप-सेवा इन छह बिना, निष्फल जान सुजान ॥

48 What is the use of those that have influence at a king's court if they do not possess these six qualities—knowledge, fame procuring livelihood for Brahmans, charity, enjoyment of pleasures and protection of friends



यद्धात्रा निजभालपट्टलिखित स्तोक महद्वा धनम् ।
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरा मेरौ ततो नाधिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणाँ वृत्ति वृथा मा कृथा
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्य जलम् ॥४९॥

थोडा या बहुत—जितना धन विधाता ने तुम्हारे भाग्य मे लिख दिया है, उतना तुम्हे निश्चय ही मरुस्थल मे भी मिल जायगा; उससे ज्यादा तुमको सुमेरु पर भो नही मिल सकता; इसलिए सन्तोष करो, धनियो के सामने वृथा दीनता से याचना न करो, क्योकि देखो, घडा समुद्र और कुएँ से समान जल ही ग्रहण करता है ॥४९॥

इसका खुलासा यह है कि जितना धन भाग्य मे लिखा है, उतना हर कही मिल जाता है। भाग्य मे लिखे से अधिक धन, सोने के सुमेरु पर्वत पर भी नही मिलता। घडे को चाहे समुद्र मे डालिए, चाहे कुएँ मे डालिए, दोनो जगहो से वह समान जल ही ग्रहण करता है, अर्थात् जितना जल उसमे समा सकता है, उतना ही उसमे आता है—कुएँ मे से कम नही आता और समुद्र मे से अधिक नही आ जाता ।

मनुष्य को इस वात को समझकर सदा सन्तोष करना चाहिये । धनियो की खुशामद और दीनता करके अपना मान न गँवाना चाहिये। भाग्य मे जो

नहीं है, उसे लाख-लाख खुशामद और दीनता करने से भी कोई न देगा। शास्त्र मे लिखा है—

आयु कर्म च वित्त च विद्यानिधनमेव च।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन'॥

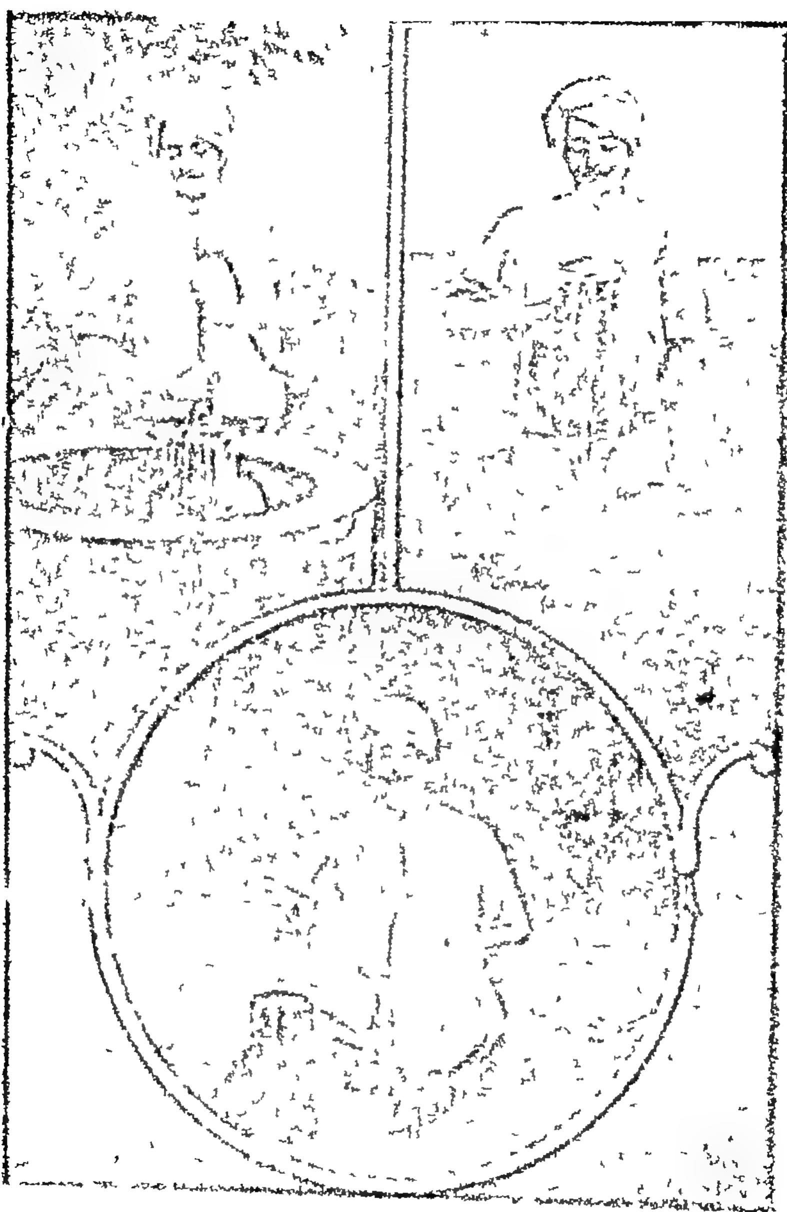
आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पांचो प्राणी के भाग्य मे उसी समय लिख दिये जाते है, जबकि वह गर्भाशय के भीतर ही होता है। जितना विधाता लिख देता है, उतना अवश्य मिलता है, और जो नही लिखता वह कैसे मिल सकता है? इसलिये भटकना और दीनता करके मान खोना वृथा है।

'पञ्चतन्त्र' मे लिखा है—

न हि भवति यन्न भाव्य भवति च भाव्य विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति॥

जो होनहार नही है, वह नही होता और जो होनहार है, वह बिना उपाय किये ही हो जाता है। जो हमारे भाग्य मे नही है, वह हाथ मे आकर भी नष्ट हो जाता है।

मनुष्य ने जितना पूर्वजन्म मे बोया है, उतना वह अवश्य ही काटेगा। सारा ससार प्रारब्ध और पुरुषार्थ मे ही विद्यमान है। पूर्वजन्म के कर्म को प्रारब्ध और इस जन्म के कर्म को पुरुषार्थ कहते है। एक ही कर्म के दो नाम हैं। फलो की प्राप्ति का हेतु प्रत्यक्ष नही दीखता। फलो की प्राप्ति पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही होती है। देखते हैं, कोई-कोई बिना जरा-सा भी उद्योग और परिश्रम किये अतुल सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता है और कोई दिन-रात घोर परिश्रम करने पर भी पेट-भर अन्न नही खाता। किये हुए कर्म का फल मनुष्य को अवश्य मिलता है। जिस तरह बछड़ा अपनी माँ को हजारो गाय मे से पहचान लेता है, उसी तरह पूर्वजन्म का कर्म अपने कर्त्ता को फौरन पहचान लेता है। किया हुआ कर्म सोते के साथ सोता है, चलते के साथ चलता है। बहुत क्या, पूर्व कृत कर्म आत्मा के साथ रहता है। छाया और धूप का आपस मे जो सम्बन्ध है कर्त्ता और कर्म का भी वही सम्बन्ध है।



सारांश यही है, कि जितना दिया है, उतना इस जन्म में अवश्य मिलेगा; उससे अधिक कहीं और कभी भी न मिलेगा। 'गुलिस्तां' में लिखा है—"संसार में दो बातें असम्भव है—(१) भाग्य में जितना लिखा है, उसमें अधिक खाना, और (२) नियत समय से पहले मरना।" जितना भाग्य में लिखा है, उतना हर जगह, विना उद्योग और परिश्रम के भी, मिल जायगा। जो भाग्य में नहीं लिखा है, वह कुबेर की खुशामद और चाकरी से भी नहीं मिलेगा। जब तक मृत्यु का समय नहीं आया है, मनुष्य सिंह के मुँह में जाकर भी बच जायगा और मृत्यु-समय आ जाने पर, वह कहीं भी और किसी भी उपाय से न बचेगा।

मित्रो! इन बातों को समझो और इन पर विश्वास करके बेफिक्र रहो। वृथा मारे मारे न फिरो। अपनी प्रतिष्ठा और मान को न खोओ। कहा है—

अदृष्टवित्तेश्वरद्वारमदृष्टविरहव्यथम् ।
अनुक्तक्लीववचनं धन्यं कस्यापि जीवनम् ॥

जिसने धनवान का द्वार न सेया, विरह की पीर न सही और नामर्दी की बात न कही—उसका जीवन धन्य है। ऐसा कौन है?

भाल लिखौ जू विरचि वह, घटै बढ़ै कछु नाहिं ।
मुरधर कंचन मेरु-सम, जान लेहु मनमांहि ॥४९॥

49, Whatever wealth, great or small, the god Brahma has ordained to be the lot of a man, is got by him without fail even in a desert, On the golden Meru mountain, he cannot get any more Then, be contented and do not show a suppliant attitude towards rich people uselessly See, a pitcher takes in an equal quantity of water in a well as well as in the ocean.

*

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषा न गोचर ।
किमम्भोदवरास्माक कार्पण्योक्ति प्रतीक्ष्यते ॥५०॥

हे श्रेष्ठ मेघ ! तुम्ही हम पपीहो के एक मात्र आधार हो, इस बात को कौन नही जानता ? हमारे दीन वचनो की प्रतीक्षा क्यो करते हो ? ॥५०॥

चातक कहता है—'हे मेघ ! ससार मे नद-नदी और सरोवर आदि अनेक जलाशय हैं, पर हम प्यासे ही क्यो न मर जायँ, तुम्हारे सिवा हम किसी का जल नही पीते । तुम्हारे जल के सिवा गगा, यमुना, सरस्वती और सिन्धु प्रभृति हमारे लिये धूल है । हम लोगो को तुम्हारा ही आश्रय है । इस दशा मे तुम्हें उचित नही है, कि तुम हमसे बार-बार दीनता कराओ ।"

सज्जनो को अपने आश्रितो की दीनता की प्रतीक्षा न करनी चाहिये । उनकी अनुनय-विनय और दीन वाणी के बिना ही उनकी आशा पूरी करनी चाहिए । जो अपने आश्रित को बिना दीनता कराये दे, उसके समान कौन दाता है ?

मेघ तुझे जाने जगत, पपिहा-प्राण-अधार ।
दीन वचन चाहत सुन्यौ, यह नहिं उचित विचार ॥५०॥

60 Who dose not know, O Cloud, that thou art the only refuge of Chatak birds (a kind of skylark) ? Then why, Oh, dost thou wait for our entreaties ? (The above is spoken by a Chatak bird which, it is said, tastes no water except that from falling drops of rain)



रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षण श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेपि नैतादृशा ।

केचिदवृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधा गर्जन्ति केचिद्वृथा ।
य य पश्यसि तस्य तस्य पुरता मा ब्रूहि दीन वच ।।५१।।

रे रे चातक ! सावधान होकर जरा हमारी बात सुन । आकाश मे बहुत-से मेघ है, पर सब एक-से नही । कितने तो ऐसे हैं, जो पृथ्वी पर जल-ही जल कर देते है; और कितने ही ऐसे है, जो वृथा ही गरज कर चले जाते हैं । इसलिए हे, मित्र ! तुम जिसको देखो, उसी के सामने दीनता मत करो ।।५१।।

मनुष्य को चाहिए कि जिस-तिसके सामने दीनता न करे । इस जगत मे सभी उदार दाता नही । कितने ही बातें तो लम्बी-चौडी बनाते है, पर देते एक पैसा नही । ऐसे सज्जनो बहुत थोडे हैं, जो बिना कहे ही अपने आश्रितो के मनोरथ पूरे कर दें । नीच स्वभाव वालो के सामने अपनी दु ख-कहानी कहने और उनसे कुछ माँगने से दु ख के सिवा और कुछ नही मिलता । 'गुलिस्ताँ' मे कहा है—दुष्टो के आगे अपने अभावो का रोना न रोओ, क्योकि उनके दुष्ट स्वभाव के कारण तुम्हे दुखित होना पडेगा । अगर तुम अपने दिल के दु ख किसी मनुष्य के आगे कहो, तो ऐसे के सामने कहो, जिसके प्रसन्न-मुख को देखने से तुम्हे निश्चय हो जाय कि वह अवश्य देगा । दुष्ट से माँगना भला नही, वह देता कुछ नही, उलटा मान और ले लेता है । जो थोथे है, वे गरजते हैं, पर बरसते नही। जो पूरे है, वे चुपचाप, बिना माँगे ही, इच्छा पूरी कर देते हैं । सूरज बिना कहे ही रोशनी करता है, उससे कहने कौन जाता है ? दुष्ट कहने से भी किसी का भला नही करते ।

चातक ! सुन मेरे वचन, सावधान मन होय ।
मेघ बहुत आकाश मे, प्रकृति जुदी पन होय ।।
प्रकृति जुदी पन होय, कोउ बरसे महि भारी ।
काउ बूँद नहि देहिं, गरज कर उपल-प्रहारो ।।

ताही सों मैं कहत, लेहु मत यह सिर पातक ।
देखें जो ही मेघ, ताहि मत माँगे चातक ॥५१॥

51 O Chataka ! listen for a moment with an attentive mind (to what I say) There are numerous clouds in the sky and all of them are not of the same kind Some of them wet the earth with rain, while others only thunder in vain. Hence do not utter thy humble request before whichsoever thou lookest upon

दुर्जनो की निन्दा

अकरुणत्वमकारणविग्रह:
परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥८॥

किसी पर दया न करना, बिना वजह लडाई-झगडा करना, पर-धन और पर स्त्री पर मन चलाना, सज्जनो और अपने रिश्तेदारो की उन्नति पर कुढना—ये छहो अवगुण दुष्टो मे स्वभाव के ही होते हैं ॥५२॥

दुर्जनो मे ठीक ये छहो अवगुण होते हैं । कौरव-कुल-कलङ्क दुर्योधन मे ये सभी अवगुण थे । दया का उसमे नाम ही नही था । हृदय मे दया होती, तो पाण्डवो को वह इतने कष्ट क्यो देता ? उन्हे लाक्षागृह मे सोते हुए क्यो जलवाता ? द्रौपदी को भरी सभा मे नगी करने की चेष्टा क्यो करता ? असल मे,

दुर्जन पराई वृद्धि को नही देख सकते । दुर्योधन राजसूय यज्ञ मे पाण्डवो की अतुल सम्पत्ति देखकर ही जल गया था और इसलिए उसने अकारण ही रार मोल ली । कपट-द्यूत से उनकी सम्पत्ति और स्त्री तक को छीन लेने का उसने उद्योग किया । सम्पत्ति तो ले ही ली, केवल द्रोपदी अपने बुद्धिबल से स्वाधीन हो गई ।

रोज ही आँखो से देखा करते है, दुष्ट लोग गरीब और कमजोरो को सताते हैं, पर-स्त्रियो को छेडते है और मौका पाने से उन अबलाओ का जीवन सदा के लिए खराब कर देते हैं, रात-दिन पराई सम्पत्ति हडपने की चेष्टा मे लगे रहते हैं, जिसे जरा भी खुशहाल और खाता-पीता देखते है, उसके पीछे पड जाते हैं, उसकी बदनामी करने और उसका सर्वस्व स्वाहा करने मे कोई बात उठा नहीं रखते । दुर्जनो के सिर पर कलगी नही होती । जिनमे ये छहो दुर्गुण हो उन्हे ही दुर्जन समझना चाहिये । ऐसे दुर्जन इस जगत मे बहुत है । पराई सम्पत्ति या वैभव को देखकर जलना इन दुष्टो की मुख्य पहचान है । ये सब बाते इनमे स्वभाव से ही होती है ।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

पर-सुख-सम्पति देखि-सुनि, जरहिं मूढ बिन आग ।
तुलसी तिनके भाग ते, चलै भलाई भाग ।।
सुजन-गुनन सो खल छर्यो, पुनि, पुनि वैर कराय ।
पूर्ण चन्द्र-गुण सो जर्यो, ग्रसै राहु जिमि आय ।।

दयाहीन बिन लाज रिपु, तस्करता पर पुष्ट ।
सहि न सकत सुख बन्धु को, यह स्वभाव सो दुष्ट ।।५२।।

52 Want of pity, quarrelling without any cause, cherishing desire for other people's money and womenfolk, intolerance towards the virtuous and towards their own relatives are the natural characteristics of evil men.



दुर्जन परिहर्त्तव्यो विद्यया भूषितोऽपि सन् ।
मणिनालंकृत सर्प किमसौ न भयङ्कर ॥५३॥

दुर्जन विद्वान हो, तो भी उसे त्याग देना ही उचित है, क्योंकि मणि से भूपित सर्प क्या भयङ्कर नही होता ? ॥५३॥

जिस तरह मणि के धारण करने से सर्प की भयङ्करता नष्ट नही होजाती, उसी तरह विद्याध्ययन कर लेने से दुर्जनो की स्वाभाविक दुष्टता नही जाती ।

'पञ्चतन्त्र' मे लिखा है—

न धर्मशास्त्र पठतीति कारण न चापि वेदाध्ययन दुरात्मन' ।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुर गवा पय ॥

धर्मशास्त्र के पढने या वेदाध्ययन करने से दुष्टात्मा साधु-स्वभाव नही हो जाता। जिसका जो स्वभाव है, वही प्रबल है । गाय का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है ।

वृन्द कवि ने कहा है—

खल विद्या-भूषित तऊ, नहिं भरोस को मूल ।
ज्यो मणि-भूषित भुजग जग, नीच मीच सम तूल ॥
नहिं इलाज देख्यो-सुन्यो, जासो मिटत स्वभाव ।
मधुपुट कोटिक देत तऊ, विष न तजत विश-भाव ॥

किसी का भी जन्म-स्वभाव नही वदलता । विद्या उत्तम चीज है, पर स्वभाव वदलने की शक्ति उसमे भी नही । विद्या से मनुष्य मे बुद्धिमत्ता आती है, पर मूर्ख की मूर्खता और भी वढती है । जिन्होने यूरोपियन डाकू, चोर और वदमाशो के सम्बन्ध की पुस्तके पढी होगी अथवा जिन्होंने वाइस्कोप के तमाशे देखे होंगे, उन्हे मालूम होगा, कि चोर और वदमाश इस देश मे भी भयकर होते हैं, पर यूरोप के पढे-लिखे वदमाशो की लीलायें देखकर तो दाँतो तले अँगुली दबानी पडती है । विद्या से दुष्टो को एक प्रकार का वल और मिल

जाता है। विद्यावल से उनकी दुष्टातायें और भी भीषण रूप धारण कर लेती हैं। स्वाति की बूँद सीप मे पढकर मोती का रूप धारण करती है और सर्प के मुख मे पडकर भयकर विप हो जाती है। मेह सर्वत्र एक-सा ही वरसता है, पर वागो मे गुललाला होते है और ऊसर जमीन मे घास होती है। जो अयोग्य और नालायक होता है, जिसकी असलियत ही खराव होती है, उसे कैसी भी उत्तम शिक्षा दी जाय और वह कैसी भी अच्छी सगत मे रखा जाय, वह हरगिज उत्तम न होगा; जैसा का तैसा रहेगा। निकम्मे लोहे पर चाहे जितनी पालिश की जाय, वह हरगिज चिकना और चमकदार न होगा। पानी कितना ही गरम कीजिये, थोडी देर वाद ही वह शीतल हो जायगा, यानी अपने असली स्वभाव पर आ जायगा। लहसुन, और हीग, कस्तूरी के हजारो पुट दिये जाने पर भी, अपने स्वभाव को नही त्यागते, उनकी असली गन्ध वनी ही रहती है। जीभ पर कितनी ही चिकनाई ल्हेसी जाय, पर वह चिकनी न होगी। नीम मे कितना ही गुड-घी सीचा जाय, पर वह मीठा न होगा। जैसा उसका स्वभाव है, वैसा ही रहेगा। विप मे चाहे जितना मधु मिलाइये, पर वह अपना विष-भाव न तजेगा। वहुत कहने से क्या, असली स्वभाव किसी भी उपाय से मिट नही सकता।

जो लोग समझते हैं कि दुर्जन विद्या के प्रभाव से सज्जन हो जाते हैं—स्वाभाविक दुष्टता नष्ट हो जाती है, उन्ही के लिये योगिराज भर्तृहरि ने मणि-धारी सर्प का दृष्टान्त देकर समझाया है कि आप ऐसा भूलकर भी न समझें। अगर ऐसा समझकर दुर्जनो का सग करेंगे, उनके साथ रहेंगे, उनसे वात-चीत करेंगे, तो आपको भयानक विपद् मे फँसना होगा। रावण कम विद्वान नही था, पर विद्वान होने से क्या उसकी दुष्टता चली गई थी ?

इन वातो को हृदयगम करके, अपना भला चाहने वालो को अपढ—निरक्षर दुष्टो से तो वचना ही चाहिये, पर पढे-लिखे विद्वान-दुर्जनो से और भी अधिक दूर रहना चाहिये। निरक्षर दुर्जनो से साक्षर या विद्वान-दुर्जन अधिक भयङ्कर होते है। इस वात को सभी जानते हैं, कि विद्वान होते ही उनमे सौ दुर्गुणो का एक दुर्गुण, अभिमान आ जाता है। जिसमे अभिमान आ जाता

है, उससे कौन-सा दुर्गुण नही आ जाता ? 'करेला और नीम चढा' वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है।

हमारा विद्वान-दुर्जनो से बहुत काम पडा है। हमने योगिराज के इस उपदेश को लडकपन मे पढकर भी अनेक बार धोखे खाये हैं। हमारे दिल मे भी सदा यही खयाल जमा रहता था, कि जो विद्वान होते हैं, दुष्टात्मा नही होते, पर अब ससार मे ठोकरें खाकर, हम इस नतीजे पर पहुँचे है, कि विद्वान-दुर्जनो के समान और दुरात्मा नही होते। ये अकारण ही लोगो मे तकरार और झगड करते हैं और परले सिरे के स्वार्थी और कृतघ्न होते हैं। एक बार एक भले आदमी वृथा ही झगडा करने लगे। अगर वह झगडा चलता, अगर दोनो पक्ष अदालत मे जाते, तो हजारो रुपये स्वाहा हो जाते। हमने उन्हे लिखा—"भाई! इन बातो मे कोइ लाभ नही, धर्मत मेरे दिल मे आपसे जरा भी वैर-भाव नहीं। आप ऐसा न कीजिये। इससे आपको और मुझको दोनो को तकलीफ होगी और नतीजा कुछ निकलेगा नही। अधिक क्या लिखूँ, आप गणेश हैं, गणेश को बुद्धि कौन दे ?" बस, इस आखिरी फिकरे ने तो अग्नि मे घी का काम ही किया। पाठक! विचारें, हमने क्या बुरी बात लिख दी ?

और भी लीजिए—एक बार हम एक भले आदमी से मिलने गये। ऑफिस मे वे तो हमे न मिले, पर एक दूसरे नामी-ग्रामी पढे-लिखे भले आदमी वहाँ कुरसी पर विराजमान थे। चन्द मिनट तो हम खडे रहे, उन्होने हमारी ओर देखा भी नही। खैर बेहयाई से हम और हमारे मित्र, यही पडी हुई दो चौकियो पर बैठ गये। कुछ देर बाद आपकी नजर हम पर पडी। आपने हमारा नाम-धाम पूछा। इसके बाद आपने और सब छोड यह पूछा—"मुझे आपके यहाँ का अमुक माल बेचने के लिए चाहिए। पेमेण्ट किस तरह करना होगा ?" हमारे यहाँ उधार का नियम नही है। इसलिए हमने मीठा-सा उत्तर दे दिया, कि इस बात का जवाब हम सोचकर देंगे। दूसरे दिन वह मित्र, जिनसे हम मिलने गये थे, हमारे डेरे पर ही तशरीफ ले आये। बातो-ही-बातो मे जिक्र आ गया, कि कल हम आपके ऑफिस मे गये थे। एक सज्जन वहाँ बैठे हुए थे और उन्होने हम से ये सवाल किये। दुख है कि हम

उधार माल किसी को भी देते, फिर भी, नही अगर आप कहे, तो सौ-दो सौ का दे दें। आपको हम जानते हैं, उनको नही जानते हैं। उस समय वहाँ एक और विद्वान कहानेवाले महाशय तशरीफ रखते थे। उन्होंने उनसे जाकर कह दिया कि अमुक आदमी आप-इतने बड़े कारोबारी का ऐतबार नही करता और आपके मातहत का ऐतबार करता है। बस, अब क्या था! वह भले आदमी तत्ते तेल के बैंगन हो गये। कहने लगे—"हमारा विश्वास नही; हमारे नौकर का विश्वास! आपने हमारे साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया है, याद रखो, आपने यह अच्छा काम नही किया। हम आपको इसके लिए बुरे फल चखायेंगे।" गौर कीजिये पाठक! हमने क्या अपराध किया? अपना माल उधार दिया और न दिया, किसी की जबर्दस्ती है! अधिक कागज काला करके हम आपका अमूल्य समय नष्ट करना नही चाहते। उन्होंने हमारे सर्वनाश के लिए कोई बात उठा न रखी, पर 'जाको राखे साइयाँ मार सके नहि कोय' वाली बात हुई। उनका नैतिक पतन हो गया। हमे मानसिक कष्ट अवश्य हुआ, पर और हमारा बाल भी बाँका न हुआ। कहाँ तक लिखें, ऐसे-ऐसे विद्वान-दुर्जन, हमने बहुत देखे है। इनके दिल मे न दया है, न धर्म, दूसरो को वृथा कष्ट देना ही इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। यह बात उस भेड़िये की तरह है, जो नीचे स्थान मे पानी पीने वाले मेमने से विवाद कर बैठा—ये वृथा लड़ाई मोल लिया करते हैं। इन बातो के बिना इनकी रोटी ही हजम नही होती। अच्छा हो, ये शान्ति से अपना काम करे, दूसरो की शान्ति को भग न करें, दीन-दुखियों को न सतायें, पराये धन पर मन न चलाये। पर ये अपने स्वभाव से लाचार है। भगवान ने इनका स्वभाव ही ऐसा बना दिया है। ये आप दुख पाते है और दूसरो को कष्ट देते हैं। ये दूसरो के छिद्र देखने मे ही अपनी उम्र बिता देते है। किसी की उन्नति मे ये खुश नही होते। वे ही भाग्यवान हैं, जिनका ऐसो से पाला नही पड़ता। इस बात को याद रखो—

कैसे हू छूटत नहीं, जामे परी कुवानि।
काग न कोयल ह्वै सके, विधि सिखवें आनि॥

विद्यायत हू होय, तदपि दुष्ट तज दीजिये ।
सर्पजु मणिधर होय, भयकारी तेहुं जानिगे ॥५३॥

53. An evil person should be shunned even if he is adorned with knowledge Is a serpent, al, though adorned with a perecious gem, not fearful ?



जाड्य ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भ शुचौ कैतव
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्य प्रियालापिनी ।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्ति स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिना यो दुर्जनैर्नाङ्कित ॥५४॥

लज्जावानो का मूर्ख, व्रत-उपवास करने वालो को ठग, पवित्रता से रहने वालो को धूर्त, शूरवीरो को निर्दयी, चुप रहने वालो को बुद्धिहीन, मधुर-भाषियो को दीन, तेजस्वियो को अहकारी, वक्ताओ को वकवादी और शान्त पुरुप को असमर्थ कह कर, दुष्टो ने गुणियो के कौन से गुण को कलङ्कित नही किया ! ॥५४॥

दुर्जनों को सज्जनो से स्वाभाविक वैर होता है । जिस तरह मूर्ख पण्डितो से, दरिद्री धनियो से, व्याभिचारिणी कुल-स्त्रियो से और विधवा सधवाओ से सदा जलती रहती हैं, उसी तरह दुर्जन सज्जनो से जला करते हैं । ये सब चाहा करते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे ही सभी हो । जब इनसे कुछ भी बन नही पडता, तब ये गुणियो के गुणों की ही निन्दा करते हैं ।

बुरे कामो में लजाना मनुष्य मे उत्तम गुण है, इस गुण के होने से मनुष्य बुरे कामो से बचता है । व्रत-उपवास करने से मन और आत्मा शुद्ध हो जाते है और काया का मैल नष्ट हो जाता है । शूर-वीरता से निर्बलो की रक्षा होती है । मधुर भाषण से मनुष्य मात्र की आत्मा सन्तुष्ट रहती है। पर

दुर्जनो की नजर मे ये सब अनुकरणीय गुण भी अवगुण हैं । और कहाँ तक कहे, ये लोग उस वक्ता को भी वाचालता के दोप से दूषित करते हैं, जिसके बोलने से श्रोता मूक हो जाते हैं, उनके मन स्थिर हो जाते हैं और नेत्रो से टपाटप आँसू गिरने लगते हैं, जो आप किसी की ओर नही देखता, पर सब की दृष्टि अपनी ओर खीच लेता है, आप सिर नही हिलाता, पर सबके सिर हिलवा देता है और जिसका भाषण श्रोताओ के हृदय मे अमृत का काम करता है । असल मे दुर्जनो को सज्जन और गुणवान बुरे लगते है, इसलिये वे सदा उन्हे अपने जैसा करने के लिये कोई कोशिश उठा नही रखते और उन्हे बदनाम करने के लिये अपना एडी से चोटी तक का जोर लगाने मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं । जिनके हृदय मलीन है, वे इन्ही कुकर्मों मे अपने दुष्प्राय मनुष्य-जीवन को बर्बाद करते है । कहा है —

दोष लगावत गुनिन को, जाको हृदय मलीन ।
धरमी को दम्भी कहे, छमियन को बलहीन ।।
दुर्जन गुनगन सुजन के, छिन महँ करत मलीन ।
विमल वसन को करत जिमि, धूम स्याम रगभीन ।।

दुष्ट लोग भले आदमियो को अकारण इतना तग करते हैं कि मनुष्य को यह ससार बहुत ही बुरा मालूम होता है । ऐसो ही से दुखित होकर महाकवि गालिब ने कहा है—

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो ।
हमसखुन कोई न हो और हमजुबाँ कोई न हो ।।
बेदरो दीवार-सा इक घर बनाना चाहिए ।
कोई हमसायाँ न हो और पासबाँ कोई न हो ।।

ससार रहने की जगह नही, यहाँ ईर्ष्या-द्वेष का बाजार गर्म है । जी मे आता है, ऐसी जगह चलकर रहिये, जहाँ कोई न हो । हमारी बात कोई न समझे और न हम किसी की समझे । मकान भी ऐसा ही हो, जिसमे न दर हो, न दीवार, अर्थात शुद्ध जगल हो, न कोई साथी हो, न पडोसी ।

इसी तरह एक अगरेजी के विद्वान ने भी दुखो से दुखित होकर कहा है—

The better I klow men, the more I admire dogs.

अर्थात जितना ही मैं मनुष्यो को जानता जाता हूँ, उतना ही मैं कुत्तो की प्रशसा करता हूँ ।

वस यही हालत हमारी भी है । दुष्टो से दुख पाकर हमारी भी तवियत ऐसी हो गई है कि इस ससार से जगल भला मालूम होता है । मनुष्य के सग से पशुओ का सग भला मालूम होता है । पर मजवूरी से दूसरो के कारण से, हम इच्छा करके भी यहाँ से अभी सरक नही सकते । हम तो यही कहेगे, जो मनुष्यों की वस्ती से दूर रहते हैं, वे ही सुखी हैं, उन्हें सुख-शान्ति मिलती होगी, हमे तो किसी तरह का अभाव न होने पर भी यहाँ सुख नही दीखता ।

जो लोग इनमे ही रहना चाहें अथवा इच्छा न होने पर भी रहे विना न सरे, उनको इन दुष्टो की वातो पर कान देना चाहिये । मन मे समझना चाहिये, हम तो कौन चीज है, ये वडे-वडो की निन्दा करते हैं । इनकी निन्दा से हमारा क्या विगड जायगा ? तुलसीदासजी ने कहा है—

द्वारे टाट न दे सकहिं, तुलसी जे नर नीच ।
निंदरहिं बलि हरिचन्द कहँ, कहा कारण दधीच ॥
भलो कहहिं जाने बिना, की अथवा अपवाद ।
तुलसी गाँवर जानि जिय, करब न हर्ष विषाद ॥
तुलसी देवल राम के, लागे लाख करोर ।
काक अभागे हगि भरे, महिमा भयउ न थोर ॥

नीच लोग तो दरवाजे पर टाट भी नही लगा सकते, पर वलि और हरिश्चन्द्र जैसे महादानियो की भी निन्दा करते हैं, कर्ण और दधीचि तो इनकी नजरो मे कोई चीज ही नही ।

विना जाने प्रशसा करें अथवा निन्दा, गंवार समझकर इनकी वात पर नही हर्ष ही करना चाहिये और न शोक ही ही करना चाहिए ।

रामचन्द्रजी के लाखो-करोडो की लागत से बने मन्दिर पर अगर अभागा काग हग भरता है, तो क्या मन्दिर की महिमा कम हो जाती है ?

बस, दुष्टो मे रहकर शान्तिपूर्वक जीवन बिताने का इससे उत्तम और इलाज नही । यो तो दुष्टो का पडोस और गाँव छोडकर, उनसे हजार कोस दूर रहने मे भी सुख शान्ति नही—हाँ, गोस्वामीजी के उपदेश से मन को कुछ शान्ति अवश्य मिलती है ।

लज्जायुत जो होय, ताहि मूरख ठहरावत ।
धर्मवृत्ति मन माहि, ताहि दम्भी कहि गावत ।।
अति पवित्र जो होय, ताहि कपटी कह बोलत ।
धरै शूरता अग, ताहि पापी कहि तोलत ।।
विक्रमी मत्त प्रिय वचन रत, तेजवान लम्पट कहत ।
पडित लवार कह दुष्ट जन, गुण को तज औगुण गहत ।।५४।।

54 What good qualities of the meritorious are not misrepresented by evil men ? The modest are called by them fools those true to their vows are named hypocrites, the pure in heart are nicknamed cheats, the brave are misrepresented as tyrants, the philosophers are spoken of as whimsical, the sweet tongued are depicted as servile, the self-respecting are called self-conceited, good speakers are said to bo talkative and the patients are proclaimed as inactive,



लोभश्चेदगुणेन कि पिशुनता यद्यस्ति कि पातकै ।
सत्य चेत्तपसा च कि शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।।

सौजन्य यदि किं गुणै स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनै
सद्विधा यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥५५॥

यदि लोभ है तो और अवगुणो की क्या जरूरत ? यदि परनिन्दा या चुगलखोरी है, तो और पापो की क्या आवश्यकता ? यदि सत्य है, तो तपस्या से क्या प्रयोजन ? यदि मन शुद्ध है; तो तीर्थों से क्या लाभ ? यदि सज्जनता है, तो और गुणो को क्या जरूरत ? यदि कीर्त्ति है, तो आभूपण की क्या आवश्यकता ? यदि उत्तम विद्या है, तो धन का क्या प्रयोजन ? यदि अपयश है, तो मृत्यु से और क्या होगा ॥५५॥

लोभ से ही काम, क्रोध और मोह की उत्पत्ति होती है और मोह से मनुष्य का नाश होता है । लोभ ही पापो का कारण है । लोभ मे बुद्धि चचल हो जाती है । लोभ से तृष्णा होती है । तृष्णावर्त्त को दोनो लोको मे सुख नही । धन के लोभी को, असन्तोषी को,, चचल मन वाले को और अजितेन्द्रिय को सर्वत्र आफत है । लोभ सचमुच ही सब अवगुणो की खान है । लोभ होते ही और सब अवगुण आप-से-आप चले आते हैं । दुष्टो के मन मे पहले लोभ ही होता है, इसके बाद वे परनिन्दा, परपीडन और हत्या प्रभृति कुकर्म करते हैं । रावण को पहले सीता पर लोभ ही हुआ था । दुर्योधन को पहले पाण्डवो की सम्पत्ति पर लोभ ही हुआ था । इसलिये मनुष्य को लोभ-शत्रु से बिलकुल ही दूर रहना चाहिये । जिसमे लोभ नही, वह सच्चा विद्वान और पण्डित है । निर्लोभ को जगत मे आपदा कहाँ ? अगर विद्वान के मन मे लोभ है, तो वह विद्वान नही, मूर्ख ही है । तुलसीदास ने कहा है—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन मे खान ।
का पण्डित का मूरखे, दोनो एक समान ॥

परनिन्दक से बढकर पापी कोई नही । जिनका हृदय काला होता है, जिनका दिल मैला होता है, वे पराई निन्दा किया करते है । पराई निन्दा

यदि सच्ची हो, तो भी लाभ नही और यदि झूठी हो, तब तो कहना ही क्या ? अपनी जुबान गन्दी करने से कोई फायदा नही। लेवेटर नामक एक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है—'अगर तुम्हे किसी के दोष का ठीक पता न हो, तो तुम उसकी निन्दा मत करो, और अगर तुमको उसके दोष का ठीक पता हो, तो अपने दिल से पूछो, कि तुम्हे निन्दा करने से क्या लाभ ?" आपका अन्तरात्मा यही कहेगा कि कोई लाभ नही। जब लाभ नही, तब परनिन्दा क्यो की जाय ? अच्छे आदमी, परनिन्दा से, लाभ होने पर भी, परनिन्दा नही करते। परनिन्दा से जो लाभ हो, उसकी अपेक्षा उस लाभ विना रहना भला। पर ससार मे कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरो से परनिन्दा सुनकर खुश हुआ करते हैं और इस तरह वे निन्दकों को उस काम मे उत्साहित करते हैं। अगर लोग इतना समझें कि जो आज दूसरो की बुराई हमारे सामने करता है, वह एक दिन हमारी भी दूसरे के सामने करेगा, तो कभी ऐसो को मुँह न लगायें। परनिन्दा करने और सुनने मे समान पाप लगता है। जो पराई निन्दा करें, उन्हे सोचना चाहिये कि क्या उनमे दोष या खामी नही है ? अगर उनमे भी दोष या खामियाँ हो, तब उन्हे दूसरो की निन्दा करने का क्या अधिकार है ? असल बात यह है, जिनमे स्वय दोष होते हैं, वे ही दूसरो की निन्दा किया करते हैं। गेटे नामक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है—

"He that would reproach an author for obscurity should look into his own mind to see whether it is quite clear there In the dusk the plainest writing is illegible."

जो मनुष्य अस्पष्टता के कारण किसी ग्रन्थकर्ता की निन्दा करे, वह अपने ही चित्त मे विचार कर देखे, कि क्या वहाँ बिल्कुल स्वच्छता है ? कोहरे मे स्पष्ट-से-स्पष्ट लेख अपाठ्य होता है। जिनका दिल स्वच्छ नही होता, उनको ही पराया काम सदोष दीखता है। किसी ने कहा है—"It is easy to criticise an author, but it is difficult to appreciate it", अर्थात् किसी ग्रन्थकार के ग्रन्थ की कडी आलोचना करना

आसान है, पर उसकी प्रशंसा करना या पद्य करना कठिन है, अर्थात् किसी की निन्दा करना सहज है, पर उसकी तारीफ करना कठिन है। इस काम के लिये बड़े दिल की जरूरत है। निन्दक संकीर्ण-हृदय होते हैं। वे लोग पराई निन्दा करके ही प्रसिद्धि लाभ करना चाहते हैं, पर यह महापाप है, इससे पराई आत्मा को कष्ट होता है। पराया दिल दुखाना ही संसार में सबसे बड़ा पाप माना गया है। परनिन्दक और स्वार्थी, इस बात को जानते हुए भी, अपनी आदत से लाचार हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

तुलसी निज कीरति चहैं, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुँह मसि लागिहैं, मिटै न मरिहै धोय॥

कबीरदास ने कहा है—

निन्दक एकहु मति मिलै, पापी मिलै हजार।
एक निन्दक के सीस पर, हजार पाप को भार॥

सत्य की महिमा २६ वें श्लोक में लिख आये हैं। सत्य के सामने तप कुछ नहीं। सत्यवादी स्वयं बड़ा भारी तपस्वी है। जो सत्य बोलता है, स्वप्न में भी मिथ्या नहीं बोलता, उसकी बराबरी कौन कर सकता है?

यदि मन शुद्ध है, तो निश्चय ही तीर्थ-यात्रा की कोई जरूरत नहीं। सारा दारमदार मन की शुद्धि पर है। कहते हैं—"मन चंगा तो कठौती में गंगा।" जिसका मन शुद्ध नहीं, जिसके हृदय में पाप है, वही दुष्ट है। वह सौ बार तीर्थ-स्नान करने से भी शुद्ध नहीं हो सकता। क्या मदिरा का पात्र जलाने से शुद्ध हो जाता है? जिनके मन में काम, क्रोध, मद, लोभ प्रभृति का निवास नहीं है, उनका ही मन शुद्ध है, उनका ही मन रोग-रहित है। जिनका मन विशुद्ध है, उन्हें तीर्थों से क्या लाभ? अगर मन शुद्ध रहे और एक ही रंग में रँगा रहे, तो बस फिर सारा काम ही बन जाय—स्वयं जगदीश ही न मिल जायँ। कहा है—

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन हर सो मिलै, तो हरि मिलै निशंक॥

सज्जन पुरुष सदा पराया भला करते है, बुरा वे किसी का मन से भी नहीं चाहते। सभी का काम बनाते हैं, बिगाडते किसी का भी नही। वे न किसी पर क्रोध करते हैं, न किसी वस्तु पर मन चलाते हैं। परस्त्रियो को अपनी माता के समान समझते हैं प्राणिमात्र को अपना कुटुम्बी समझते हैं, सब के कष्ट को अपना कष्ट समझते है और किसी को भूलकर भी दु ख नही देते। झूठ बोलना और पराई निन्दा या चुगली-चपाती करना तो उनके स्वभाव मे ही नही। वे पराये अवगुणों को छिपाते और गुणो का प्रकाश करते हैं। वे ऐसे मधुरभाषी होते है, कि जिससे जरा भी बात करते हैं, वही उनका हो जाता है। उनके गुणो के कारण ही सभी उनके हो जाते हैं, इसी से कहा है, कि अगर सज्जनता है, तो स्वजनो की क्या जरूरत ?

निस्सन्देह, विद्या स्वय धन है। जिसके पास विद्या है, उसे क्या अभाव है ? प्रथम तो वास्तविक विद्वान धन की इच्छा ही नही रखते, वे जानते हैं, कि धन ही सारे अनर्थों की जड है। धन बडे कष्ट से कमाया जाता है, बडी-बडी तकलीफो से सञ्चित होता हैं, विपत्ति मे सन्ताप और सम्पद मे मोह करता है, इससे अभिमान हुए विना नही रहता। धनवान को क्षण-भर भी चैन नही। जिस तरह आकाश मे मांस को खाने वाले पक्षी हैं, जल मे मछलियां और पृथ्वी पर सिंह-व्याघ्र आदि हैं, उसी तरह धनी को खानेवाले सर्वत्र हैं। जिस तरह प्राणधारियो को सदा मृत्यु से भय रहता है, उसी तरह धनी को राजा, अग्नि, जल, चोर और भाई-बन्धुओ से सदा भय रहता है। कुटुम्बी सदा धनवान की मरण-कामना करते रहते हैं। प्रथम तो मनुष्य-जन्म ही दु खो से भरा हुआ है। फिर, धन होते ही तृष्णा बढती है और ज्यो-ज्यो धन अधिक होता है, त्यो-त्यो तृष्णा और भी अधिक होती है। इच्छानुसार सम्पत्ति किसी के भी नही होती। जो धन पास होता है, उसके चले जाने का भय सदा सिर पर सवार रहता है, क्योकि लक्ष्मी स्वभाव से ही चचल है, किसी एक के यहां नही ठहरती, अपने चंचल स्वभाव के वश, एक को छोड दूसरे के यहाँ चली जाती है। उसके चले जाने पर जो सन्ताप मन मे होता है, उसे भुक्त-भोगी ही जानता है। पास का धन नष्ट हो जाने से, मृत्यु-समय की-सी वेदना

होती है । बहुत क्या—धनवान को कभी सुख नहीं मिलता । बेंजामिन फ्रैंकलिन महोदय कहते हैं—"Money never made a man happy yet, nor will it There is nothign in its nature to produce happiness The more a man has, the more he wants" अर्थात् "रुपये ने आज तक किसी को सुखी किया भी नहीं और करेगा भी नहीं । इसके स्वभाव में ऐसी कोई बात ही नहीं, जिससे वह सुख उत्पन्न करे । मनुष्य के पास जितना ही होता है, उतना ही वह और चाहता है ।" लूथर महाशय कहते हैं—"Our Lord God commonly gives riches to foolish people, to whom He gives nothing else" अर्थात् "हमारा स्वामी—परमेश्वर मूर्खों को धन देता है । जिन्हें वह धन देता है, उन्हें वह सिवा धन के कुछ नहीं देता ।"

इन दुःखों के सिवा धन में एक और भी दुःख है । वह यह कि मरण-समय भी यह कष्ट देता है । जिस गधे पर हल्का बोझ होता है, वह आसानी से चला जाता है । उसी तरह जो गरीब होते हैं, जिनके हाथी, घोड़े, महल, मकान बाग-बगीचे, बड़ा परिवार और अनेक प्रकार के हीरा-पन्ना आदि रत्न नहीं होते, वे सहज में देह त्यागकर जाते हैं, उन्हें प्राणान्त के समय भयङ्कर वेदना नहीं होती । इन सब दुःखों के कारण से ही विद्वान लोग धन को पसन्द नहीं करते । वे विद्या-रूपी धन को सब धनों की अपेक्षा उत्तम धन समझते हैं, क्योंकि उसके नाश का कभी भय नहीं और वह सदा-सर्वदा मनुष्य का कल्याण ही करता है । अगर वे इस धन को परोपकार प्रभृति पुण्य कार्यों के लिए चाहें, तो इसका उन्हें कभी अभाव न हो । इसलिए, वे उस अक्षय धन के मुकाबले में, इस नाशवान और क्षण-क्षण दुःखदायी धन को पसन्द ही क्यों करने लगे ?

मनुष्य में यदि सुयश है, तो उसे आभूषणों की जरूरत नहीं । आभूषणों से तो शरीर की शोभा होती है और वह भी सदा नहीं, किन्तु सुयश या सुनाम से आत्मा की शोभा होती है और वह चिरकाल रहती है । सुयश स्त्री-पुरुषों

के आत्माओ का सच्चा आभूषण है। मनुष्य की देह नष्ट हो जाती है, पर सुकीर्ति शरीर के नष्ट हो जाने पर भी बनी रहती है।

अपयश मनुष्य का मरण है। जिसकी अपकीर्ति है, वह जीता हुआ ही मरा है। सज्जनो के दिलो मे बदनामी मे जैसी मर्मान्तिक वेदना होती है, वैसी शायद मृत्यु मे भी नही होती। बदनामी के डर स ही भगवान रामचन्द्र ने सच्ची सती, प्राणाधिका सीता को, निर्दोष जानकर भी, वन मे भेज दिया और स्वय उनकी विरहाग्नि मे जल-जलकर खाक हुए। बहुत क्या ? मनुष्य को कोई भी काम ऐसा न करना चाहिये, जिससे उसका अपयश हो। जिसका अपयश है, वह जिन्दा होने पर भी मुर्दा है।

भयो लोभ मन माँहि, कहा तब अवगुण चाहिये ?
निन्दा सबकी करत, तहाँ सब पातक लहिये ॥
सत्य वचन तप जान, शुद्ध मन तीरथ जानहु।
होत सुजनता जहाँ, तहाँ गुण प्रकट प्रमानहु ॥
यश जहाँ कहा भूषण चहै, सद्विद्या जहँ धन कहा ?
अपयश जु छयौ या जगत मे, तिन्हे मृत्यु ही है महा ॥५५॥

55 If there is avarice, there is no need of seeking for other bad qualities If there is perversity of heart, no other sin is required. If there is truth, other penances are useless. If the here is pure one need not visit the holy places If a man is good natured, no other strength is needed If there is inborn merit, no other ornaments are necessary If there is knowledge, wealth is a secondary consideration If there is disgrace, death is no worse



शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिज मुखमनक्षर स्वाकृते ।
प्रभुर्धनपरायण सततदुर्गत सज्जनो
नृपाङ्गणत खलो मनसि सप्त शल्य नि मे ॥५६॥

दिन का मलिन चन्द्रमा, यौवन-हीन कामिनी, कमल-हीन सरोवर, निरक्षर रूपवान, कजूस स्वामी या राजा, सज्जन दरिद्री और राजसभा मे दुष्टो का होना—ये सातो हमारे दिल मे काटे की तरह चुभते है ॥५६॥

चन्द्रमा अपनी प्रभा से ही शोभायमान लगता है। सूर्य के प्रकाश मे उसकी प्रभा नष्ट हो जाती है, इसलिए खूबसूरती-पसन्दो के दिल मे वह, प्रभा-हीन होने पर, काँटे की तरह खटकता है। स्त्री की शोभा यौवन से ही है। जिस स्त्री की तरुणाई और लुनाई नष्ट हो जाती है, चित्ताकर्षक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, वह बुरी मालूम होती है। सरोवर की शोभा कमलो मे है। कमल-हीन सरोवर, अच्छे-से-अच्छा होने पर भी, सौन्दर्य-हीन और सूना-सा लगता है। रूपवान मनुष्य विद्या-हीन होने पर ढाक के फूलो की तरह बेकाम होता है। यदि रूपवान विद्वान भी होता है, तो उसकी खूबसूरती दुबाला हो जाती है। राजा या धनी की शोभा उदारता से है। कृपण राजा या धनी नपुंसक के समान होते हैं। बिना धन त्याग किये, राज-राज शब्द मे कोई लाभ नही। निधियो की रक्षा करने वाले कुवेर को पण्डित लोग महेश्वर नही कहते। दाता अगर थोडे धन वाला भी हो, तो भी अच्छा, किन्तु समृद्धिवान कृपण किसी काम का नही। समुद्र की अपेक्षा लोग कुँए को पसन्द करते हैं। धनी होने पर जो उदार नही होता, वह मन मे खटकता ही है। इसी तरह सज्जनो का दरिद्री होना और राजसभा मे दुष्टो का होना खटकता है।

परमात्मा ने अपने सभी कामो मे कुछ-न-कुछ दोष रख दिये हैं और वे ही दोष चतुरो के दिलो मे खटकते हैं। अगर चन्द्रमा दिन में भी प्रभाहीन न

होता, स्त्री का यौवन सदा रहता, सरोवर कभी कमल-शून्य न होता, रूपवान विद्वान होते, धनी उदार होते, सज्जन धनवान होते और राजसभा मे दुष्टो की पहुँच न होती, तो कैसी आनन्द की बात होती ? परमात्मा की लीला ही अजब है। वह सज्जनो को बहुधा निर्धन रखता है ।

एमर्सन महोदय ने कहा है—'Tht graetest man in history was the poorest' इतिहास का सबसे बड़ा आदमी सब से ज्यादा निर्धन था।

लिवी महोदय कहते हैं—"Men are seldom blessed with good fortune and good sense at the same time" धन और सुबुद्धि एक साथ किसी ही भाग्यवान को मिलती है। जो धनवान है, बुद्धिमान नही, और जो बुद्धिमान हैं, धनवान नही ।

कवियो ने कहा है और ठीक ही कहा है—

भले बुरे विधिना रचे, पैं सदोष सब कीन ।
कामधेनु पशु कठिन मनि, दधि खारी शशि छीन ।।
कहीं-कहीं विधि की अविधि, भूले परम प्रवीन ।
मूरख को सम्पत दई, पण्डित सम्पतहीन ।।

और भी कहा है—

गध सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे नाकारि पुष्प खलु चन्दनस्य ।
विद्वान धनी भूपति दीर्घजीवी धातु पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत ।।

सोने मे सुगन्ध, ऊख मे फल, चन्दन मे फूल, विद्वान धनी और राजा चिरजीवी न किया, इससे स्पष्ट है कि विधाता को कोई अक्ल देने वाला न था।

फीको है शशि दिवस मे, कामिन - यौवन हीन ।
सुन्दर मुख अक्षर विना, सरवर पंकज हीन ।
सरवर पंकज हीन, होत प्रभु धन लोभी कौ ।
सज्जन कपटी होत; नृपति ढिग वास खलन कौ ।।

ये सातो है शल्य परम, छेदत या जी को ।
ब्रजनिधि इनका देख, होत मेरो मन फीको ॥५६॥

59 These seven prick my heart like a thorn The moon seen in the day-time destitute of her brightness, a beautiful woman past her youth, a lake without lotus-flowers, a handsome person possessing no literary talents, a miserly king, a good man stricken with poverty and a tale-bearing person having influence in a king's court



न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वान स्पृष्टो दहति पावक ॥५७॥

प्रचण्ड क्रोधी राजाओ का कोई प्यारा नही । जिस तरह हवन करने वाले को भी अग्नि छूने हो जला देती है, उसी तरह राजा भी किसी के नहो ॥५७॥

क्रोधी राजा का भूलकर भी विश्वास न करना चाहिये । उसके ना -रिश्तेदार और मित्रो को भी उनसे डरना चाहिये । आग जिस तरह हवन करने वाले का भी मुलाहिजा नही करती, उसी तरह राजा अपने बन्धु-बान्धवो का भी लिहाज नही रखते । राजा और अग्नि से कुछ दूर रहना और डरते रहना ही भला है । जो इनसे बिलकुल दूर रहते हैं, उन्हे इनसे फल नही मिलता और जो इनके बहुत निकट जाते है—इनसे निर्भय रहते हैं—इनकी प्रीति का विश्वास करते है, वे मारे जाते हैं । कहावत प्रसिद्ध है—

राजा जोगी अग्नि जल, इनकी उल्टी रीति ।
डरते रहिये परसराम, ये थोडी पालें प्रीति ॥

'पञ्चतन्त्र' मे लिखा है—

काके शौच द्यूतकारे च सत्य सर्पे क्षान्ति. स्त्रीषु कामोपशान्ति. ।
क्लीवे धैर्य्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता राजा मित्र केन दृष्ट श्रुतं वा ॥

कव्वे मे पवित्रता, जुआरी मे सत्य, सर्प मे सहनशीलता, स्त्री मे कामशान्ति, नामर्द मे धीरज, शराबी मे तत्त्वचिन्ता और राजा मे मैत्री किसने देखी या सुनी है ?

दुर्जनगम्या नार्य्य. प्रायेणेस्नेहवान्भवति राजा ।
कृपणानुसारि च धन मेवो गिरिदुर्गवर्षी च ॥

नारी अपने शत्रुओ से भी मिल सकती है, राजा में स्नेह नही होता, कृपण के पास धन रहता है और मेह पर्वतो की चोटियो पर बरसता है ।

'गुलिस्ताँ' मे भी लिखा है—राजाओ की मैत्री और लडको की मीठी-मीठी बातो पर भरोसा न करना चाहिये, क्योकि राजाओ की मैत्री जरा से शक पर टूट जाती है और लडको की प्यारी-प्यारी बातें रात-भर मे बदल जाती हैं ।

जे अति पापी भूप ते, काहू सौं न कृपाल ।
होम करत हूँ द्विजन को, दहत अग्नि की ज्वाल ॥५७॥

57 As for kings, who are subject to strong passions, nobody is their own Fire never fails to burn a man if it touched by him, while offering his oblations to it



मौनान्मूक प्रवचनपटुश्चवाटुको जल्पको वा ।
धृष्ट पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भ ॥
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजात
सेवाधर्म परमगहनो योगिनामप्यगम्य ॥५८॥

नौकर यदि चुपचाप रहता है तो मालिक उसे गूंगा कहता है; यदि बोलता है, तो उसे बकवादी कहता है, यदि पास रहता है, तो ढीठ कहता है, यदि दूर रहता है, तो उसे मूर्ख कहता है, यदि खोटी-खरी सह लेता है, तो उसे डरपोक कहता है, और यदि नहीं सहता है, तो उसे नीच कुल का कहता है। मतलब यह, कि सेवा धर्म—पराई चाकरी बड़ी कठिन है; योगियों के लिये भी अगम्य है ॥५८॥

संसार में जितने कठिन काम हैं, उनमें पराई चाकरी सबसे कठिन है। योगीजन सब तरह के कष्ट सहने के अभ्यासी होते हैं, उन्हें कोई कष्ट और कोई दुःख—कष्ट और दुःख नहीं मालूम होते, परन्तु, पर सेवा उनके लिये भी महा कठिन है। नौकर को किसी तरह भी चैन नहीं। प्रसिद्ध विद्वान और महाकवि होमर ने जो कहा है, वह बहुत ही ठीक कहा है, कि मनुष्य के आधे गुण तो उसी समय विदा हो जाते हैं, जब दूसरे का दासत्व स्वीकार करता है।

पहले तो मनुष्य का जन्म ही दुःख भोगने के लिये होता है। फिर, यह दरिद्रता हो और पराई चाकरी से पेट भरना पड़े, तब तो दुःख की पराकाष्ठा ही है। सेवा करनेवाले बड़े ही मूर्ख होते हैं, जो अपने शरीर की स्वतन्त्रता को भी खो देते हैं—अपनी आजादी से भी हाथ धो बैठते हैं। सेवक भूख लगने पर खा नहीं सकता, नींद आने पर सो नहीं सकता, नींद खुलने पर जाग नहीं सकता और निःशंक होकर कुछ कह नहीं सकता। क्या ऐसे सेवक को भी जिन्दा कह सकते हैं। लोग जो सेवावृत्ति को कुत्ते की वृत्ति कहते हैं, बड़ी गलती करते हैं। कुत्ते और सेवक में तो बड़ा फ़र्क है। सेवक से कुत्ता भला है, क्योंकि कुत्ता आजाद होता है और सेवक आजाद नहीं होता। कुत्ता अपनी मौज में फिरता है, पर नौकर तो प्रभु की आज्ञा से फिरता है। सेवक सारे ही काम यति के समान करता है। सेवक जमीन पर सोता है और यति भी जमीन पर सोता है, सेवक ब्रह्मचर्य रखता है और यति भी ब्रह्मचर्य रखता है, सेवक थोड़ा-सा भोजन करता है और यति भी थोड़ा-सा भोजन करता है। पर सेवक और यति में बड़ा भेद है, क्योंकि सेवक के सब काम पाप के लिये

और यति के धर्म के लिये होते हैं। सेवा से जो गोल-गोल और बड़े-बड़े मनोहर लड्डू मिलते हैं, वे तुच्छ हैं। उनकी अपेक्षा जङ्गल का सागपात खाकर पेट भरना और स्वतन्त्र रहना भला। झोपड़ी में रहना अच्छा, पर गुलामी करके महलों में रहना भला नहीं। स्वर्ग में सेवा करने से नरक में राज्य करना भला। कहा है —

वरं वनं वरं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनम् ।
वरं व्याधिर्मनुष्याणां नाधिकारेण सम्पदः ॥

वन में रहना अच्छा, भीख मांगकर खाना अच्छा, बोझा उठाकर जीना अच्छा रोगी रहना अच्छा, पर सेवा करके धन प्राप्त करना अच्छा नहीं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान सरस्वती-सम्पादक, पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी कह गए हैं —

चाहे कुटी अति घने वन में बनावे,
चाहे बिना नमक कुत्सित अन्न खावे।
चाहे कभी नर नये पट भी न पावे,
सेवा प्रभो पर न तू पर की करावे॥

चुप गूँगो लाबर बचन, निकट ढीठ जड़ दूर।
छमाहीन परिहास खल, सेवा कष्टहि पूर॥५८॥

58 If a servant is silent, he is said to be dumb; If he is clever of speech, he is dubbed as a talkative prattler, if he lives near, he is called disrespectful; If he keeps himself at a distance, he is considered a skulker, if he is tolerant, he is a coward and if he is not, he is put down as low-born The duty of serving (others) is very difficult to perform Even the Yogis can hardly understand it



उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः ॥५८॥

जो दुष्टो का सिरताज है, जो निरकुश या मर्यादा-रहित है, जो पूर्वजन्म के कुकर्म के कारण परले सिरे का दुराचारी है, जो सौभाग्य से धनी हो गया है और जो उत्तमोत्तम गुणो से द्वेष रखनेवाला है— ऐसे नीच के अधीन रहकर कौन सुखी हो सकता है ॥५८॥

तात्पर्य यह है कि नीच मनुष्य की सेवा करके मनुष्य हरगिज सुखी नहीं हो सकता । कहा है—

अगम्यान्य पुमान्याति असेव्यांश्च निषेवते ।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा ॥

जो अगम्या स्त्री मे गमन करता है, जो सेवा न करने योग्य की सेवा करता है, वह उसी तरह मरता है, जिस तरह खच्चरी गर्भ धारण करने से मरती है ।

जो ऐसे अवगुणो की खान नीचो की सेवा करते हैं, उन्हें भीष्म और द्रोण की तरह पद पद पर लाछित और दुखी होना पडता है । कहा है—

नासेव्यसेवया वधाद्देवाधीने धने धियम् ।
भीष्मद्रोणादयो याता क्षयं दुर्योधनाश्रयात् ॥

दुर्योधन दुष्टो का सरदार और बुराइयो की खान था । वह किसी नीति-नियम को न मानता था । मन मे आता, वही करता था । पूर्वजन्म के पापो से घोर दुराचारी था । दैव के अनुकूल होने से लक्ष्मी मिल गई थी, पर पाण्डवो के उत्तमोत्तम गुणो से वह अहर्निश जला करता था । उसकी सेवा करने से गोगृह मे भीष्म को अपमानित होना पडा और द्रोणाचार्य को नीचा देखना

पड़ा । भरी सभा में उसका अन्यायाचरण देखकर भी, चाकरी के कारण से, भीष्म और द्रोण कुछ न बोल सके । चाहने पर भी, अन्याय और अनीति को देखकर, मन-ही-मन कुढ़ा किये । बहुत क्या शेष में भी उन्हें अपने प्राण भी गँवाने पड़े ।

अत मनुष्य को किसी दशा में भी नीच की चाकरी न करनी चाहिये, क्योंकि नीच की सेवा में सुख नहीं ।

संग न करिये दुष्ट को, जासो होय उपाध ।
पूर्वजन्म के पाप सब, उपज उठावे व्याध ॥
उपज उठावे व्याध, दैववश होय धनी सो ।
शुभगुण राखै द्वेष, कुबुध को मित्र करै सो ॥
निपट निरकुश नीच, तासु चित रङ्ग न धरिये ।
दुखमय दुर्गुण खान, तासु को सङ्ग न करिये ॥५९॥

59 Who can find happiness if he is dependent on a mean-hearted person who outvies all evil men and is unrestrained by any thing, who is bent upon adding to his base nature owing to the evil actions done in a previous birth, who has acqired wealth by sheer luck and who is jealous of all good qualities

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमति च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥६०॥

दुष्टो की मैत्री, दोपहर-पहले की छाया के समान, आरम्भ मे बहुत लम्बी चौडी होती है और पीछे क्रमश घटती चली जाती है, किन्तु सज्जनो की मैत्री दोपहर-बाद की छाया के समान पहले बहुत थोडी-सी होती है और पीछे क्रमश बढने वाली होती है ॥६०॥

खुलासा यह है, कि जिस तरह दोपहर से पहले की छाया आरम्भ मे बहुत बडी होती है और पीछे क्षण-क्षण घटती जाती है, उसी तरह खलों की मैत्री पहले बहुत और पीछे कम होने वाली होती है। परन्तु सत्पुरुषो की मैत्री दोपहर पीछे की छाया के समान, पहले थोडी और पीछे क्रम-क्रम से बढने वाली होती है।

दुर्जनो की मित्रता—पहले बहुत, पीछे कम।
सज्जनों की मित्रता—पहले कम, पीछे बहुत ॥

'पचतत्र' मे लिखा है—

इक्षोरग्रात्क्रमश पर्वणि यथा रसो विशेष ।
तद्वत्सज्जनमैत्री विपरीतानान्तु विपरीता ॥

ईख के अगले हिस्से मे रस कम होता है, ज्यो-ज्यो आगे चलियेगा, रस अधिक मिलता जायगा। बस, सज्जनो की मैत्री ठीक ऐसी होती है, दुर्जनो की इसके विपरीत होती है।

नीचो की मैत्री के सम्बन्ध मे और कवियो ने भी कहा है—

ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत-घटत घट जाय ॥
बिनसत बार न लागई, ओछे नर की प्रीति।
अम्बर डम्बर साँझ के, ज्यो बालू की भीति ॥

छाया जैसी प्रात की, तैसो दुर्जन प्रीति।
पहिले दीरघ होय पुनि, घटने लगे तज रीति ॥

घटन लगे तज रीति, प्रीति को करै बढ़ानी।
पै सज्जन की प्रीति, विरुध याके मन मानी॥
पहले सूक्ष्म रूप, फेर दिनरात सवाया।
सुजन प्रीति नित बढे, यथा सध्या की छाया॥६०॥

60 The friendship of evil as well as good men is like the shade of day in the forenoon and afternoon The former is great in the beginning but diminishes as the day passes on, where as the latter is small at first, but goes on increasing afterwards

मृगमीनसज्जानाना तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥६१॥

हिरन, मछली और सज्जन क्रमश: तिनके, जल और सन्तोष पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं; पर शिकारी, मछुए और दुष्ट लोग अकारण ही इनसे वैर-भाव रखते हैं॥६१॥

सहज तोष है साधु को, खल दुख देन प्रवीन।
मछुआ मारत जल बसत, कहा बिगारत मीन॥

हिरन, मछली और सज्जन—ये किसी की हानि नहीं करते, पर दुष्ट लोग इन्हें वृथा ही सताते हैं। इससे मालूम होता है कि दुष्टों का स्वभाव ही ऐसा होता है। वे दूसरों को तकलीफ देने में ही अपना कर्तव्य-पालन समझते हैं। कहा है—

मीन वारि मृग तृण सुजन, करि सन्तोषहि जीव।
लुब्धक धीमर दुष्टजन, बिन कारण दुख कीव॥६१॥

61 With deer, with fishes and with good men who feed themselves only with grass, water and a contented livelihood respectively, the hunters, fishermen and evil minded persons cherish enmity in this world without any cause whatsoever

सज्जन-प्रशंसा

वाञ्छा सज्जनसगमे परगुण प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्याया व्यसन स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्ति शूलिनि शक्तिरात्मदमने समर्गमुक्ति खले-
ष्वेते तेषु वसति निर्मलगुणस्तेभ्यो नरेभ्यो नम ॥६२॥

सज्जनो की सगति की अभिलाषा, पराये गुणो मे प्रीति, बडो के साथ नम्रता, विद्या का व्यसन, अपनी ही स्त्री मे रति, लोक-निन्दा से भय, शिव की भक्ति, मन को वश मे करने की शक्ति और दुष्टो की सगति का त्याग—ये उत्तम गुण जिनमे हैं, उन्हे हम प्रणाम करते हैं ॥६२॥

जिन पुरुषों मे ये उत्तम गुण हैं, वे मनुष्य-रूप मे देवता और इस भूतल की शोभा हैं।

सज्जनो की सगति मे अनन्त लाभ है, और दुर्जनो की सगति मे अनन्त हानियाँ हैं। सज्जनो की संगति से बुरे भी भले हो जाते है और दुर्जनों की सगति से भले भी बुरे हो जाते हैं,—इन बातो का विचार करके बुद्धिमान मनुष्य सज्जनो का सगति करते हैं और दुर्जनो की छाया के पास भी नहीं जाते। सज्जन आप दुखी रहने पर भी पराया भला करते हैं। अर्जुन ने स्वय

घोर विपत्ति में भी विराट की गायें कौरवों से छुड़ाकर राजा का भला किया। शिवजी स्वयं भिक्षाटन करते हैं, पर उनकी सहधर्मिणी जगत को अन्नपूरती हैं। सज्जनों की बातें पत्थर की लकीर होती हैं। वे जो कुछ मुँह से निकाल देते हैं, उसे पूरा ही करते हैं। राजा हरिश्चन्द्र ने अगणित कष्ट भोगे, पर विश्वामित्र को जो कहा था, सो दे ही दिया। रामचन्द्र जी ने स्वयं राज्य-हीन वनवासी होने पर भी विभीषण को तो राज्य दे ही दिया। सज्जन जिसे हँसी में भी अपना कह लेते हैं, उसे अपने ऊपर हजार-हजार कष्ट पड़ने पर भी नहीं त्यागते। चन्द्रमा क्षयी और कलंकी है तथा विष प्राण-संहारक है, पर शिवजी उन्हें नहीं त्यागते। सज्जन जरा-जरा-सी बातों पर रीझकर दूसरों को निहालकर देते हैं। उमापति गाल बजाने में ही सन्तुष्ट होकर मनुष्य को अभावहीन कर देते हैं, विष्णु भगवान केवल तुलसी-पत्रों से ही रीझकर भक्त के सारे मनोरथ पूरे कर देते हैं। पारखजी नामक एक महा पुरुष ने अपने मन्दिर में झाड़ू देनेवाले को करोड़पति बना दिया। एक दिल्लगीबाज ने किसी महफ़िल में एक सेठ के दुपट्टे के पल्ले से नाचने वाली वेश्या के ओढ़ने का पल्ला बाँध दिया। सेठ ने वेश्या को इच्छानुसार धन देकर उसकी वेश्या-वृत्ति छुड़ा दी। सज्जनों के गुण कदाचित् शेष जी भी न कह सकें, तब हमारे जैसे क्षुद्र मनुष्य की क्या सामर्थ्य! बुद्धिमान लोग इन बातों को जानते हैं, इसी से वे सज्जनों की ही संगति की अभिलाषा रखते हैं।

तुलसीदासजी ने कहा है—

तुलसी सज्जन सेइए, जब तब आवहिं काम।
लंक विभीषण को दई, बड़े दुचित में राम॥

जिस तरह उत्तम पुरुष सज्जनों की संगति की अभिलाषा रखते हैं, उसी तरह वे पराये गुणों की कदर भी करते हैं एवं माता, पिता और गुरु प्रभृति बड़ों के आगे नम्र भाव से रहते हैं। इसमें वे श्रवण, रामचन्द्र और कच प्रभृति आदर्श पुरुषों का अनुकरण करते हैं। अपने समय को हँसी-मजाक, ताश-गंजीफा अथवा मादक पदार्थों के सेवन में नहीं बर्बाद करते। जीविका-उपार्जन के कामों से जो समय बचता है, उसे पुस्तकावलोकन में व्यतीत

करते हैं, अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहते हैं, सपने मे भी परस्त्री का ध्यान नहीं करते, लोक-निन्दा से बहुत डरते हैं, वे समझते है कि ससार जिसकी निन्दा करता है, वह जीता भी मरा है, इसलिये वे फूंक-फूंककर कदम रखते हैं। वे इन्द्रियो को अपने काबू मे रखने की सामर्थ्य रखते हैं, क्योकि जो इन्द्रियो को वश मे नही रख सकते, उनको पद-पद पर आपदायें हैं। घोडो को वश मे न रखने से जो गति गाडी और गाडी मे बैठने वाले की होती है, वही गति मनुष्य के शरीर और आत्मा की होती है। जो इन्द्रियो को वश मे रखता है, वही सच्चा बहादुर है। दुष्टो की सगति से बिल्कुल ही बचते हैं, क्योकि कुसग के समान हानिकारक और मनुष्य का अध पतन कराने वाला और कोई काम नही है। जिनमे ये सब गुण हैं, वे नर रत्न निस्सन्देह वन्दनीय है।

जाने पर के गुण सदा, महत् पुरुष को सग।
विद्या अरु निज भार्य्या, तिन मे मन को रग॥
तिन मे मन को रग, भक्ति शिव को दृढ राखे।
गुरु आज्ञा मे नम्र रहै, खल सग न भाखै॥
ब्रह्मज्ञान चित माहि, दमन इन्द्रिन सुख मानै।
लोकवाद को शक, पुरुष ते नृप-सम जानै॥६२॥

62. I salute the people in whom the following pure qualities find their residence—A desire for the society of virtuous men, an appreciation for other people's merits, respect for elders, love of knowledge, fondness for their own wives, fear of disgrace, devotion to the god Shiva, power of self-control and avoidance of evil company

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥६३॥

विपद्काल मे धैर्य, ऐश्वर्य मे क्षमा, सभा मे वचन-चातुरी, सग्राम मे पराक्रम, सुयश मे अभिरुचि और शास्त्रो मे व्यसन—ये गुण महापुरुषो मे स्वभाव से ही होते हैं ॥६३॥

महात्मा पुरुष घोर विपद् मे भी धैर्य नही त्यागते, विपद् मे वे फौलाद से भी मजबूत हो जाते है - कैसी भी आपदा उन्हे अधीर नही कर सकती। स्वय विधाता भी उन्हे धैर्यच्युत नही कर सकता । जिस तरह गर्मी मे सरोवर सूख जाते हैं, पर सिन्धु अत्यन्त बढता है, उसी तरह विपद् मे नपुसक घबरा जाते हैं, किन्तु महात्मा और भी दृढ हो जाते हैं—उनका साहस बढ़ जाता है । साहस के बल से महाविपद् के भी पार हो जाते है ।

महात्मा लोग समझते हैं कि मनुष्य के सुख और दु,ख, सम्पद और विपद उसके पूर्वजन्मो के किये हुए कर्मों के फल है । कर्मों के फल भोगने से कोई भी बच नही सकता । जो किया है, उसका फल भोगना ही होगा । विपत्ति और दुर्भाग्य का रोकना असम्भव है, फिर घबराने से क्या लाभ ? घबराने या धैर्य त्यागने से विपत्ति बढती है, घटती नहीं ।

उनका खयाल है कि विपत्ति परमात्मा अपने प्यारो पर डालता है। विपत्ति-रूपी कसौटी पर ही वह अपने प्यारो के धैर्य और धर्म की परीक्षा करता है। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर, वह अपने प्यारो को उचित पुरस्कार देता है । विपत्ति भयकर सर्प है और उसके गुण सर्प की मणि से ज्यादा कीमती नही, तो कम भी नही । विपत्ति मे ही मनुष्य को अपने पराये, हितु-मित्र प्रभृति का खरा-खोटापन मालूम होता है । इस समय स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव और सेवक आदि जो साथ देते हैं, वे ही सच्चे समझे जाते हैं, सम्पदावस्था मे तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं । गोस्वामीजी ने कहा है—।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपदकाल परखिये चारी ॥

इन सब की परीक्षा के सिवा, मनुष्य विपद्काल मे देश-देशान्तर मे भ्रमण करता है, छोटे और बड़े सबसे मिलता है और सब तरह के आदमियो के व्यवहार और वर्ताव को देखकर नित्य-नया अनुभव प्राप्त करता है। रात जितनी ही अँधेरी होती है, तारे उतनी ही तेजी से चमकते हैं, विपद् जितनी ही भारी होती है, मनुष्य उतना ही अधिक गुणवान होता है। विपद् मे ही मनुष्य के गुणो का प्रकाश होता है। विपद् निश्चय ही परमात्मा का शुभाशीर्वाद है। जिस तरह दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होते हैं, उसी तरह सम्पद और विपदावस्थायें आती और जाती रहती हैं। सदा सुख नही रहता है और न दुःख ही रहता है। इसलिये विपद मे मनुष्य को घबराना न चाहिये। समुद्र मे जहाज के डूब जाने पर जो यात्री घबरा जाता है, वह निश्चय ही डूब जाता है, किन्तु जो धैर्य और साहस रखता है, वह परमात्मा की दया से बहुधा बच जाता है। धैर्यवान का विपद कुछ भी नही बिगाड़ सकती। विपद मनुष्य का धैर्य देखती है, जब उसे धैर्य मे पक्का पाती है, तब आप उसके धैर्य से घबरा कर भाग जाती है। महात्मा लोग इन सब तत्वपूर्ण बातो को जानते है, इसलिये वे स्वभाव से ही धैर्यवान होते हैं और विपद मे धैर्य को कदापि नही त्यागते।

अयोध्यानाथ महाराज रामचन्द्रजी पर कुछ कम विपत्ति नही पड़ी। राजतिलक होते-होते वनवास हुआ, पिता दशरथ का मरण हुआ, जननी से वियोग हुआ, सीता-जैसी कोमलांगी को लेकर भीषण वन और दुर्गम पर्वतो मे भ्रमण करना पड़ा। वन मे भी सीता का वियोग हुआ। पर वे जरा भी धैर्यच्युत नही हुए और इसलिये, महादुस्तर विपद से पार होकर, विजयी हुए। महाराजा नल पर कम विपद नहीं पड़ी। राज्य गया, रानी और सन्तान से वियोग हुआ, अन्न और वस्त्र के लिये तरसना पड़ा, पराई चाकरी करनी पड़ी, पर वे नही घबराये इसीलिए शेष मे उनकी विपद भाग गई, रानी और राज्य सभी मिल गये। पाण्डवो की तरह कौन विपद सहेगा? बेचारो पर विपद-पर-विपद पड़ती रही। धनैश्वर्य गया, भरी सभा मे घोर अपमान हुआ, वन-वन मे मारे-मारे डोले, भिक्षा-वृत्ति पर भी जीवन-निर्वाह करना पड़ा, पर धैर्य के बल

से सारी विपदाओ को काटकर, भगवान कृष्ण की दया से, वे युद्ध मे विजयी हुए। महाराजा हरिश्चन्द्र का राज्य गया, स्त्री और पुत्र से वियोग हुआ, पुत्र का मरण हुआ, रानी को पराई दासी बनना पडा, स्वय अपने श्मशान पर चाण्डाल की चाकरी की, पर आपने पुत्र के मरने पर भी अपने धैर्य और धर्म को न छोडा,—इसी से भगवान आप पर प्रसन्न हुए आपकी सारी विपद हवा हो गई। मनुष्य को इन महात्माओ की विपद-कहानियो से शिक्षा ग्रहण कर विपद मे कदापि धैर्यच्युत न होना चाहिये।

महात्मा लोग विपद मे जिस तरह कठोर हो जाते हैं उसी तरह सम्पदा मे वे एकदम नम्र बने रहते है और धनैश्वर्यशाली होकर इतराते नही, अभिमान के वश होकर किसी को कष्ट नही देते। इस अवस्था मे उनकी सहनशीलता उल्टी बढ जाती है। क्षमा और नम्रता की वे मूर्ति ही बन जाते हैं, क्योकि वे इस अवस्था को भी विपदावस्था की तरह चिरस्थायी नही समझते। महापुरुषो मे क्षमाशीलता स्वभाव से ही होती है, किन्तु सर्प-समान दुष्टो मे क्षमा नही होती। धैर्य वीरो मे होता है, नपुसको मे नही होता। सम्पद पाकर दुष्ट लोग नदी-नालो की तरह इतरा जाते है, पर महात्मा लोग समुद्र की तरह गम्भीर बने रहते हैं।

वृन्द कवि ने कहा है—

> **भले वस को पुरुष सो, निहुरे बहु धन पाय।**
> **नवै धनुष सदवस को, जिहि द्वै कोटि दिखाय॥**

सभा-चातुरी भी एक बडा गुण है। सभा-चतुर मनुष्य अपनी वचन-चातुरी से सबको मुग्ध कर लेता है। नीति मे लिखा है, जो सुन्दर वचन-रूपी द्रव्य का सग्रह नही करता, वह परस्पर के आलाप-रूपी यज्ञ मे क्या दक्षिणा दे सकता है। वचन-चातुरी से देवता राजी होते हैं। वचन-चातुरी से शत्रु भी वश मे हो जाते हैं। सभा-चतुर पुरुष हजारो-लाखो विपक्षियो को भी मूक बना देता है। इच्छा न होने पर भी, विपक्षियो को उसकी इच्छानुसार काम करना पडता है। यो तो सभी बोलते-चालते और काम करते है; पर चतुरो का बोलना-

पालना कुछ और ही होता है। सभा-चतुर जो कहना है, वह सप्रमाण कहता है और इस ढग से कहता है कि सभी उसकी वातो पर लट्टू हो जाते हैं। कहा है—

श्रवण नयन मुख नासिका, सव ही के इक ठौर।
हँसिवो बोलिवो देखिवो, चतुरन को कछु और ॥
करिये सभा सुहावने, मुख तें वचन प्रकाश।
बिनु समझे शिशपाल को वचनन भयो विनाश ॥

महात्मा लाग जीवन को एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होने वाला समझते हैं। उन्हे धन और प्राणो का मोह नही होता। वे जीवन का मोह त्यागकर और निर्भय होकर युद्ध करते और अपना पराक्रम खूब दिखाते हैं। वे आगे पैर रखकर पीछे पैर नही देते। कर्ण, अर्जुन और अभिमन्यु प्रभृति महापुरुषो के पराक्रम की वात 'महाभारत' पढने वालो से छिपी नही है। कहा है—

रन सन्मुख पन सूर के, वचन कहे ते सन्त।
निकस न पाछे होत हैं, ज्यो गयन्द के दन्त ॥

महात्मा लोगो की रुचि सदा सुयश मे ही रहती है, अपयश और मौत मे वे भेद नही समझते। उनका खयाल है कि बुरा जख्म अच्छा हो जाता है, पर कुनाम सुनाम नही होता। इसी भय से वे जो काम करते हैं, ऐसा ही करते हैं, जिससे उनके सुनाम मे वट्टा न लगे और निशि-दिवस उनका सुयश वढे।

महात्मा लोग अपना एक क्षण भी गप-शप, कलह-विवाद या अन्य वुरे कामो मे नष्ट नही करते। उनका सारा समय ग्रन्थो के देखने, पढने और मनन करने मे ही जाता है, जब कि मूर्खों का समय सोने, झगडने और अन्य निन्दनीय कामो मे नष्ट होता है।

साराश यह है कि महापुरुषो की तरह मनुष्य को विपद् मे धैर्य रखना चाहिये, ऐश्वर्य मे विनीत भाव धारण करना चाहिये, सभा मे वाक् चातुरी दिखानी चाहिए, युद्ध मे वीरता प्रकाशित करनी चाहिए, सदा सुयश की प्राप्ति कराने वाले काम करने चाहिए और शास्त्रावलोकन के सिवा और व्यसन न

रखना चाहिये। सत्पुरुषो मे तो ये सब गुण स्वभाव से ही होते हैं, पर दूसरे लोगो को भी उनका अनुकरण करना चाहिये, क्योकि इस राह पर चलने से सदा कल्याण होता है।

विपत धीर, सम्पति छमा, सभा माहि शुभ बैन ।
युध विक्रम, यश माहि रुचि, ते नरवर गुण ऐन ॥

63 Fortitude in distress, gentleness in prosperity, cleverness of speech in gatherings, gallantry in war, liking for renown and fondness for the study of Vedas are the natural characteristics of great men



प्रदान प्रच्छन्न गृहमुपगते सम्भ्रमविधि
प्रिय कृत्वा मौन सदसि कथन चात्युपकृते ।
अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभिभवसारा परकथा
सता केनोद्दिष्ट विषमसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

दान को गुप्त रखना, घर आये का सत्कार करना, पराया भला करके चुप रहना, दूसरे के उपकार को सब के सामने कहना, धनी होकर गर्व न करना और पराई बात निन्दा-रहित कहना ये उत्तम गुण महात्माओ मे स्वभाव से ही होते है ॥६४॥

महात्माओ मे तो ये गुण स्वभाव से होते ही हैं, उन्हे कोई इनकी शिक्षा नहीं देता, पर अन्य लोगो को भी उनका अनुकरण करना चाहिये।

दान करके किसी से कहना, अखबारो मे छपवाना अथवा और तरह ढोंडी पिटवाना अच्छा नही। इस तरह से जो दान किया जाता है, उस दान का महत्व घट जाता है, इसी से वास्तविक दानी अपने दान की खबर अपने दूसरे हाथ को भी नही पता दें। अमेरिका के धन-कुबेर महा दानी कार्नेगी इस

जमीन के वर्ण, करोडो का दान करके भी किसी को नहीं जानते थे । उन्होंने अपने धन से हजारो दुखियो के दुख दूर कर दिये, लाखो के चेक जरा-जरा-सी प्रार्थनाओ पर काट दिये और साथ ही उसन कह दिया—"खबर-दार ! किसी से भी यह बात न कहना ।', इस अभागे भारत मे भी पहले ऐसे ही अनेक दानी महात्मा जन्म लेते थे, पर अब तो दान पीछे करते हैं, और समाचार-पत्रो मे खबर पहले निकल जाती है । आजकल इस देश के धनी ऐसी ही जगह अपनी रकमे दान करते हैं, जहाँ से उन्हे नाम होने की या कोई पदवी मिलने की आशा होती है । ऐसा दान सच्चा दान नही । इनका फल दाता को पूरा नही मिलता । तुलसीदास ने कहा है—

तन धन महिमा धर्म जेहि, जा पह सह अभिमान ।
तुलसी जियत विडम्बना, परिणामहु गति जान ।।

महापुरुष पराया भला कर किसी से कहते नही, ये पराया कष्ट निवारण करके चुप रहने से ही अपनी शोभा समझते हैं । जो परोपकार करके कहता फिरता है, उसका उपकार नष्ट हो जाता है । उपकार करके गाते फिरने से उपकार न करना ही भला है । अंगरेज लोग भी उपकार करके जताने वाले को सत्पुरुष नही समझते । महात्माओ मे तो यह उत्तम गुण स्वभाव से ही होता है, अन्य लोगो को भी महात्माओ का अनुकरण करना चाहिये । महात्मा अर्जुन ने विराट् राजा का महत उपकार करके भी, अपनी जुबान से यह नही कहा कि यह काम मैंने किया है । उसका सेहरा उत्तर के सिर ही बाँधना चाहा, पर स्वयं उत्तर ने राजा से सारा हाल कह दिया । कहा है—

बडे बड़ेई काम कर, आप सिहावत नाँहि ।
जय जस उत्तर को दियो, पथ विराट के माँहि ।।

सत्पुरुष घर आये शत्रु का भी उपकार करते हैं । अपने घर मे जो कुछ होता है उसीसे उसका सत्कार करते हैं । अगर कुछ भी पास नहीं होता, तो उसे बैठने को कुशो का आसन देते है, शीतल कूप-जल पिलाते हैं और

मीठी-मीठी बातो से उसका श्रम दूर करते हैं। आप नहीं खाते, अतिथि को खिलाते है। आप जमीन पर सो रहते है, पर अतिथि को पलग पर सुलाते है। यह सत्पुरुषो का सहज स्वभाव होता है। और लोगो को भी उनका अनुकरण करना चाहिये। हमारे शास्त्रो मे लिखा है —

अपूजितोऽतिथिर्यस्य ग्रहाद्याति विनिश्वसन्।
गच्छन्ति विमुखास्तस्य पितृभि सह देवता.॥

"जिसके घर मे अपूजित अतिथि स्वाँस लेता हुआ चला जाता है, उसके यहाँ से देवता भी पितरो-सहित विमुख होकर चले जाते है।" अगर गृहस्थ, सूर्य डूबने के बाद आये हुए अतिथि की सेवा करता है, तो उससे देवता सतुष्ट होते हैं—आइये कहने से अग्नि, आसन देने से इन्द्र, चरण धोने से पितर और अर्घ देने से शिवजी प्रसन्न होते है। घर पर कोई भी आये, उसकी खातिर करनी ही चाहिये। यथासामर्थ्य खान-पान-वस्त्र आदि से उसका कष्ट और श्रम निवारण करना चाहिये। देखिये वृक्ष अपने काटने वाले के सिर पर भी छाया करता है। घर पर आये हुए बालक, वृद्ध, युवा सभी की पूजा करनी चाहिए, क्योकि अभ्यागत सबका गुरु होता है। उत्तम वर्ण वाले के घर आया हुआ नीच वर्ण का अतिथि भी यथायोग्य पूजनीय होता है। जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह अपने किये पाप उसे देकर उसका पुण्य ले जाता है। एक दिन भारत मे अतिथि-सत्कार की बडी महिमा थी, पर अब वह बात नही। देश के जिन भागो मे नई सभ्यता की रोशनी नही पहुँची है, वहाँ के लोग अब भी पुरानी चाल पर चलते हैं। यह बात राजपूताने के उन हिस्सो मे, जिसमे पुराने ही ढग के मनुष्य हैं, अब भी है। हमने सिन्ध और राजपूताने के मरुस्थल मे स्वय परिभ्रमण किया है। जब हम दिन-भर चलकर, शाम के वक्त किसी गाँव मे पहुँचते थे, तो वहाँ के गरीब लोग हमे यथासामर्थ्य सब तरह सुखी करने मे ही अपने को धन्य समझते थे। कहा है—

जो घर-आवत शत्रु हु, सुजन देत सुख चाहि।
ज्यो काटे तरु मूल कोउ, छाँह करत वह ताहि॥

महापुरुष अपने किये उपकारो को तो छिपाते हैं, पर दूसरा उनके साथ जो ज़रा सी भी भलाई करता है, उसको सौगुनी करके औरो से कहते हैं। यह सामर्थ्य सत्पुरुषो मे ही होती है। नीच लोग तो अपने उपकारी के उपकार को छिपाने की ही चेष्टा किया करते हैं, क्योकि सकीर्ण-हृदय लोग इसमे अपनी मान-हानि समझते है। किसी ने कहा है—

"Man is, beyond dispute, the most excellent of createn beings and the vilest animal is a dog, but the saces agree that a grateful dog is better than an ungratefnl man."

मनुष्य निस्सन्देह, सब प्राणधारियो मे उत्तम है और कुत्ता सबसे नीच है, लेकिन बुद्धिमान कहते हैं, उपकार न मानने वाले मनुष्य से कुत्ता अच्छा है। शास्त्रो मे लिखा है—मित्रद्रोही, कृतघ्न, भ्रूणहत्या करनेवाले और विश्वास-घाती सदा नरक मे जाते हैं, इसलिए पराये किये उपकार को कभी न भूलना चाहिये और अपने उपकारी की जगह-जगह प्रशसा करनी चाहिये। कहा है—

तिनसों विमुख न हुजिये, जे उपकार समेत।
मोर ताल जल पान करि, जैसे पीठ न देत॥
खल नर गुण माने नहिं, मेटहिं दाता ओप।
जिमि जल तुलसी देत रवि, जनद करत तेहि लोप॥

कहते हैं, धन से किसे गर्व न हुआ? किस कामी का दुख कम हुआ? किसके मन को स्त्रियों ने खण्डित न किया? कौन राजा का प्यारा न हुआ? कौन काल के वश नही हुआ? कौन याचक बडा हुआ? दुष्ट के ससर्ग से कौन सकुशल बचा? महात्मा तुलसीदासजी ने भी कहा है—प्रभुता पाय काहि मद नाही?

यह बात साधारण लोगो के सम्बन्ध मे ठीक है। सत्पुरुषो को धन मे गर्व नही होता। धनैश्वर्य पाकर सत्पुरुष फलदार वृक्षो की तरह उल्टे नीचे को झुक जाते है, अर्थात् नम्र हो जाते हैं। वे इस बात को जानते हैं कि धन, यौवन और जीवन असार और चञ्चल हैं। धन गेंद की तरह हाथ मे आता है

और गेंद की ही तरह शीघ्र ही हाथ से निकल जाता है। जो आज ऊँचा है, उसे कल नीचे गिरना ही होगा। इस जहान मे कितने ही वाग लग-लगकर सूख गये, आज उनका नामोनिशान भी नही, कितने ही दरिया चढे और उतर गये। ससार की परिवर्तनशीलता का ज्ञान होने की वजह से ही, जो सारी पृथ्वी के अकेले स्वामी होने पर भी, मिथ्या घमण्ड नही करते, वे निस्सन्देह महात्मा और इस पृथ्वी के भूषण हैं।

कहा है—

सघन सगुण सधरम सगण, सुजन सुसवल महीप।
तुलसी जे अभिमान विन, ते त्रिभुवन के दीप॥

महात्मा पुरुष अगर किसी का जिक्र करते है, तो उसमे निन्दाव्यञ्जक वाक्य तो क्या—एक बुरा शब्द भी नही आने देते। उनको किसी से ईर्ष्या-द्वेष नही होता, इसलिए वे किसी का दिल दुखानेवाली वात नही करते। पराया दिल दुखाने को महापातक समझते हैं। उनकी जुवान और कलम से, स्वप्न मे भी, किसी की निन्दा की वात नही निकलती। महात्माओ को दूसरे मे दोष दीखते ही नही। दोष उन्ही को दीखते है जिनके हृदय स्वय मलीन होते हैं और जो परछिन्द्रान्वेषण की फिक्र मे रहते हैं जो स्वयं खराव होते हैं, उन्ही को दूसरे खराव मालूम होते हैं। धुँधले आईने मे ही चेहरा खराव दीखता है। धुँधलके मे स्पष्ट लिखा हुआ भी अस्पष्ट और अपाठ्य दीखता है। शैने महाशय ने कहा है—

"जो ग्रन्थकारो की धूल उडाते हैं, उनमे अधिकाश लोग मूर्ख और पर-गुण-द्वेषी होते हैं।" पर-गुण-द्वेषी के सिवा पर-निन्दा कौन करेगा? महा-पुरुष जो कहते हैं, वह इस तरह कहते हैं, जिससे किसी के दिल मे चोट न लगे और उन्हे कोई निन्दक न कह सके। दूसरे का दिल दुखाने वाली वात सच भी हो, तो भी न कहनी चाहिये।

कहा है—

परपरिवादः परिषदि न कथञ्चित् पण्डितेन वक्तव्यः ।
सत्यमपि तन्न वाच्यं यदुक्तमसुखावहं भवति ॥

सभा मे बुद्धिमान को पराई निन्दा किसी हालत मे भी न करनी चाहिए। जो बात कहने से दूसरे को बुरी लगे, वह सत्य भी हो, तथापि न कहनी चाहिये।

और भी कहा है—

पर को अवगुन देखिये, अपनो दृष्टि न होय ।
करै उजेरो दीप पै, तरै अँधेरो जोय ॥
दोष भरो न उचारिये, जदपि यथारथ बात ।
कहै अन्ध को आँधरो, मान बुरो सतरात ॥

दियो जनावत नाहिं, गये घर कर सत आदर ।
हित कर साधत मौन, कहत उपकार वचन वर ॥
काहू को दुख होय, कथा वह कबहूँ न भाषत ।
सदा दान सो प्रीति, नीतियुत सम्पत्ति राखत ॥
यह खड्गधार व्रत धार के, जे नर साधत मन वचन ।
तिनको सुनहु यह लोक मे, पूर रह्यो यश ही रचन ॥६४॥

64 To give charity in secret, to honour a guest, to be silent after doing good to others, to speak openly of the good done by others, to be free from vanity inspite of wealth and to speak of others without the use of any bad remarks (are the virtues generally possessed by good men) (I wonder) who has taught these good men to observe such a difficult vow which is as sharp as the edge of a sword

करे श्लाघ्यस्त्याग शिरसि गुरुपादप्रणयिता
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वस्था वृत्ति श्रुतमधिगतैकव्रतफल
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहता मण्डनमिदम् ।।६५।।

बिना ऐश्वर्य के भी महापुरुषो के हाथ दान मे, मस्तक गुरुजनो को सिर झुकाने से, मुख सत्य बोलने से, जय चाहने वाली दोनो भुजाये अतुल पराक्रम से, हृदय शुद्ध वृत्ति से और कान शास्त्रो से शोभा के योग्य होते है ।।६५।।

मनुष्य के और आभूषण धन होने पर होते हैं; पर सत्पुरुषो को निर्धनावस्था मे भी उनके हाथ दान से, मस्तक बडो को दण्डवत-प्रणाम करने से, मुँह सत्य भाषण से, भुजायें पराक्रम मे, हृदय शुद्धता से और कान शास्त्र सुनने से, उनके भूषण होते है। अर्थात् वे धन न होने पर भी, इन उत्तम कामो को करते हैं।

करत करत ते दान, सीस गुरु चरनन राखत ।
मुख सो बोलत साँच, भुजन सो जय अभिलाषत ।।
चित की निर्मल वृत्ति, श्रवण से कथा श्रवणरति ।
निशदिन पर उपकार सहित, सुन्दर जिनकी मति ।।
ते बिना साज सम्पत तऊ, सोहत सकल सिगार तन ।
उनको जु सङ्ग तिन देह प्रभु, तौ यह सुधरे चपल मन ।।६५।।

65 The hands become praiseworthy by charity, the head by bowing down before elders, the mouth by speaking the truth, both the arms by display of valour in battle, the mind by calm thinking and the ears by listening to the teachings of scriptures. The foregoing are the ornaments of those great by nature even without the possession of wealth

सपत्सु महता चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ॥६६॥

सम्पत्ति-काल मे महापुरुषो का चित्त कमल से भी कोमल रहता है और विपद्-काल मे पर्वत की महान शिला की तरह कठोर हो जाता है ॥६६॥

सम्पदावस्था मे मनुष्य जितना ही नम्र रहे, उतना ही अच्छा । इस अवस्था मे नम्रता और सरलता से मनुष्य की शोभा होती है और विपद्-काल मे मनुष्य जितना ही कठोर होता है, जितना ही धैर्यावलम्बन करता है, उतनी ही उसकी बडाई होती है । जो विपद् मे घबराता है, उसको विपद् डराती है । कठोर होने से ही विपद आसानी से कट जाती है । जो विपद् मे पडकर खडा नहीं होता, सब कुछ सहने को तैयार नही होता, मोह से खाली रोता है, उसको रोना ही पडता है । उपाय करने और विषाद त्यागने के सिवा विपद् की और दवा नही । महापुरुष सम्पद और विपद् दोनो अवस्थाओ को चिरस्थायी नही समझते, उन्हे गाडी के पहियो की तरह घूमती हुई समझते हैं, इसलिए वे सम्पद मे न तो फूलते हैं और न इतराते हैं और विपद् मे न रोते हैं न घबराते हैं । जो नम्र और सरल होते हैं, वे आपद् में विकार-ग्रस्त नही होते ।

सत्पुरुषन की रीति, सम्पत मे कोमलहि मन ।
दुखहू मे यह नीति, वज्र समानहि होत तन ॥६६॥

66. In prosperity the heart of the great becomes gentle like a lotus-flower, while in calamity, it is hardened like the rock of a great mountain

सतप्तायसि सस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थित राजते ।

स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतित तन्मौक्तिक जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणा ससर्गतो देहिनाम् ॥६७॥

गरम लोहे पर जल की बूँद पडने से उसका नाम भी नही रहता, वही जल की बूँद कमल के पत्ते पर पडने से मोती-सी हो जाती है, और वही जल की बूँद स्वाति-नक्षत्र मे समुद्र की सीप मे पडने से सच्चा मोती हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि ससार मे अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्राय ससर्ग से ही होते हैं ॥६७॥

निस्सन्देह अधम, मध्यम और उत्तम गुण मनुष्य मे प्राय ससर्ग या सुहबत से ही होते हैं। यदि ससर्ग अधम होता है, मनुष्य अधम हो जाता है, और यदि ससर्ग उत्तम होता है, तो मनुष्य उत्तम हो जाता है।

तवे बुन्द ह्वै छीन, कमल पत्र जे सरस है।
मुक्ता सीपहि कीन, यान मान अपमान है ॥६७॥

67 No trace is left of a drop of rain fallen on red hot iron The same drop fallen on a lotus-leaf (in the shape of dew) looks beautiful like a pearl. (Again the same is transformed into a genuine pearl when it falls into a sea-shell at the time of Swati (nakshatra) Generally the evil, ordinary or good qualities of men are acquired in accordance with the kind of society they keep



यः प्रीणयेत्सुचरितै. पितरं स पुत्रो
यद्भर्त्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रिय यद्-
एतत्त्रय जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

अपने उत्तम चरित्र से पिता को प्रसन्न रखे वही पुत्र है, अपने पति का सदा-सर्वदा भला चाहे, वही स्त्री है और जो सम्पद और विपद्—दोनो अवस्थाओ मे एक-सा रहे वही मित्र है। जगत मे ये तीनो भाग्यवानो को ही मिलते है।।६८।।

यो तो पुत्र प्राय सभी के होते हैं, पर जो पुत्र सदाचारी है, अच्छे चाल-चलन वाला है, कुकर्मो से बचने वाला है, पिता-माता की सेवा करनेवाला और उनकी आज्ञा मे रहनेवाला है, वही पुत्र है। वैसे ही पुत्र के माता-पिता पुत्रवान है। असदाचारी—बुरे चाल-चलन वाला, माता-पिता की बात न सहनेवाला, उनकी आज्ञा न पालन करनेवाला और अपने कुकर्म से कुल मे दाग लगानेवाला पुत्र, पुत्र नही—शत्रु है।

प्राय सभी लोगो के भार्य्यायें होती हैं, पर वास्तविक स्त्री वही हैं, जो पतिव्रता और पति-परायणा है तथा पति के अनुकूल चलनेवाली, छाया की तरह उसके साथ रहनेवाली और पति के दु ख मे दु खी और पति के सुख मे सुखी रहनेवाली है एव हर क्षण पति की शुभ-चिन्तना करने वाली है। जो स्त्री व्यभिचारिणी, कुलटा या असती है, जो हरदम कलह करने वाली और क्रोधमुखी है, जो पति को कष्ट देती, उसकी इच्छानुसार नही चलती, और उसकी अशुभ-चिन्तना करती है, वह स्त्री, स्त्री नही, वह तो पति की शत्रु अथवा साक्षात् मृत्यु है।

मित्र भी बहुत लोगो के होते हैं। जिसके पास दो पैसे होते हैं, उसके अनेक खुशामदी मित्र बन बैठते हैं। जब तक पैसा देखते हैं, मौज उडाने के सामान देखते हैं, खूब गुलछर्रे उडते है, तब तक वे मित्र बने रहते हैं, लेकिन ज्यो ही पैसो का अभाव या दरिद्र देखते हैं, कि आजकल के मित्र नौ दो ग्यारह होते हैं। जो ऐसों को मित्र समझते है, वे बडी गलती करते और धोखा खाते हैं। इन लोगो को स्वार्थी या मतलबी कहना चाहिये। मित्र तो वही होता है, जो सुदिन और-दुर्दिन—अच्छे दिन और बुरे दिन—सम्पद और विपद्—दोनो मे ही एक-सा रहता है, अथवा विपद् मे स्नेह की मात्रा और

भी बढा देता है। ऐसा मित्र न हमे मिला और न हमने किसी और के ही देखा। हाँ, मतलबी यार हमे भी बहुत मिले और अन्य लोगो को भी। बनी मे साथ रहने वाले और बिगडी मे अलग हो जाने वाले नीच हमने बहुत देखे है। कहा है—

प्रारम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मजरी-
पुञ्जे मञ्जुलगुञ्जितानि रचयस्तानातनोरुत्सवान् ।
तस्मिन्नद्य रसालशाखिनि दशा दैवात् कृशामाञ्जति
त्वञ्चेन्मुञ्चसि चञ्चरीक विनय नीचस्त्वदन्योऽस्तिकः।।

हे चञ्चरीक! वसन्त के आते ही चारो ओर से फूली हुई आम की मजरियो के पुञ्ज मे मजु-मजु गुञ्जार करते हुए तूने खूब सुख पाया। अब दैवयोग से आमो के पुष्पहीन होने पर, तू यदि उससे पहला-सा स्नेह न रखेगा, तो तुझसे बढकर और नीच कौन है ?

जिनका स्वभाव ही नीच है, वे इन बातो को नही समझते, उन्हे किसी के भले-बुरे कहने की परवा नही। अगर वे इतना ही समझे, मित्रो को मुसीबत मे न त्यागें, तो वे सज्जन ही कहलायें। पर ऐसे सज्जन विरले ही होते है। महात्मा स्टील ने कहा है—

"Men of courage, men of sense and men of letters are frequent, but a true gentleman is what one seldom sees"

साहसी, बुद्धिमान और विद्वान लोग बहुत मिलते हैं, किन्तु जिसे सच्चा सत्पुरुष कहते हैं, वह कभी ही दृष्टिगोचर होता है। साधु पुरुष और चन्दन सर्वत्र नही होते। तात्पर्य यह कि जिन्हे सच्चे मित्र कहते हैं, वे किसी ही पुण्य-वान को मिलते हैं। मित्रता का नाम भर रह गया है, अब सच्ची मित्रता कहाँ है ? किसी उर्दू कवि ने ठीक कहा है—

मिट गये जौहर वफा के, उठ गये सब अहले दिल।
अब वफा है नाम को और बावफा कहने को है।।

सहृदय उठ गये और सहृदयता भी उन्ही के साथ चली गई। अब तो वफा और बावफा केवल शब्दो मे रह गये।

सुत सचरित तिय हितकरन, सुख-दुख मित्र समान।
मनरञ्जन तीनो मिले, पूरव पुण्यहि जान॥६८॥

68 He makes a good son who pleases his father by his good character She is a good wife who desires only for the welfare of her husband, He is a good friend who remains equal in distress as well as in happiness These three are obtained in this world by those only who have done pious deeds (in their previous birth)



एको देव केशवो वा शिवो वा
एक मित्र भूपतिर्वा यतिर्वा ।
एको वास पत्तने वा वने वा
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

एक देवता की आराधना करनी चाहिये—केशव की या शिव की, एक ही मित्र करना चाहिये—राजा हो या तपस्वी, एक ही जगह बसना चाहिये—नगर मे या वन मे, और एक से ही विलास करना चाहिये—सुन्दरी नारी से या कन्दरा से ॥६९॥

इसका खुलासा यह है—मनुष्य को या तो ससार मे रहकर भोग भोगने चाहिये अथवा ससार को परित्याग करके वन मे जा बसना चाहिये। यदि मनुष्य ससार मे रहे तो उसे कृष्ण भगवान की भक्ति करनी चाहिये, किसी राजा से मैत्री करनी चाहिये, नगर मे वसना चाहिये और किसी सुन्दरी नारी का पाणिग्रहण कर उससे विलास करना चाहिये। अगर मनुष्य ससार की असारता से विरक्त होकर वन मे रहे, तो उसे शिवजी की भक्ति और आराधना

करनी चाहिये, किसी तपस्वी से मैत्री करनी चाहिये, वन मे रहना चाहिये और कन्दरा—गुफा मे विलास करना चाहिये।

अत्यागी और त्यागी—गृहस्थ और सन्यासी दोनो के लिये योगिराज ने क्या ही उत्तम उपदेश दिया है! ससार मे रहनेवाले गृहस्थ के लिये कृपा की भक्ति, राजा की मैत्री, नगर का निवास और सुन्दरी नारी से विलास—चारो ही बातें बड़ी उत्तम है। इस तरह करने से अत्यागी—गृहस्थ को तीनो लोको मे सुख होता है। भगवान कृष्ण की अनन्य भक्ति करने से मनुष्य के सारे मनोरथ पूरे होते हैं, कोई आपदा पास नही आती और यदि आती भी है, तो भगवान की कृपा से हवा से बादलो की तरह उड जाती है। लाख-लाख दुर्जन शत्रु मिलकर भी, कृष्ण के प्यारे का बाल भी बाँका नही कर सकते। कृष्ण की कृपा होने से लक्ष्मी की कृपा होती है। पति जिसे चाहता है, स्त्री भी उसे प्यार करती है। भगवान कृष्ण की भक्ति का फल, इस कलिकाल मे भी, हाथो-हाथ मिलता है, इसमे जरा भी सन्देह नही। इन पक्तियो के लेखक ने इसका स्वय अनुभव किया है। बहुत से लोग कहा करते है कि गृहस्थी के जजाल मे भगवान की भक्ति हो ही नही सकती। जो ऐसा कहते है, गलती करते हैं। मनुष्य गृहस्थी मे रहकर भी परमात्मा की भक्ति कर सकता है। मनुष्य को चाहिये, वाणिज्य-व्यवसाय, नौकरी-चाकरी आदि ससारी काम करता रहे, पर मन को प्यारे कृष्ण मे रखे। इस तरह, शरीर से जगत के काम-धन्धे करने और मन को परमात्मा मे रखने से मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारो पदार्थों की प्राप्ति होती है। माया मे फँसा हुआ चञ्चल मन मुकुन्द के चरण-कमलो मे कैसे लग सकता है? स्वामी रामकृष्ण परमहस कहते हैं—व्यभिचारिणी स्त्री घर के सभी काम-काज करती रहती है, पर उसका मन हर क्षण अपने यार मे रहता है। गाय जगह-जगह घास चरती फिरती है, पर मन को अपने बच्चे मे रखती है। स्त्रियाँ धान या बाजरा वगैर ओखली मे डालकर कूटा करती है, उस समय एक हाथ से मूसल चलाती हैं और दूसरे से धान को ठीक करती जाती हैं। अगर उस उस समय घर का कोई आदमी या पडोसिन आ जाती है, तो वे धान भी कूटती जाती हैं और बातें

भी करती रहती हैं। अगर उस समय बालक रोने लगता है, तो उसे दूध भी पिलाती जाती हैं, पर उनका ध्यान मूसल ही मे रहता है। अगर बातो मे उनका ध्यान जरा भी मूसल से हट जाय, तो उनके हाथ के पलस्तर उड जाँय, फौरन मूसल उनके हाथ पर ही पडे।" स्त्रियाँ पानी की तीन-तीन मटकी सिर पर धरकर, अपनी साथिनों के साथ इठलाती और बातें करती राह मे चलती हैं। अगर राह मे किसी कुलटा का यार मिल जाता है, तो वह सिर पर घडे को रखे हुए ही, हँस-हँसकर और मटक-मटककर खूब बातें करती हैं, पर उनके घडे का पानी उछलकर उनके कपडे नहीं भिगोता—इसका क्या कारण है? कारण यही है कि वह हँसती-मटकती और बातें अवश्य करती हैं, पर उनका मन अपने सिर पर रखे हुए घडे से जरा भी नही हटता। बस, इसी तरह संसारी काम करता हुआ भी मनुष्य भगवान की सच्ची भक्ति कर सकता है। स्त्री रखने, बाल-बच्चो का पालन-पोषण करने और अन्याय सुकर्म करने से इष्टसिद्धि मे जरा भी गडबड नही होती।

पितरो के पिण्डदान की व्यवस्था के लिये पुरुप को सुन्दरी स्त्री से विवाह करके सन्तान पैदा करनी चाहिये। सुन्दरी स्त्री के साथ शादी करने की बात इसलिये लिखी गई है कि स्त्री के सुन्दर होने से पराई स्त्री पर मन नही जाता और सन्तान भी स्वरूपवान होती है। नगर मे रहने की बात इसलिये लिखी है कि गृहस्थ को चिकित्सक, साहूकार, कर्म-काण्डी ब्राह्मण और खाद्य-सामग्री एव वस्त्र प्रभृति की जरूरत पडती रहती है और ये सब शहर मे आसानी से, जरूरत के समय, मिल जाते हैं। राजा के साथ मैत्री करने की बात इसलिये लिखी है कि राजा के साथ मैत्री रहने से पुरुष को धन-सञ्चय मे सहायता मिलती है, लोगो पर प्रभाव पडता है और सम्मान मिलता है। राज-सम्मान अमृत के समान माना गया है और है भी ठीक। भाग्यवान पुरुष ही राज-सम्मान लाभ करते हैं। कहा है—

अमृत शिशिरे वह्निरमृत प्रियदर्शनम्।
अमृत राजसम्मानममृत क्षीरभोजनम्॥

शीतकाल मे अग्नि अमृत है, प्यारे का दर्शन अमृत है, राजसम्मान अमृत है और खीर का भोजन अमृत है।

अगर मनुष्य के स्त्री न हो, हो भी तो कुलटा तथा कलहकारिणी हो, लक्ष्मी की कृपा न हो राजा मे भी मैत्री न हो, तो उसे भूलकर भी गृहस्थाश्रम मे रहकर अपना दुष्प्राप्य मनुष्य जीवन नष्ट न करना चाहिये। सब आशा-तृष्णा त्यागकर वन मे रहना चाहिये। वन मे अकेले रहने से मनुष्य का मन सब ओर से हटकर प्रभु के पद-पकज मे ही लगेगा, क्योंकि एकान्तवासी को मन के विकृत करने वाले पदार्थ—शिकार, ताश-चौपड आदि खेल, दिन मे सोना, परनिन्दा, स्त्री का सग, मदिरा-पान और नाच-बाजे तथा गाने प्रभृति का ससर्ग ही नही रहता, इससे मन विकृत नही होता। कैसा ही मनुष्य क्यो न हो, उपरोक्त पदार्थ मनुष्य के मन को बिगाडे बिना नही रहते। विकृत मन मे प्यारा बैठ नही सकता। प्यारे के निवास के लिये मन को क्रोध के आठो दोष—दुष्टता, हठकारिता, पर की अनिष्ट-चिन्ता और अनाचरण, पराये गुण देखकर जलना और सह न सकना, पराये गुणो मे दोष ढूंढना, जो देना है उसे न देना और दी हुई चीज को हजम कर जाना, कठोर वचन बोलना और निर्दयता से काम करना—इनसे मन को साफ रखना चाहिये। शुद्ध और पवित्र मन मे ही प्यारा बैठता है। जिनसे इस तरह मन शुद्ध न किया जा सके, उनका वन मे जाना भी वृथा ही है। वन मे रहकर तपस्वियो से मैत्री करनी चाहिये, ससारी लोगो का ससर्ग सदा त्यागना चाहिये। गुफा मे बैठकर आनन्दपूर्वक 'शंकर-शंकर' भजना चाहिये। इस तरह करने से मनुष्य को इस जन्म मे सच्चा सुख और शान्ति मिलती है और मरने पर स्वर्ग या मोक्ष-पद की प्राप्ति होती है।

का न घाट का' यह कहावत चरितार्थ होती है।

गोस्वामीजी ने कहा है —

> कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
> तुलसी दो महँ एक अब, खेल छाड़ि छल खेल॥

सेवहु केशव देव को, कै शिव की कर सेव।
मित्र एक कर नृपति को, कै जोगेश्वर देव॥
कै जोगेश्वर देव, दहुन मे एक हितू करि।
करिये नगर निवास, किधौ वनवास करहु ढरि॥
पुत्रवती तिय संग, अंग अगन मेटे वहु।
करि गिरिगुहा प्रसंग, प्रीति सा नितप्रति सेवहु॥६९॥

69 (One ought to worship) only one god, either Vishnu or Shiva. (There should be only) one friend, either a king or a recluse (There should be) one residence, either in a town or in a forest (There should be) singlel beautiful wife or (else one should have resort to) a (hidden) cave



नम्रत्वेनोन्नमन्त परगुणकथनै स्वान्गुणान्ख्यापयन्त
स्वार्थान्सम्पादयन्तो विततप्रियतरारम्भयत्ना पदार्थे।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्त,
सन्त साश्चर्यचर्या जगति बहुनता कस्य नार्थ्यनीया॥७०॥

नम्रता से ऊँचे होते हैं, पराये गुणो का कीर्तन करके अपने गुणो को प्रसिद्ध कर लेते हैं—पराया भला करने मे दिल से लगाकर अपना मतलब भी बना लेते हैं और निन्दा करने वाले दुष्टो को अपनी

क्षमाशीलता से ही कलंकित या लज्जित करते हैं—ऐसे आश्चर्यकारक आचरण से सभी के लिये माननीय सन्त पुरुष संसार में किसके पूजनीय नहीं हैं ॥७०॥

सज्जन सबसे नम्रता का व्यवहार करते हैं, किसी से भी ऐंठकर बात नहीं करते, अपने तईं सब से नीचा समझते हैं और अपनी नम्रता से ही ऊँचे होते हैं, यानी किसी को भी अपने से कम नहीं समझते, सब को अपने से ऊँचा और अपने तईं सब से नीचा समझते हैं, अदना-से-अदना आदमी से विनीत व्यवहार करते हैं। उनके इस व्यवहार से प्रत्येक मनुष्य की आत्मा सन्तुष्ट हो जाती है; प्रत्येक मनुष्य उनका सम्मान करने लगता है और उन्हें अपने से ऊँचा समझता है, क्योंकि वास्तविक महापुरुषों में ही नम्रता होती है, जो ओछे और थोथे होते हैं, उनमें ही अभिमान की मात्रा हद से ज्यादा होती है*। नीच लोग अभिमान-भरी बातें कहकर, अपनी शान और रोब दिखाकर, ऊँचा होना चाहते हैं, पर वे लोगों की नजरों से उलटे गिर ही जाते हैं। पहले भी जितने बड़े लोग हुए हैं, वे सभी निरभिमानी, पहले सिरे के नम्र, विनयी और मधुरभाषी हुए हैं। जो अपने तईं ऊँचा बनाना चाहे, उन्हें नम्र होना ही चाहिये, बिना नीचा हुए कोई ऊँचा हो नहीं सकता।

कविजन कहते हैं—

नर की अरु नल नीर की, गति एकै कर जोय ।
ज्यों-ज्यों नीचो ह्वै चले, त्यों-त्यों ऊँचो होय ॥
उच्च हुयो जो जन चहै, विनय धरे निज सत्य ।
नयो प्रथम ज्यो देशनी, ह्वै करिवप्र समरत्थ ॥

ईसाईयों की बाइबिल में लिखा है—"He that humbles himself shall be exalted" अर्थात् जो अपने तईं नीचा बनावेगा, वह अवश्य ऊँचा होगा।

---

* (a) A little pot becomes soon hot —Dutch,
(b) Empty vessels make the most noise

शेख शादी ने भी कहा है—

बनी आदम सरश्त अज खाक दारन्द ।
अगर खाकी न बाशद आदमी नेस्त ।।
न शायद बनी आदमे पाकजाद ।
के बर सर कुनद किब्र तुन्दी ओ बाद ।।

मनुष्य खाक से बना है। अगर उसमे खाकसारी—नम्रता नहीं है, त वह फिर आदमी नही है। खाक से बनी आदम की औलाद को अभिमा और कठोरता आदि से बचना चाहिये।

सच है मनुष्य मिट्टी से बना है और मिट्टी मे ही मिल जायगा*। इसलिये उसमे मिट्टी की तरह ही नम्रता होनी चाहिये। जिसमें नम्रता नही, वह मनुष्य नही।

दूसरी बात सज्जनो के स्वभाव मे यह होती है, कि वे किसी की भी निन्दा नही करते। जहाँ तक होता है, पराई प्रशसा ही किया करते हैं। जिनके दिल मे ईर्षा-द्वेष होता है, जिनके हृदय अपवित्र होते हैं, उनके हृदयो से ही गन्दी बातें निकला करती हैं। जो सबको ही परमात्मा का रूप समझते है, जो सभी प्राणियो मे परमात्मा को देखते हैं, वे भूलकर भी किसी की निन्दा नहीं कर सकते। वे सभी को अपने से बड़ा समझते हैं। उसकी नजर मे कोई भी उनसे छोटा नहीं। उनकी ऐसी समझ है तभी तो वे किसी से शत्रुता और द्वेषभाव नही रखते। कहा है—

कैसा मोमिन कैसा काफिर, कौन है सूफी कैसा रिन्द।
सारे बशर हैं बन्दे हक के, सारे शर के झगडे हैं।।

और भी—

ऐ जौक, किसको चश्मे हिकारत से देखिये।
सब हमसे हैं जियादा, कोई हममे कम नहीं।।

---

*Dust thou art and unto dust thou shalt return —Bible.

जो सबको बन्दे-खुदा समझते हैं और सभी को अपने से ज्यादा समझते हैं, वे किसी को घृणा की दृष्टि से नही देख सकते*। उनके मुँह से पराई प्रशसा छोड निन्दा निकल ही नही सकती। पर यह काम है कठिन। किसी लेखक की नुक्ताचीनी या कडी समालोचना करना आसान है, परन्तु उसकी प्रशसा करना कठिन है। निस्सन्देह पराये अवगुणो को छिपाना और गुणो का बखान करना कठिन है, पर सज्जनो मे यह गुण स्वभाव से ही होता है। जो ऐसा करते हैं, उनका कोई भी शत्रु हो नही सकता, सभी उसके मित्र हो जाते है और उन्ही के द्वारा उनके गुणो की प्रसिद्धि हो जाती है।

तीसरा गुण सज्जनो मे यह होता है कि वे सदा परोपकार मे दत्तचित्त रहते है। जो सदा पराई भलाई मे लगा रहेगा, उसका कोई काम बिना बने रह नही सकता।

चौथा गुण सज्जनो मे यह होता है कि वे अपने निन्दको की बातो का बुरा नही मानते। वे आम के वृक्ष की तरह होते हैं कि लोग उसे पत्थर मारते है और वह फल देता है। जो लोग उनकी निन्दा करते हैं, वे उन्ही की प्रशसा करते हैं। उसका खयाल है—

जुबाँ खोलेंगे मुझ पर बदजुबाँ बदशआरी से।
कि मैंने खाक भर दी है उनके मुँह मे खाकसारी से।
तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ जौक !
है बुरा वही कि जो तुझ को बुरा जानता है॥

बुरे आदमी अपनी बुराई के कारण मेरी निन्दा नही कर सकते, क्योकि मैंने अपनी नम्रता से उनके मुँह मे खाक भर दी है।

ऐ जौक ! तू भला है, तो निन्दको के कहने से बुरा हो नही सकता। वही बुरा है, जो तुझे बुरा समझता है।

'गुलिस्ताँ' ने लिखा है—"द्वेषी मनुष्य ही निरपराध मनुष्यो से शत्रुता रखता है। मैंने एक मूर्ख को एक प्रतिष्ठित पुरुष का अपमान करते देखा। मैंने

*A true man hates no one —Napoleon

उनने कहा—'महाशय ! अगर आप भाग्यहीन है, तो इसमे भाग्यवानो का क्या दोष ?' जो तुमको देखकर जले, तुम उनका बुरा मत चीतो, क्योंकि वह अभागा स्वय आफत मे फँसा हुआ है *। जिसके पीछे ऐसा शत्रु (दूसरे को देखकर कुढना) लग रहा है, उसके साथ शत्रुता करने की क्या आवश्यकता ? बुद्धिमान दुष्टो की बातो का बुरा नही मानते। दुष्टो का स्वभाव ही है कि जब वे गुणो में दूसरो की बराबरी नही कर सकते, तब अपनी दुष्टता के कारण उनमे दोष लगाने लगते हैं।"

सज्जन पुरुष नीचो की बातो की परवा नहीं करते। वे अपनी नम्रता और क्षमाशीलता से ही उनके मुँह बन्द कर देते हैं। बुराई करते-करते जब दुष्ट थक जाते हैं, तब आप ही लज्जित होकर बुराई करना छोड देते हैं।

क्षमा खड्ग लीने रहे, खल की कहा बसाय।
अग्नि परी तृण रहित थल, आपहि तै बुझ जाय ॥

नम्रता से ऊँचा होना, पराया गुण-गान करके अपनी प्रसिद्धि करना, पराया भला करते हुए अपना भी स्वार्थ सिद्ध कर लेना और निन्दको को अपनी क्षमाशीलता से लज्जित करना—ये चारो ही गुण अनुकरणीय हैं। जिनमे ये चारो गुण होते है, निश्चय ही वे सभी के पूजनीय होते है।

नीचे ह्वै के चलत, होत सबसे ऊँचे अति।
परगुण कीरति करन, आप गुण ढाँकन यह मति ॥
आपन अरथ विचार, करत निशिदिन परमारथ।
दुष्ट वचन नहि कहत, क्षमा कर साधत स्वारथ ॥
नित रहत एक रस सबन सो, वचन कोप करि कहत नहि।
ऐसे जु सन्त या जगत मे, बन्दित सब के सहजहि ॥७०॥

---

* "Envy if surrounded on all sides by the brightness of another's prosperity, like the scorpion confined with a circle of fire, will sting itself to death"—Colton



जैसे सफल वृक्ष और जलपूर्ण मेघ पृथ्वी की ओर झुक जाते हैं, वैसे ही सत्पुरुष सम्पत्ति पाकर नम्र हो जाते हैं।

70 They display their greatness by their humility and their personal good qualities by speaking well of others In the acuirement of their own objects, they ceaselessly make even greater efforts for the benefit of others and put to shame by their pardoning (habits) the evil men whose mouths are polluted by (uttering) harsh words of attack Who will not honour the holy men with such a wonderful conduct and worthy of being respected by the whole world ?



परोपकारियों की प्रशंसा



भवन्ति नम्रास्तरव फलोद्गमै-
नवाम्बुभिर्भूरि विलम्बिनो घना ।
अनुद्धता सत्पुरुषा समृद्धिभि
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।७१।।

जैसे वृक्ष फल लगने से नीचे की ओर झुक जाते हैं, वर्षा के जल से भरे हुए नवीन मेघ जमीन की ओर झूमने लगते हैं; वैसे ही सत्पुरुष भी सम्पत्ति पाकर उद्धत नही होते, वल्कि नम्र हो जाते है। इससे प्रत्यक्ष है कि परोपकारी मनुष्यो का स्वभाव ही ऐसा होता है ।।७१।।

सज्जन पुरुष सम्पत्तिवान होकर नम्रता धारण करते है, किन्तु दुष्ट लोग धन-सम्पत्ति पाकर इतरा उठते हैं* । जो लक्ष्मी सज्जनो को नम्र बना देती है, वही दुष्टो की दुष्टता को और भी बढा देती है । दुष्ट लोग दौलत पाकर और मतवाले हो जाते हैं । ऐसो ही के सम्बन्ध मे किसी उर्दू कवि ने कहा है—

नशा दौलत का बद एतवार को जिस आन चढ़ा ।
सर पै शैतान के एक और ही शैतान-चढ़ा ।।

अनुभव-विहीन और तग-दिल मनुष्य पर जिस समय दौलत का नशा चढ गया, तब तो मानो शैतान के सिर पर एक और शैतान चढ गया।

और भी कहा है—

बन्धु को नाम दुष्टाना कुप्यते को न याचित ।
को न हृष्यति वित्तेन कुकृत्ये को न पण्डितः ।।
दुर्मन्त्रिणा कमुपयान्ति न नीतिदोषा ।
सन्तापयन्ति कमपथ्यभुज न रोगा ।।
क श्रीर्न दर्पयति क न निहन्ति मृत्यु ।
क स्वीकृता न विषया परितापयन्ति ।।

दुर्जन का बन्धु कौन हैं ? मांगने पर किसे क्रोध नही आता ? धन से किसे अभिमान नही होता ? कुकर्म करने में कौन चतुर नही है ?

नीति का दोष किस दुष्ट मन्त्री को नहीं होता ? रोग किस कुपथ्य सेवन करने वाले को दुःख नहीं देते ? लक्ष्मी से किसे घमण्ड नही होता ? मृत्यु किस को नष्ट नही करती ? स्वीकृत विषय किसे सन्ताप नही देते ?

धन-मद सभी को चढता है, दौलत का नशा सभी को आता है, केवल उन सत्पुरुषो को धन का मद नही आता, जिन्होंने ससार का अनुभव प्राप्त किया है और जिन्होने दुनिया की ऊँच-नीच देखी है ।

* A vulgar mind is paoud in prosperity and humble in adversity, a noble mind is humble in prosperity and proud in adversity—Ruckert

कहा है,—

अनित्य यौवन रूप जीवित द्रव्यसचय ।
ऐश्वर्य प्रियसवासो मुह्येत्तत्र न पण्डित ॥
काय सनिहितापाय सम्पद पदमापदाम् ।
समागमा सापगमा सर्वमुत्पादि भगुरम् ॥

यौवन, रूप, जीवन, धन-सञ्चय, ऐश्वर्य और मित्र के साथ रहना,—ये सभी अनित्य हैं, इसी वजह से ज्ञानवान इनमे मोहित नही होते ।

शरीर तो दु खो से भरा है, सम्पत्ति के साथ आपत्ति और सयोग के साथ वियोग है और सारी उत्पत्तिमान वस्तुएँ नाशमान हैं* ।

शङ्कराचार्य-कृत प्रश्नोत्तर-माला मे भी लिखा है —

विद्युच्चल किं धनयौवनायुर्दान पर किञ्च सुपात्रदत्तम् ।

ससार मे बिजली के समान चञ्चल क्या है ? धन, यौवन और आयु । उत्तम दान कौन-सा है ? जो सुपात्र को दिया जाय ।

उस्ताद जौक भी कहते है —

दिखा न जोशो खरोश इतना जोर पर चढ कर ।
गये जहान से दरिया बहुत उतर चढ कर ॥

अपनी उन्नति पर मत इतरा, ससार मे बहुत से दरिया चढ-चढ कर उतर गये ।

जिन्हें ससार की असारता और धन-यौवन की चञ्चलता का ज्ञान है, भला वे धन-सम्पत्ति पाकर इतरा सकते हैं ? कमल निर्मल जल मे पैदा होता है । उसकी मधुरता स्त्रियो के मुख की मिठास से बढी-चढी होती है । सुगन्ध से देवता भी राजी होते हैं । स्वय नारायण के हाथ मे उसका वास है और कामदेव का तो वह सर्वस्व ही है । इतने गुण होने पर भी, कमल तुच्छ भौरे से मुहब्बत रखता है । इससे स्पष्ट है कि बडे लोग धन-वैभव होने पर

*"All things are double, one against another, Good set against evil and life against death"—Ecclus

अपने से छोटो से इतराते नही, क्योकि सब तरह सुखी होने पर भी, उन्हे मौत और मुसीबत का खौफ लगा रहता है*। इसलिये ज्यो-ज्यो प्रभुता बढती जाती है, वे नम्र होते है और परोपकार करते हैं। उस्ताद जौक ने भी कहा है—

हैं बागे जहाँ मे तुझे गर हिम्मते आली ।
कर गरदने तसलीम को खम और जियादा ॥
लेते हैं समर शाख समरवर को झुकाकर ।
झुकते हैं सखी वक्त करम और जियादा ॥

अगर तू साहस रखता है, तो खूब नम्र बन। फलदार वृक्ष को देख लोग फल तोडते समय उसे झुका लेते है और वह फल देता और झुकता है।

नम्र होत फलभार तरु, जल भर नम्र घटासु ।
त्यो सम्पत लहि सत्पुरुष, नवै सुभाव छटासु ॥७१॥

71. The (branchs of) trees hang down when they are full of fruits, the clouds lower (themselves in the sky) when they are full of fresh water (vapour) and good men become gentle-hearted in prosperity. Such is the nature of those that do good to others



श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥७२॥

---

*Even out of a cloudless heaven the flaming thunder-bolt may strike, therefore in the days of joy have a fear of the spiteful neighbourhood of misfortune —Schiller

दयालु पुरुषो के कानो की शोभा शास्त्र सुनने से है, कुण्डल पहनने से नही, उसके हाथो की शोभा दान करने मे है, कगन पहनने से नही, देह की शोभा परोपकार करने से है, चन्दन लगाने से नही ।।७२।।

इसीसे मिलता-जुलता कलाम उस्ताद जौक ने कहा है, पाठक ! उसका भी मजा चखिए—

दिल वह क्या जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल ।
चश्म वह क्या जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं ।।

वह दिल ही नही, जिसे तेरे पाने की इच्छा न हो । वह आँख ही नही, जिसे तेरे दर्शन की लालसा न हो ।

कान वही हैं, जो शास्त्र सुनते हैं, हाथ वही हैं, जो दान करते हैं; देह वही है, जो पराये काम आती है, दिल वही है, जो परमात्मा के पाने की इच्छा रखता है और आँखें वही हैं, जो उसके दर्शनो की लालसा रखती है । अगर शरीर और उसके अवयवो से यह काम नही होते, तो उनका होना न होना बराबर है । मनुष्य और पशुओ मे क्या फर्क है ? मनुष्य और पशुओ मे यही भेद है कि मनुष्य अपने शरीर मे परोपकार और परमात्मा की भक्ति प्रभृति उत्तमोत्तम कार्य कर सकता है और पशु ये सब नही कर सकते । अगर शरीर पराये काम न आया, तो उससे कोई लाभ नही, एक न एक दिन यह पञ्चतत्व मे मिल ही जावेगा । कहा है—

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्ते वर त्यागो विनाशे नियते सति ।।

पण्डितो को चाहिये कि धन और प्राण पराये लिए त्याग दे, क्योकि शरीर का नाश अवश्य होगा । इससे इसका साधुओ के लिए त्याग ही भला है ।

सुमित्रो के लक्षण

अपने मित्र को पाप-कर्मों से बचाना, हितकर्म मे लगाना, उसकी गुप्त बात को छिपाना, उसके गुणो को प्रकाशित करना, दुख मे उसका साथ न छोड़ना और समय पर आर्थिक सहायता करना—ये उत्तम मित्रो के लक्षण है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है—

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी। तिनहि विलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र को दुख रज मेरु समाना ॥
जिनके अस मति सहज न आई। ते शठ हठ कत करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा। गुण प्रगटै अवगुणहि दुरावा ॥
देत लेत मन शङ्क न धरहीं। बल अनुमान सदा हित करहीं।
विपति-काल कर शतगुण नेहा। श्रुति कह सत्य मित्र गुण एहा ॥
आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरे भलाई ॥

आजकल कपटी यार बहुत है। निष्कपट या साफ तबियत के आदमी कोई विरले ही होते हैं। उस्ताद जौक ने कहा है—

देखे आईने बहुत बिन खाक, हैं नासाफ सब।
हैं कहाँ अहले सफा, अहले सफा कहने को है ॥

मित्र को बुरे कामो से रोकना

मित्र का पहला लक्षण है मित्र को पापो या बुरे कामो से रोकना। आजकल बुरे कामो से रोकने वाले तो नजर नही आते, पर बुरे कामो मे फँसाने वाले या कुराह पर ले जाने वाले बहुत है। जिसके पास लोग धन देखते है, उसके चारो ओर छत्ते पर मक्खियो की तरह आ लगते है। उसकी खुशामद करके, उसकी हाँ-मे-हाँ मिलाकर, अपना स्वार्थ-साधन करते है। भीतर से हितकारी और जाहिरा कड़वी कहने वाले कहीं नही देखने। ऐसी बात तो वही

कह सकता है, जिसके दिल मे पाप न हो, जो , शुद्ध-हृदय और निष्कपट हो और जिसे अपना उल्लू सीधा न करना हो। किसी ने, ठीक ही कहा है—

सुलभा पुरुषा राजन् सतत प्रियवादिन ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ ॥

राजन्! सदा मीठी-मीठी बातें बनाने लोग बहुत हैं, पर हितकारी और कडवी कहने और सुनने वाले दुर्लभ हैं।

खुशामदी मित्र

जिनको लोग आजकल मित्र समझते हैं, वे मित्र नही, खुशामदी हैं। पर नीच खुशामदियो की लच्छेदार बातो मे कौन नही फँस जाता? खुशामदियों ने लाखो के घर खाक मे मिला दिये—अनेको की घर-गृहस्थियो का सत्यानाश कर दिया। भोले-भाले नातजुर्बेकार लोग उनकी चिकनी-चुपडी बातो मे फँस जाते और अपना सत्यानाश कर लेते है। अत्यन्त मीठी बातें बनाने वालो को धूर्त्त समझना चाहिये। कहा है—

असती भवति सलज्जा क्षार नीरञ्च शीतल भवति ।
दम्भी भवति विवेकी प्रियवक्ता भवति धूर्त्तजन ॥

असती लज्जावती होती है, खारा पानी शीतल होता है, पाखण्डी ज्ञानी होता है और धूर्त्त प्रियवक्ता होता है।

धूर्त या दगाबाजो की बातें आरम्भ मे बडी प्यारी लगती हैं, परन्तु उनका परिणाम बुरा होता है। सज्जनो की बातें आरम्भ मे कडवी मालूम होती हैं, पर परिणाम मे वे अच्छी प्रमाणित होती हैं। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज अपने 'भामिनी-विलास' में कहते हैं—

अनवरतपरोपकारव्यग्रीभवदमलचेतसा महताम् ।
आपातकाटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव ॥

जिन पुरुषो के अन्त करण शुद्ध होते है, जो निरन्तर परोपकार की चिन्ता मे लगे रहते हैं, उनके वचन आरम्भ मे कडवी दवा की तरह कडवे लगते हैं,

पर शेष मे जिस भाँति कडवी दवा का फल अच्छा होता है, उसी तरह उनकी कडवी बातो का फल भी मगलकारी होता है ।

अँग्रेजी मे एक कहावत है— 'खुशामदी हमारे सबसे बुरे शत्रु है ।" यह कहावत अक्षर-अक्षर सच है । परमात्मा इन काल-भुजङ्गो से बचाये । इनपर किसी ने खूब भजन बनाया है । सुनिये—

देश को किया खराब, खुशामदी लोगो ने ।।टेक।।
महाराज मन्त्रियों से बोले, 'बैंगन' बडा बुरा है ।
मन्त्री बोले, तभी तो इसका 'बेगुन' नाम धरा हैं ।।
दिया क्या खूब जवाब, खुशामदी लोगों ने ।।१।।
महाराज कुछ देर में बोले, 'बैंगन' अति अच्छा है ।
कहा तभी तो इसके सिर पर हरा मुकुट रक्खा है ।।
पलट दी बात शिताब, खुशामदी लोगों ने ।।२।।
स्वामी दिन को रात कहे, तो ये तारे चमका दें ।
स्वामी कहें रात को दिन, तो ये सूरज उगवा दें ।।
किया जाग्रत को ख्वाब, खुशामदी लोगो ने ।।३।।
स्वामी कहें मद्य कैसा है ? कहें 'सुरा' सुखकर है ।
स्वामी पूछें हिंसा जायज ? कहदें जीव अमर है ।।
पढी है खास किताब, खुशामदी लोगो ने ।।४।।
इसलिये सतसगी सज्जन, विचर स्वतत्र रहे हैं ।
भला समझ कर सत्य वचन, ये राधेश्याम कहे हैं ।।
उठा ही दिया हिजाब, खुशामदी लोगों ने ।।५।।

मन की बात किसी से भी मत कहो

हमने खूब देख लिया है कि जिससे अपने मन की गुप्त बात कह कर मनुष्य अपने हृदय का बोझ हलका कर सके, ऐसा आदमी मिलना असम्भव नही तो कठिन जरूर है । हमने स्वय खूब धोखे खायें हैं, बडी-बडी तकलीफें

उठाई है, इसीसे हम अपने प्यारे पाठको को बार-बार सावधान करते है कि अपने मन की गुप्त बात आजकल के मित्र तो क्या—अपने पिता और सगे भाई से भी न कहनी चाहिए। जो आज मित्र बना हुआ है, वह कल निश्चय ही किसी-न-किसी कारण से आपका शत्रु हो जायगा और आपको कष्ट देगा। अपनी गुप्त बात दूसरे को देना और उसका गुलाम होना एक ही बात है। 'गुलिस्तां' मे लिखा है और ठीक ही लिखा है—"वह भेद, जिसे तुम गुप्त रखना चाहते हो, किसी से भी न कहो, चाहे वह तुम्हारा परम विश्वासी ही क्यो न हो। अपनी गुप्त बात को जितनी अच्छी तरह स्वय छिपा सकते हो, दूसरा न छिपा सकेगा। अपनी बात किसी से कहने और उसे दूसरे से कहने की मनाही करने से एकदम चुप रहना भला है। ऐ भले आदमी! पानी को निकास पर ही रोक, जब वह नदी के रूप मे बहने लगेगा, तब तू उसे रोक न सकेगा।" कितनी अच्छी और सच्ची नसीहत है!

विश्वास ही आफतो का मूल है

ससार मे 'विश्वास' ही आफतो की जड है। अगर किसी से मैत्री टूट जाय और शत्रुता हो जाय, इसके बाद वही शत्रु मेल-जोल की बातें करे, तो उससे बातें करो, मिलो-जुलो, पर उसकी प्रत्येक बात को सन्देह की दृष्टि से देखो। मन मे समझो, कि शत्रु अपना कोई मतलब निकालना चाहता है और इसीके लिये धोखा दे रहा है। मित्रो की सच्चाई पर भी विश्वास करना नादानी है, तब शत्रुओ की—खास कर उस शत्रु की, जो मेल मिलाप से फिर मित्र बना लिया गया है, लल्लोचप्पो और मीठी बातो से क्या भली उम्मीद की जा सकती है? कहते हैं—"A reconciled friend is aouble enemy" जो शत्रु मेल-जोल से मित्र बना लिया जाता है, वह दूना शत्रु होता है, यानी वह साधारण शत्रु से कई दर्जे अधिक भयङ्कर होता है। शपथपूर्वक सन्धि करके, इन्द्र ने वृत्रासुर को मार डाला था। विश्वास के सिवा, देवताओ का भी कोई शत्रु नही। विश्वास से ही इन्द्र ने दिति का गर्भ नष्ट कर दिया था।

शास्त्रो मे लिखा है—

> बृहस्पतेरपि प्राज्ञो न विश्वासे व्रजेन्नर. ।
> य इच्छेदात्मनो वृद्धिमायुष्य च सुखानि च ॥
> न विश्वसेद विश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत् ।
> विश्वासाद् भयमुत्पन्न मूलान्यपि निकृन्तति ॥
> न बध्यन्ते ह्यविश्वस्तो दुर्बलोऽपि बलोत्कटै ।
> विश्वस्ताश्चानुबध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलै ॥

यदि बुद्धिमान अपनी आयु–वृद्धि और सुख की इच्छा करता हो, तो वृहस्पति का भी विश्वास न करे।

मनुष्य अविश्वासी का विश्वास न करे और विश्वासी का भी बहुत विश्वास न करे, क्योकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मूल-सहित नष्ट कर देता है।

किसी का भी विश्वास न करने वाले दुवल मनुष्य भी वलवानो के फन्दे मे नही फँसते, किन्तु विश्वास करने वाले वलवान पुरुप भी दुर्बलो के फन्दे मे फँसकर मारे जाते हैं।

> न विश्वसेत्कुमित्रे च सुमित्रे नापि विश्वसेत् ।
> कदाचित्कुपित मित्र सर्व गुह्य प्रकाशयेत् ॥

कुमित्र का विश्वास तो किसी हालत मे भी न करना चाहिये, किन्तु सुमित्र का भी विश्वास न करना चाहिये, क्योकि कदाचित् मित्र रूठ जाय और सारी गुप्त वातो को प्रकाशित कर दे।

मित्र द्रोही को नरक

मित्र के गुप्त भेदो को प्रकाशित करना उसके साथ विश्वासघात करना है। विश्वासघाती और मित्र-द्रोहियो को शास्त्रो मे बडी-बडी सजायें लिखी है। जैसे—

> मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातक ।
> ते नरा नरक यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

मित्र-द्रोही, कृतघ्न—पराया एहसान न मानने वाले और विश्वासघात करने वाले—जब तक सूर्य और चन्द्रमा है, नरक मे पडे रहेगे ।

फ्रेञ्च भाषा मे भी एक कहावत है –"The betrayer is the murderer" अर्थात् दगा से दुश्मन के हवाले करने वाला या भेद खोल देनेवाला हत्यारा होता है । खेद की बात है, इन बातो पर दुष्ट लोग ध्यान नहीं देते । वे तो अपने जरा-से स्वार्थ के लिए घोर-से-घोर अधर्म करने को तैयार हो जाते हैं । उन्हे इस बात की जरा भी परवा नही कि विश्वासघातकता के समान और पाप नही है । शास्त्र मे लिखा है —

अपि ब्रह्मवध प्रायश्चित्तेन शुद्‌ध्यति ।
तदर्हेण विचीर्णेन कथञ्चिद् न सुहृद्द्रुह ॥

मनुष्य ब्रह्महत्या करके उसके योग्य प्रायश्चित्त करने से शुद्ध हो जाता है, पर मित्र-द्रोही शुद्ध नही होता ।

मित्र के अवगुण छिपाना

अब रही मित्र के गुणो को प्रकाशित करने और अवगुणो को छिपाने की बात । यह भी आजकल अधिकाश मित्रो मे नही पाई जाती । आजकल सामने मीठी-मीठी बात कहने वालो और पीठ-पीछे घोर निन्दा करने वालो की अधिकता है । ऐसे मित्रो से सदा बचना चाहिये । चाणक्य ने कहा है —

परोक्षे कार्यहन्तार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृश मित्र विषकुम्भ पयोमुखम् ॥

आँख की ओझल होने पर काम बिगाडने वाले और सामने मीठी-मीठी बातें बनाने वाले मित्र को, मुँह पर दूध और भीतर जहर भरे घडे के समान, त्याग देना चाहिये ।

ससार मे सभी 'विषकुम्भ पयोमुखम्' नही होते । अगर ऐसा हो, तो प्रलय ही हो जाय । अब भी ससार मे सज्जन पुरुष हैं । उन्ही पर यह ससार ठहरा हुआ है । बात इतनी ही है, कि दुर्जन बहुत हैं और सज्जन कहीं-कहीं

हैं। सज्जन अपने मित्र के अवगुणो को छिपाते हैं, इसमे तो कोई बड़ी बात नही। वे दुष्टो—अपने अपकारी शत्रुओ तक वे अवगुणो पर पर्दा डालते हैं। उनके अवगुणो को उसी तरह छिपाते हैं, जिस तरह शून्य स्थानो को मकडी अपने जाल से दबा देती है।

मित्र को समय पर साहाय्य करना

अब रही समय पर सहायता देने की बात। सहायता देना तो बडी दूर की बात है, आजकल के अधिकाश मित्र बिना धन दिये कोरे हाथो भी मित्र का सग नही देते। आप ही जब तक कुछ देते रहेगे या देने का वादा करते रहेगे, लोग आपके मित्र बने रहेगे। जहाँ आपने अपने वादे के अनुसार कुछ न दिया या आपके धन-भण्डार में चूहे दण्ड पेलने लगे, कि मैत्री टूटी। वही मित्र, जो आपकी देहली की धूल चाट जाते हैं, आपके यहाँ दिन-रात पडे रहते हैं, आपके लिये जान और सर्वस्व तक देने की डीग मारते है, आपके धनहीन होते ही आपको फौरन से पहले त्याग देंगे। उनकी मैत्री धन से है, आपसे नहीं। आजकल बिना उपकार प्रीति नही रहती। मेरा यह काम होगा तो यह दूँगा—इस वादे से देवता भी अभीष्ट फल देते हैं। आजकल के मित्र-नामधारी भी ऐसे ही होते हैं। जहाँ भेट-पूजा बन्द हुई कि नाराज हुए। गाय के थनो मे दूध सूख जाने मे बछडा जिस तरह गाय को त्याग देता है, उसी तरह आजकल के मित्र भी धनागमन की राह बन्द होते ही मित्र को त्याग देते हैं। अँगरेजी मे एक कहावत है—

"As long as the pot boils, friendship lasts"

जब तक सैनकी मे भात, तब तक तेरा मेरा साथ।

खलो की मैत्री

दुष्टो की मैत्री मिट्टी के घडे के समान होती है। मिट्टी का घडा सहज ही मे टूट जाता है और फिर नही जुडता। दुष्टो की मैत्री भी सहज मे ही टूट जाती है और फिर नही जुडती। कहा है —

अभ्रच्छाया खलप्रीति सिद्धमन्नञ्च योषित ।
किञ्चित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ।।

बादलों की छाया, दुष्टों की प्रीति, पका हुआ, अन्न, स्त्री, यौवन और धन,—ये थोड़े समय तक ही भोग्य होते हैं।

विपद् में त्यागने वालों की निन्दा

सम्पद में साथ रहने वालों और विपद् में साथ छोड कर भाग जाने वालों की विद्वानों ने बडी निन्दा की है। देखिये, 'भामिनी-विलास' में लिखा है—

आरम्भे कुसुमाकरस्य परितो यस्योल्लसन्मञ्जरी-
पुञ्ज मञ्जुलगुञ्जितानि रचयस्तानातनोरुत्सवान्।
तस्मिन्नद्य रसालशाखिनि दशा दैवात् कृशामञ्चति
त्वञ्चेन्मुञ्चसि चञ्चरीक विनय नीचस्त्वदन्योऽस्तिक ॥

हे भौंरे! वसन्त के आते ही जब आम में मञ्जरियाँ-ही-मञ्जरियाँ खिल उठीं, तब तो तूने उसके चारों ओर मंजु-मंजु गुञ्जार करते हुए खूब मजा लिया। अब दैववशात्, आम के वृक्ष के कृश हो जाने—पुष्पविहीन हो जाने पर, अगर तू उसमें मुहब्बत न रखेगा, तो तुझसे बढकर कौन नीच होगा?

सच्चा मित्र तो वही है, जो बिना किसी स्वार्थ प्रीति रखे, सुदिन और दुर्दिन में समान रहे। सुदिन में चाहे कम प्रीति दिखाये, पर दुर्दिन में तो खूब ही मुहब्बत दिखाये। विपद्काल में मित्र को सहायता दे और उसके कष्ट-निवारणार्थ तन, मन और धन को लगा दे। सम्पद में मित्र बना रहे और आपद् में छोड भागे, वह मित्र नहीं, वह तो धूर्त है। कहा है—

आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।
वृद्धिकाले तु सम्प्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद् भवेत् ॥

आफत पडने पर जो मित्र है वही मित्र है, अच्छे दिनों में तो दुर्जन भी मित्र हो जाते हैं।

मित्र बिना संसार में आनन्द नहीं

मित्र बिना संसार में आनन्द नहीं है। जानसन साहब कहते हैं—
"Life has no pleasure nobler than that of a friend-

ship " जीवन मे मित्रता से बढकर सुख नही है। हमारे यहाँ भी कहा है—

किं चन्दनैः सकर्पूरैस्तुहिनैः किं च शीतलैः।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥
केनामृतमिद सृष्ट मित्रमित्यक्षरद्वयम्।
आपदाञ्च परित्राण शोकसन्तापभेषजम् ॥

चन्दन, कपूर, बर्फ और शीतल पदार्थ से क्या ? वे सब मित्र के शरीर की सोलहवी कला के बराबर भी नही।

अमृत के समान 'मित्र' यह दोनो अक्षर किसने बनाये है, जो आपत्ति मे रक्षा करने वाले और शोक-सन्ताप हरने वाले हैं।

मित्रो के सम्बन्ध मे ससार ऐसी ही बातें कहता है, पर हमको मैत्री का आनन्द मालूम नही। हमने बहुत मित्र बनाये, पर अन्त मे दुख ही पाया। जभी जिस मित्र की इच्छा पूरी नही कर सके, बस कुट्टी हो गई। अथवा मित्रों का काम निकला और वे लम्बे हुए। क्या ऐसो को मित्र कह सकते हैं ? ऐसे मित्र तो शत्रुओ से भी बढकर हैं। ऐसो ही के सम्बन्ध मे गोल्डस्मिथ ने अपने 'हरमिट' मे एडविन के मुँह से जो कहलवाया है, उसका हिन्दी रूप यह है —

'उसी भाँति सांसारिक मैत्री केवल एक कहानी है।
नाम मात्र से अधिक आजकल नहीं किसी ने जानी है ॥
जब तक धन सम्पदा प्रतिष्ठा अथवा यश विख्याति।
तब तक सभी मित्र शुभचिन्तक निजकुल बान्धव ज्ञाति ॥"

बस, बात बढाने से क्या ? हमे ठीक ऐसे ही मित्र अधिक मिले, इस कारण हमे मैत्री से अरुचि हो गई है। फिर भी हमको कहना पडता है कि मेल-जोल से बडे काम निकलते हैं, इसलिये मेल-जोल या मुलाकत हर किसी से पैदा करने मे हानि नही। पर मेल-जोल वालो को मित्र न समझ लेना चाहिये। जिसे मित्र बनाना हो, उसकी खूब पहले परीक्षा कर लेनी

चाहिये। फिर, वह यदि मैत्री के योग्य हो, तो मित्र बनाना चाहिये। नीचे हम अपने अनुभव से मैत्री-सम्बन्धी चन्द हिदायतें लिखते हैं। आशा है, पाठक उनसे लाभान्वित होंगे।

दोस्ती पर चन्द हिदायतें

(१) मित्रता करो, तो उसके साथ करो, जो धन, बल, विद्या, बुद्धि और कुल में तुम्हारे समान हो। मैत्री अपने समान स्वभाव और व्यसन वालों की ही होती है, असमानों की मैत्री तो निश्चय ही बुरी है *।

(२) मित्रता करो, पर किसी का भी विश्वास करके अपना गुप्त भेद न कह दो। अगर ऐसा करोगे, तो जीवन-भर पछताओगे। आज का मित्र कल कट्टर शत्रु हो सकता है।

(३) जो मित्र तुम्हारे शत्रु से मेल रखे, उसे तुम अपना मित्र न समझो, क्योंकि शत्रु का मित्र शत्रु ही होता है।

(४) जिस मित्र से एक बार मैत्री टूट जाय, उसे फिर मित्र न बनाओ। ऐसा करना मृत्यु को न्यौता देना है।

(५) शत्रु कैसी ही मीठी बातें बनाये, पर उसे भूल कर भी मित्र न बनाओ।

(६) अगर तुम्हारा मित्र चुप रहे, तो तुम उसे अपना मित्र मत समझो।

(७) नादान या गुस्ताख अथवा मूर्ख को मित्र मत बनाओ, ऐसे मित्र से समझदार और तमीजदार शत्रु भला।

(८) मित्रता रखना चाहो, तो मित्र की गलतियों पर कम ध्यान दो। मित्रता के मुकाबले में धन को तुच्छ समझो।

(९) इटली वालों में कहावत है, कि एक घण्टे का अण्डा, एक वर्ष की शराब और तीस वर्ष का मित्र सर्वोत्तम होता है। मित्र और शराब पुराने ही अच्छे समझे जाते हैं।

---

* The cultivation of friendship with great is pleasant to the inexperienced, but he who has experienced it dreads it —Hor

(१०) मित्रता निवाहनी हो तो भरसक जरूरत के समय मित्र को धन की सहायता दो, पर उसे वापस लेने की उम्मीद न करो।

(११) जो सबका मित्र हो, उसे अपना मित्र मत समझो। जिसको एक दिल और अनेक दोस्त होंगे, वह तुमसे क्या, किसी से भी दिलचस्पी नही रख सकता। इटली वालो मे एक कहावत है—"जो हर किसी का मित्र है, वह किसी का भी मित्र नही है।"

(१२) मित्र को कभी धोखा न दो, उसके गुप्त भेद प्रकट न करो, चाहे उससे आपकी मैत्री टूट ही क्यो न जाय।

(१३) खुशामदी को भूलकर भी मित्र न समझो, उसे अपना जानी दुश्मन समझो।

(१४) जहाँ तक बन पडे मित्र से आर्थिक सहायता न माँगो। हो सके तो दो भले ही, देने मे ऐब नही।

(१५) जो मित्र तुम्हारे कुछ कहते समय निगाह चुरा जाय, तुम्हारी बात को ध्यान से न सुने और जिस समय दूसरा कोई तुम्हारी प्रशसा करता हो, उस समय मुँह फेर ले, उसे भूलकर भी मित्र न समझो।

(१६) जो मित्र तुम्हारे शत्रु के कामो की तुम्हारे ही सामने तारीफ करे और तुम्हारे अच्छे कामो को भी घृणा की नजर से देखे, उसको भी मित्र न समझो।

(१७) जो मित्र तुम्हारे शत्रु का पक्ष करे, अथवा उससे भी मेल रखना चाहे, उसे अपना मित्र नही, शत्रु समझो। मित्रो के शरीर दो होते हैं, पर जान एक ही होती है। एक जान दो कालिब वाली दोस्ती ही सच्ची दोस्ती है। अगर यह बात न हो, तो दोस्ती नही, ढोग है।

(१८) मित्र के साथ भी लेन-देन साफ रखो। हिसाब की गडबड परिणाम मे खराब होती है और मैत्री को तोड देती है।

(१९) जो शीघ्र ही तुम्हे अपना मित्र या अभिन्न मित्र कह बैठे, उसकी मैत्री का भरोसा न करो। वह मैत्री सदा न रहेगी।

(२०) जो मित्र समय पर काम से तुम्हारी सहायता करे, उसे मित्र समझो, किन्तु जो कोरी हमदर्दी दिखाये और बातें बनाये, उसे मित्र मत समझो।

(२१) जो मनुष्य तुम्हारे मुँह पर किसी खास वजह से तुम्हें खोटी-खरी भी सुना दे, पर तुम्हारे पीठ पीछे और लोगों में तुम्हारी प्रशंसा के पुल बांध दे, उसे अपना मित्र समझो। सामने तारीफ करे और पीछे में निन्दा करे, उसे अपना शत्रु समझो।

(२२) किसी को मित्र बनाने से पहले, जिसे मित्र बनाओ उसके गुण-दोषों की समालोचना करो, उसके गुण-दोषों का विचार करो, उसके आचरण और उसकी संगति का विचार करो और उसके मिजाज और स्वभाव से वाकिफ होओ। इसके बाद सोचो, वह हमारी मैत्री के योग्य है कि नहीं, इससे हमारा क्या लाभ होगा और हमसे इसको क्या लाभ पहुँचेगा। अगर इतनी परीक्षाओं में—कड़ी और सच्ची परीक्षाओं में वह पास हो जाये, तो उसे मित्र बना लो। मित्र की असल परीक्षा तो मुसीबत में ही होती है, फिर भी उपरोक्त परीक्षा किये बिना तो किसी को भी मित्र न बनाओ।

(२३) वफादार नौकर सच्चा मित्र होता है, पर आप शीघ्र ही ऐसा समझकर, अपने नौकर को अपना भेद मत दे दो। ऐसा करना आफत मोल लेना है। ड्राइडन महोदय कहते हैं—He who trusts a secret to his servant makes his own man his master" जो अपने नौकर को अपना भेद देता है, वह अपने ही नौकर को अपना मालिक बनाता है।

(२४) हमारी सारी उम्र के तजुर्बे का निचोड़ तो यही है, कि आप न किसी को दोस्त बनायें और न दुश्मन। जो आपका काम करेंगे, वे बदले में आपसे भी अपना काम बनाने की उम्मीद रखेंगे। यदि समय पर आप उनका काम किसी वजह से न करेंगे या करने में असमर्थ होंगे, तो वे आपके शत्रु हो जायँगे। उस समय आपके दिल में बड़ी वेदना होगी। अगर किसी से दोस्ती न होगी, तो ऐसा अवसर न आयेगा और आप मनोवेदना से बचेंगे।

सत्पुरुष, विना कहे ही, अपने हितकारी आचरण से सारे ससार को आनन्दित करते हैं। कहिये, चन्द्रमा की किसने आराधना की है, जिससे वह अपनी उदार किरणो से कुमुदिनी-कुल को खिलाता है? अर्थात् परोपकार करना सज्जनो का स्वाभाविक गुण है। उनसे कहने-सुनने और अनुनय-विनय करने की दरकार नहीं।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

विना कहेहु सत्पुरुष, पर की पूरें आस।
कौन कहत है सूर को, घर घर करय प्रकास ॥
अति उदारता बडन की, कहँ लो बरने कोय।
चातक जाँचे तनिक धन, बरस भरे घन तोय ॥

शशि कुमुदिनी प्रफुलित करत, कमल विकासत भानु।
बिन माँगे धन देत जल, त्योही सन्त सुजान ॥७४॥

74 The sun opens (the buds of) a lotus flower (without any request being made by the latter), the moon causes the opening of a Kumuda (another species of lotus) flower (unasked) and a cloud gives rain-water (without being requested to do so) (This proves that) the good are anxious to benefit others of their own accord



एके सत्पुरुषा परार्थघटका स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसा परहित स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थक परहित ते के न जानीमहे ॥७५॥

जो लोग अपने स्वार्थ का खयाल न करके पराया भला करते हैं, सचमुच ही सत्पुरुष हैं। जो अपना स्वार्थ न विगडने देकर पराया

भलो करते हैं; यानी अपना और पराया दोनो का हित साधन करते हैं, वे साधारण पुरुष है। जो अपने स्वार्थ के लिये पराया काम विगाडते है, वे मनुष्य-रूप मे राक्षस है। और जो वृथा ही पराई हानि करते हैं, उन्हे क्या कहे, सो हमारी समझ मे नही आता ।।७५।।

जिसका जन्म-स्वभाव जैसा है, वैसा ही रहेगा। सत्पुरुषो का स्वभाव सत्पुरुषो के ही योग्य रहेगा और नीचो का नीचो के योग्य। नीच पराया काम विगाडना ही जानते हैं, बनाना नही। कहा है—

घातयितुमेव नीच परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम् ।
पातयितुमस्ति शक्तिर्वायोर्वृक्ष न चोन्नमितुम् ।।

नीच पराये काम को विगाडना जानता है, पर बनाना नही जानता है वायु वृक्ष को उखाड सकती है, पर जमा नही सकती। चूहा अन्न की पिटारी को गिरा सकता है, पर उठा कर नही रख सकता। विल्ली अगर दूध को पी नही सकती, तो लुढ़का ही देती है। नीचो का स्वभाव ऐसा ही होता है।

सत्पुरुषो के स्वभाव के सम्बन्ध मे किसी कवि ने कहा है—

उत्तम पर-कारज करें, अपनो काज बिसार ।
पूरे अन्न जहान को, ता पति भिक्षाचार ।।

उत्तम पुरुष अपना काम विसार कर, पराया काम करते है। अन्नपूर्णा के पति—शिवाजी भिक्षा माँगते हैं, किन्तु वह सारे ससार को अन्न देकर पालन करती हैं। सत्पुरुष परोपकार मे ही अपनी शोभा समझते हैं।

शिक्षा—जो अपना काम सिद्ध नही करते, पराया काम विगाडते हैं, वे नीचो के भी सरदार हैं, और जो अपना काम बनाने के लिये पराया काम विगाडते हैं, वे नीच हैं। आप इन दोनो की राह पर भूलकर भी न चलें। अगर हो सके, तो अपने स्वार्थ का खयाल भुलाकर पराया भला करे, आपका इस लोक और परलोक दोनो मे भला होगा, आपका नाम सत्पुरुषो की सूची मे लिखा जायगा, स्वर्ग और मोक्ष का द्वार आपको खुला रहेगा। अगर इतनी

हिम्मत न हो, तो आप अपना भी काम बनायें और पराया भी; यह तरीका भी बुरा नही ।

उत्तम नर पर-अरथ करत, स्वारथ को त्यागत ।
मध्यम पर को अर्थ करत, स्वारथ अनुरागत ॥
दुष्ट जीव निज काज करत, पर काज बिगारत ।
वे नहिं जाने जात, रूप चौथो जे धारत ॥
जिनको न होत निज काज कछु, औरन के स्वारत हरत ।
तिनको न दरश क्षण देहु प्रभु, बात सुनत ही चित डरत ॥७५॥

75 On one side are those good men who do good to others even at the sacrifice of thair own objects The ordinary apply their energies for the sake of others, if the objects of the latter are not contrary to theirs Those are the devils of men who destroy other people's objects for the sake of their own. But we do not know (what to say of) those who destroy the gains of others without any cause



क्षीरेणात्मतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिला
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुत ।
गन्तु पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापद
युक्त तेन जलेन शाम्यति सता मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥७६॥

दूध मे जल के मिलते ही दूध ने अपने सारे गुण जल को दे दिये । इसी से दूध को जलते देखकर, जल भी अपना शरीर आग मे होमने लगा । फिर दूध ने अपने मित्र की इस आफत को देखकर स्वय आग मे गिरना चाहा, परन्तु जल के छीटे पडते ही दूध ने

समझा कि मित्र आया, इसलिये वह शान्त हो गया। सत्पुरुषो की मैत्री दध और जल की-सी होती है ॥७६॥

शिक्षा – मैत्री करो तो दूध-पानी की-सी करो।

पानी पय सो मिलत ही, जान्यौ अपनौ मित्त।
आप भयौ फीकौ वहै, जल को कियौ सुचित्त ॥
जल को कियौ सुचित्त, तप्त पय को जब जानी।
तब अपनौ तन वारि, वारि मन प्रीतहि आनी ॥
उछल चल्यौ पय तबै, शान्ति जल छिरकत ठानी।
सत्पुरुषो की प्रीति रीति, ज्यो पय अरु पानी ॥७६॥

76 When water was mixed with (became a friend of) milk, the latter from the start shared all its good qualities with it As soon, as the former saw that (its friend) the milk was going to be heated, it offered its own self to fire (i e, it began to evaporate Seeing the distress (of its friend, water), the milk made up its mind to throw itself into the fire, but afterwards only calmed down when (its friend) water was sprinkled on (reunited to) it. Sueh is the friendship of the good



इत स्वपिति केशव कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिन शिखरिणा गणा शेरते ॥
इतोऽपि वडवानल सह समस्तसंवर्त्तकै-
रहो विततमूर्जित भरसह च सिन्धोर्वपु ॥७७॥

समुद्र मे एक ओर शेषशायी विष्णु सो रहे है, दूसरी ओर उनके शत्रु दानवो का परिवार पडा है। एक ओर इन्द्र के वज्र से भयभीत हुए शरणार्थी मैनाक प्रभृति पर्वत पडे है, और एक तरफ प्रलयाग्नि समेत बडवानल मौजूद है। अहो! समुद्र का शरीर कैसा बलवान और विशाल तथा भार सहने वाला है! उसकी सहन-शीलता और उदारता की बलिहारी है ॥७७॥

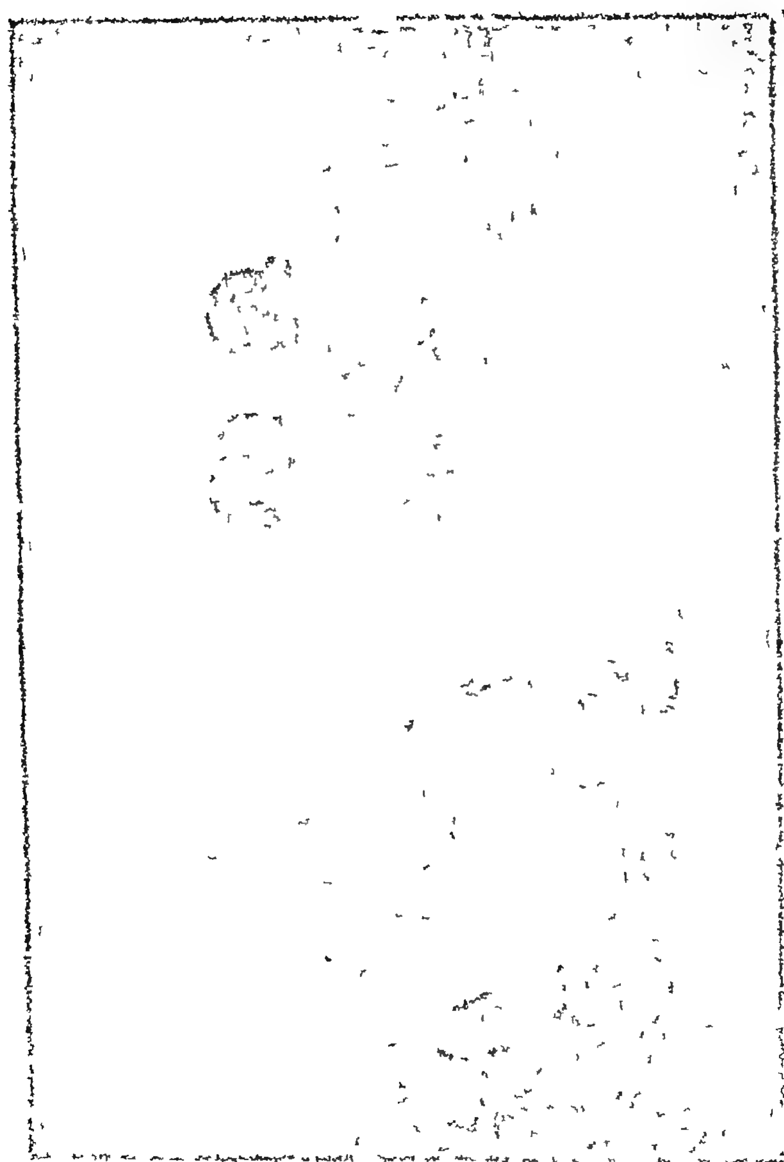
साराश—सत्पुरुष अपनी शरण मे आनेवालो की सदा रक्षा करते हैं। वे आप कष्ट सहते हैं, पर अपने शरणार्थियो को कष्ट नही होने देते। यह बडों की ही सामर्थ्य है। और कौन ऐसा कर सकता है ?

कवियो ने कहा है—

भले बुरे छोटे लडे, रहे बडनि पै आय।
मकर असुर मुर गिरि अनल, दधि मथि सकल बसाय ॥
बडे भार लै निरबहैं, तजत न खेद विचार।
सेस धरा धरि धर धपै, अबलौं देत न डारि ॥
सन्त कष्ट सह आपहीं, सुखि राखें जु समीप।
आप जरे तहँ और को, करै उजेरो दीप ॥

खुद जलकर दूसरो को प्रकाश देने का कैसा आदर्श दीप का है!

इत सोवत श्रीकृष्ण, उतै बैरी दानवगन।
इत को गिरवरवृन्द, शरण सेवत निर्भय मन ॥
इत को वाडव अग्नि, रहत जलमाँहि निरन्तर।
मच्छ-कच्छ इत्यादि, रहत सुख सो सब जलचर ॥
अति ही अगाध ऊँचो अधिक, सहनशीलता की अवधि।
विस्तार अमित कहिये कहा, अद्भुत गति राखत उदधि ॥७७॥



77 In one place (in the ocean) god Vishuu enjoys his sleep while in another there lives the family of his enemies (the Rakshasas). On the one hand, the groups of mountains lie anxious for shelter, and on the other there is the sea-fire along with all the sea-currents How wonderfully powerful and capable of sustaining all these burdens is the ocean !



तृष्णा छिन्धि भजक्षमा जहि मद पापे रतिं मा कृथा,
सत्य ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानय विद्विषोप्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणा-
न्कीर्त्ति पालय दु खिते कुरु दयामेतत्सता लक्षणम् ॥७८॥

तृष्णा को त्याग, क्षमा का सेवन कर, मद को छोड, पापो से प्रीति न कर, सच बोल, साधुओ की रीति पर चल, पण्डितो की सेवा कर, माननीय का मान कर, शत्रुओ को भी प्रसन्न रख, अपने गुणो की प्रसिद्धि कर, अपनी कीर्ति का पालन कर और दीन-दुखियो पर दया रख—क्योकि ये सब सत्पुरुषो के लक्षण हैं ॥७८॥

तृष्णा पिशाचिनी

ससार मे आशा और तृष्णा के समान दु,खदाई और मनुष्य को बन्धन मे बाँधकर इहलोक और परलोक बिगाडने वाले और कुछ भी नही है । जिसको धन-तृष्णा नही, वही सच्चा सुखी है । जिसे धन से नफरत है, वह देवो का देव है* ।

शकराचार्यकृत प्रश्नोत्तर माला मे लिखा है —

*Excellence and greatness of soul are most conspicuously displayed in contempt of riches

हुक्म दिया। नौकर-चाकरों को इनाम बँटने लगा। इतने ही में फिर कोई खबर लेकर आया कि बच्चा और जच्चा दोनों परमधाम को सिधार गये। सुनते ही सेठजी करम ठोकने लगे और ऐसे शोक-सागर में डूबे, कि तनो-बदन का होश न रहा। इसी बीच, किसी ने एकाएक खबर दी कि आपने जो विलायत की लाटरी में चिट्ठी डाली थी, वह चिट्ठी आप ही के नाम उठी है। सुनते ही सेठजी खुश हो गये, सारा रंज-गम और दुःख भूल गये, ताजा हुक्का भरने का हुक्म दिया गया। इतने में एक आदमी ने आकर कहा—'सेठजी, आपका जहाज भूमध्यसागर में, विकट तूफान आने से, डूब गया।' सुनते ही सेठजी को काठ मार गया। हुक्का धरा-का-धरा ही रह गया। अब आपको होश हुआ। आप मन-ही-मन कहने लगे—'उस दिन जो पण्डितजी ने कहा था कि ख्वाहिशों को बढ़ाकर उनके पूरा करने के लिये तृष्णा की तरंगों में पड़ना दुःख का मूल है, वह बात सोलह आने ठीक है।' आपने उसी दिन से तृष्णा-पिशाचिनी त्याग, सन्तोष से मैत्री कर ली। सन्तोष से मैत्री करते करते ही, उन्हें हर ओर सुख-ही-सुख दीखने लगा। न जाने वे दुःख और शोक कहाँ विलाय गये*।

क्षमा प्रभृति पर हम पहले लिख आये हैं, इसीलिये दुबारा लिखना व्यर्थ है।

शत्रु के प्रति दया-प्रकाश

मनुष्य को चाहिये कि प्राणिमात्र पर दया रखे। सबको दान, मान-सम्मान और मीठे वचनों से खुश रखे, यहाँ तक कि शत्रुओं को भी प्रसन्न रखे†। जो अपने शत्रुओं पर भी दया करते हैं, शत्रुओं से भी अपना चित्त शुद्ध रखते हैं, शत्रुओं की भी कल्याण-कामना करते हैं, वे वास्तव में महापुरुष हैं।

---

* "A strom at sea, a vine-wasting hail tempest, a disappointing farm, cause on anxiety to him who is content with enough "—Hor

† "Regard for the wretched is a duty, and deserving of praise even in an enemy —Ovid,"

उपकारिषु यः साधु साधुत्वे तस्य को गुण. ।
अपकारिषु य' साधु स साधु सद्भिरुच्यते ॥

सचमुच ही यह बडा कठिन काम है। कठिन है जिनके लिये कठिन है, महापुरुषो के लिये कठिन नही। उनका तो स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे अपनी बुराई करने वालो के साथ भी भलाई करते है। 'भामिनी-विलास' मे लिखा है—

अयि मलयज महिमाऽय कस्य गिरामस्तु विषयस्ते ।
उद्गिरतो यद्गरल फणिन. पुष्णासि परिमलोद्गारैः ॥

हे चन्दन! तेरी महिमा का बखान कौन कर सकता है? जो सर्प तेरे ऊपर जहर उगलते है, उन्ही को तू अपनी सुगन्ध से पोषता है। तात्पर्य यह, कि सज्जन अपने अपकारी के अपकार को भी उपकार ही समझते और उसका भला करते हैं।

अपनी हानि करने वालो, अपनी निन्दा करने वालो और अपने संग शत्रुभाव रखने वालो पर भी जो मिहरबानी करते हैं, उनकी शुभ कामना करते हैं, उन सत्पुरुषो से कमलापति नारायण प्रसन्न होकर, उनकी इच्छा पूरी करते हैं। ध्रुव के अपनी विमाता की कल्याण-कामना करते ही, भगवान ने उन्हे दर्शन दिये। जब मनुष्य इस दर्जे पर पहुंच जाता है, तब वह परमात्मा के बहुत नजदीक हो जाता है। उस समय उमे कोई अभाव और दु ख नही रहता। राजर्षि भर्तृहरि जी ने यहाँ जो १२ उपदेश दिये हैं, वे मनुष्यमात्र को अपने हृदयपट पर लिख लेने और सदा याद रखने चाहिये, साथ ही इन पर अमल करने का भी अभ्यास करना चाहिये। मनुष्य के कल्याण की इनसे उत्तम और नसीहत हो नहीं सकती। यह उत्तम-से-उत्तम उपदेशो का मक्खन है। आप इन उपदेशो को सुरपति के बगीचे का कल्पवृक्ष समझें। इन पर अमल करने वालो को ससार की सुख-सम्पत्ति, सारी पृथ्वी का राज्य, और स्वर्ग तो क्या चीज है, वह परमपद भी मिल सकता है, जिसके लिये देवता भी तरसते हैं। दु ख और क्लेश, आफत और मुसीबत तो इन उपदेशो पर

चलने वाले के नजदीन स्वप्न में भी आ नहीं सकतीं। मनुष्यो संसार के और झंझटों में न पड़, इन पर चलो। दुनियावी थोथे कामों मे पचना-मरना वृथा आयु खोना है।

तृष्णा को तजि देहु, छमा को भजन करहु नित।
दया हिये में राखि, पाप गों दूर राखि चित॥
सत्य वचन मुख बोल, धर्म-पदवी जिय धारहु।
सत्पुरुषन की सेव, नम्रता अति विस्तारहु॥
सब गुण सु आपने गुप्त रखि, कीरति परपालन करहु।
करि याद दुखित नर देख के, सन्त रीति यह अनुसरहु॥७८॥

78. Abstain from avarice, cultivate gentle habits, give up vanity, do not cherish a desire for sin, speak the truth, follow the path of good men, serve the learned, honour those who are worthy of respect, tolerate even thy enemies, displap thy good qualities take care of reputation and sympathise with the afflicated. These are the attributes of good men.



मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्य
निजहृदि विकसन्तिः सन्ति सन्त कियन्तः॥७९॥

जिनके तन, मन, और वाणी में पुण्य-रूपी अमृत भरा है, जो अपने उपकारों से तीनों लोकों को तृप्त करते हैं, और जो दूसरे के परमाणु-समान गुणों को पर्वत के समान बढ़ाकर अपने हृदय में प्रसन्न होते हैं—ऐसे सत्पुरुष इस जगत में विरले ही है॥७९॥

नीच लोग कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, और मन में कुछ होता है। उनका मन, उनकी वाणी और उनकी क्रिया का एक रूप नहीं होता। परन्तु सत्पुरुषों के जो मन होता है, वही उनकी जुबान से निकलता है और जो कुछ जुबान से निकलता है, उसे ही वे करते हैं। सत्पुरुष अपने तन, मन और वचन से सदा परोपकार में लगे रहते हैं। वे अपना जीवन ही परोपकार के लिये समझते हैं। नीच लोग पराये बड़े-से-बड़े गुण को छोटा कर देते हैं, उसमें अनेक दोष लगा देते हैं; पर सज्जन लोग पराये छोटे-से-छोटे गुण को भी पहाड़ का रूप देकर, अपने मन में बहुत ही खुश होते हैं। क्या यह कठिन, अति कठिन तपस्या नहीं है? क्या ऐसे सत्पुरुष इस जगत में दिखाई देते हैं? धरती-माता ऐसे सत्पुरुषों से नितान्त शून्य तो नहीं है; पर ऐसे पुरुषरत्न कहीं-कहीं ही होते हैं। पृथ्वी के जिस खण्ड की ऐसे महापुरुष शोभा-वृद्धि करते हैं, वह भूखण्ड परम पवित्र तीर्थ और ऐसे सज्जन मनुष्य मात्र के वन्दनीय देवता होते हैं।

कहा है—

> वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः
> करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

जो सदा प्रसन्न रहते हैं, जिनके हृदय में दया है, जुबान में अमृत है और जो परोपकार-परायण हैं, वे किनके वन्दनीय नहीं हैं?

शङ्कराचार्य-कृत 'प्रश्नोत्तरमाला' में लिखा है—

अमृत भरे तन मन वचन, निशिदिन जग-उपकार ।
परगुण मानत मेरु-सम विरले जन संसार ॥७९॥

79. There are certain holy men who are full of the nectar of virtuous deeds in mind, speech and body, who please the three Bhuvanas (worlds) with series of philanthropic actions and who enlarge their hearts by always magnifying into mountains the particles of other people's good qualities.

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कंकोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥८०॥

उस सोने के सुमेरु पर्वत और चाँदी के कैलाश पर्वत से संसार को क्या फायदा, जिनपर पैदा होने वाले वृक्ष जैसे-के-तैसे ही बने रहते हैं । हम तो मलयाचल कोही अच्छा समझते हैं, जिसके संसर्ग से कंकोल, नीम और कुटज प्रभृति के कड़वे वृक्ष भी चन्दन के वृक्ष हो जाते हैं ॥८०॥

खुलासा—सुमेरु और कैलाश पर पैदा होने वाले वृक्ष उनके संसर्ग से सोना-चाँदी के नहीं हो जाते, इसलिए उनसे संसार को कोई लाभ नहीं । उनसे मलय पर्वत अच्छा, जिसके संसर्ग से, वहाँ पैदा होने वाले नीम और कुटज प्रभृति के वृक्ष, कड़वे होने पर भी चन्दन के वृक्ष हो जाते है । बड़ो के संसर्ग से ऐसा ही होता है । कहा है—

महाजनस्य सम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥

महाजनों का संसर्ग किसकी उन्नति नहीं करता ? कमल के पत्ते पर रखा हुआ जल मोती की-सी कान्ति धारण करता है ?

जिससे किसी का भला न हो, उसका होना न होना एक-सा है। अपने लिए तो सभी जीते है। जो पराये लिए जीता है, जिससे दूसरों को फायदा पहुँचता है, उसी का जीना सफल है। जो धनवान होकर दीन-दुखियों का कष्ट-निवारण नहीं करता, उसके धनी होने से क्या लाभ ? एक उपालम्भ (उलाहना) और भी सुनिए—

किं खलु रत्नरेतैः किं पुनरभ्रायितेन वपुषा ते।
सलिलमपि यन्न तावकमर्णव वदनं प्रयाति तृषितानाम्॥

हे सागर ! तेरे अमूल्य रत्नों और मेघ के समान शरीर से क्या लाभ, जो तेरा जल, प्यास से घबराये हुए प्राणियों के मुँह में भी नहीं पड़ता ? अर्थात् अगर किसी सम्पत्तिवान ने किसी प्राणी का उपकार न हुआ, तो उसके सम्पत्तिशाली होने से दुनिया को क्या ?

जिससे संसार का उपकार न हो, वह बड़ा होने पर भी किस काम का ? जिससे दुखियों का दुःख दूर हो, वह छोटा भी अच्छा। 'जेठ की तेज धूप से जलते हुए, प्यास से घबराये हुए बटोही, मेरे सूख जाने पर किसके पास जायँगे,' ऐसी बात कहने वाला, राह-किनारे का थोड़ी सम्पदा वाला सरोवर धन्य है ! अखण्ड जल वाले समुद्र को लाख-लाख धिक्कार हैं, जिससे प्यासों की प्यास भी नहीं बुझती।

लीजिये, उस्ताद जौक का भी एक उपालम्भ सुनिये—

तेराब न हो जिससे, कोई तिशनये मकसूद।
ऐ जौक ! वह आबे बका भी है, तो क्या है॥

जिससे किसी प्यासे की प्यास न बुझे, वह अमृत भी हो तो किस काम का ? उससे दूसरों को क्या लाभ ?

ए रे निलज सुमेर, तो साथी पाथर रहे ।
मलयागिर कहँ हेर, कुटज नीम चन्दन किये ॥८०॥

80. What is the use of the golded (Meru) mountain or the silver (Kailash) mountain on which the growing trees remain the same ordinary trees? We value (above all) the Malaya mountain on which even Kankola. Nimba and Kutaja trees, (having a bitter taste) are transformed into sandal trees.

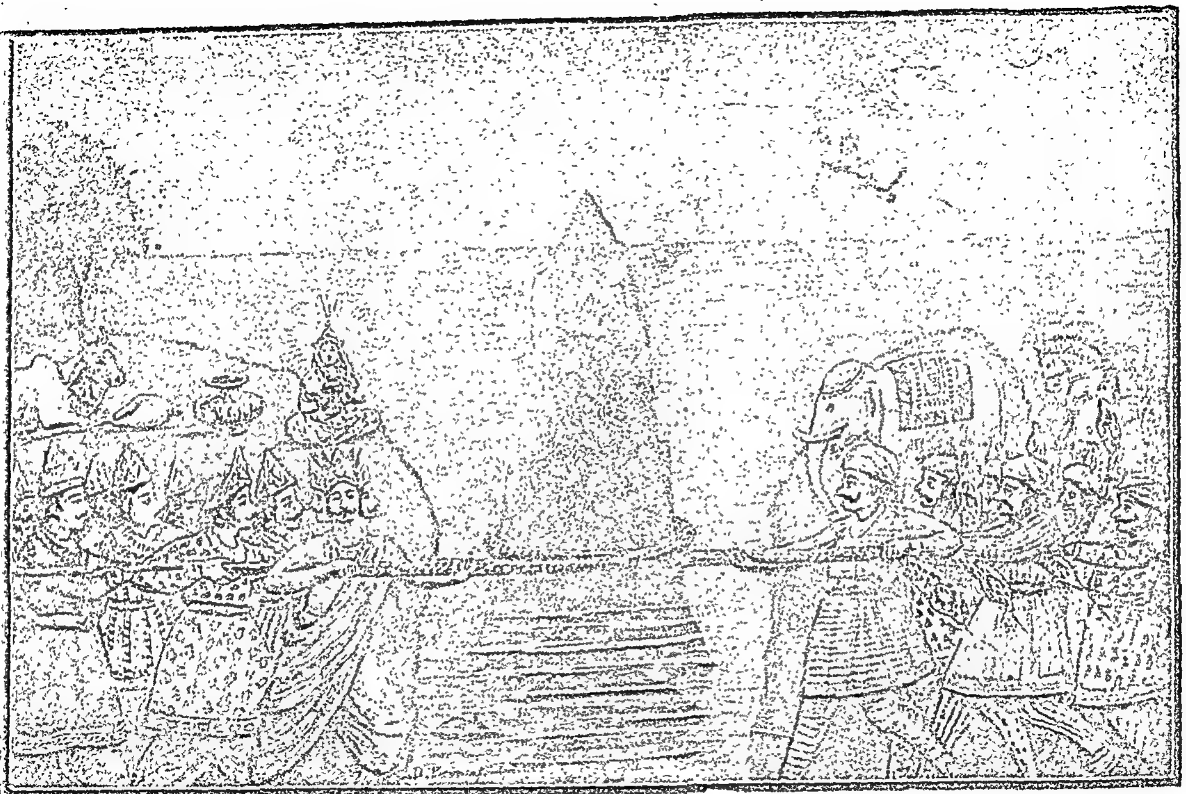


धैर्य-प्रशंसा

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥८१॥

समुद्र मथते समय, देवता नाना प्रकार के अनमोल रत्न पाकर भी सन्तुष्ट न हुए—उन्होंने समुद्र मथना न छोड़ा। भयानक विष से भयभीत होकर भी उन्होंने अपना उद्योग न त्याग। जब तक अमृत न निकल आया, उन्होंने विश्राम न किया—अविरत परिश्रम करते ही रहे। इससे यह सिद्ध होता है कि धीर पुरुष अपने निश्चित अर्थ—इच्छित पदार्थ—को पाये बिना, बीच में घबराकर, अपना काम छोड़ नही बैठते ॥८१॥

निर्बुद्धि पुरुष प्रथम तो विघ्न-भय से किसी काम को आरम्भ ही नहीं करने; यदि कर भी देते है, तो बीच मे विघ्न-बाधा उपस्थित होते ही



भयानक विष निकलने पर भी देवताओं ने समुद्र-मन्थन का कार्य नहीं त्यागा। धीर पुरुष इच्छित पदार्थ पाए बिना घबराकर बीच में कार्य को नहीं छोड़ बैठते।

काम को छोड़ बैठते हैं। पर बुद्धिमान हजार-हजार विघ्न-बाधा उपस्थित होने पर भी, काम को बीच में नहीं छोड़ते। प्राचीन काल में, महात्मा ध्रुव ने परमात्मा के दर्शनों की इच्छा से तपश्चर्या आरम्भ की। वन में उन्हें बहुत से हिंसक पशुओं ने डराया तथा और भी विघ्न उपस्थित हुए, पर वे अपने आसन से जरा भी न डिगे—जब परमात्मा के दर्शन हो गये, तभी उन्होंने अपना काम छोड़ा। ऐसा ही सूर्यकुलतिलक महाराज भगीरथ के साथ हुआ। उन्हें भी इन्द्र ने बहुत डराया-धमकाया, पर वे न डरे, अपना काम करते ही रहे। जब उन्हें गङ्गा के मर्त्यलोक में आने का वर मिल गया, तभी वे तपस्या से विरत हुए। कहा है—

महत्त्वमेतन्महतां नयालङ्कारधारिणं ।
न मुञ्चन्ति यदारब्धं कृच्छ्रेऽपि व्यसनोदये ॥

नीति का भूषण धारण करने वाले महात्माओं का यही महत्त्व है कि वे घोर विपद् पड़ने पर भी, अपने आरम्भ किये काम को छोड़ नहीं बैठते।

महा अमोलक रत्न, नाहिं रीझे सुर तिन सों।
महा हलाहल जान, प्राण डरपत नहिं जिन सों॥
रहत चित्त की वृत्ति, एक अमृत सों अति ही।
तैसे ही नर धीर, काज निहचै कर मति ही॥
सब दोष रहित अरु गुण-सहित, ऐसे कारन मन धरत।
तिहि को सअर्थ अमृत लहत, कोऊ सुख को नहिं करत॥८१॥

81. (While churning the ocean) the gods were not satisfied with (finding) the precious gems (alone) nor were they frightened by the dreadful poison. They did not cease their efforts till they had found the nectar. (This shows that) the persevering never give up the objects which they have set their hearts upon.

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यङ्कशयनं
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्वरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुखं न च सुखम् ॥८२॥

कभी जमीन पर सोते रहते है और कभी उत्तम पलंग पर सोते है; कभी साग-पात खाकर रह जाते है और कभी दाल-भात खाते है; कभी फटी-पुरानी गुदडी पहनते हैं और कभी दिव्य-वस्त्र धारण करते है—कार्यसिद्धि पर कमर कस लेने वाले धीर पुरुप सुख और दुःख दोनों को ही कुछ नही समझते ॥८२॥

जो धीर पुरुप सुख-दु.ख, मान-अपमान और निन्दा-स्तुति की परवा नही करते, केवल कार्य-साधन से मतलव रखते है; जो शरीर का नाश करके भी कार्य सिद्ध करना चाहते है; वे अवश्य ही कठिन-कठिन काम को सिद्ध कर लेते हैं । कार्य-साधन के लिये स्वयं त्रिलोकीनाथ को कभी वामन, कभी शूकर और कभी नृसिंह का रूप धारण करना पडा, तव इतर लोगों की क्या बात है ? कहते है, महावली रावण ने भी अपनी कार्य-सिद्धि के लिये गधे को सिर पर रखा और एक पुष्प कम हो जाने पर, अपना नेत्र ही शिवजी को अर्पण करने के लिये तैयार हो गया । यूरोप-विजयी महावीर नेपोलियन ने अपनी विजय के लिये, अनेक बार दिन-को-दिन और रात को रात नहीं गिना । आँधी, वर्षा और तूफान में घोर कष्ट सहन किये । शेष में, विजय प्राप्त करके ही दम लिया । मनस्वी पुरुषों का ऐसा ही स्वभाव होता है ।

कहा है:—

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः ।
स्वार्थमभ्युद्धरेत्प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥

अपमान को आगे और मान को पीछे रखकर, बुद्धिमान को अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये । अपना काम न वनाना ही मूर्खता है ।

सारांश—धीर पुरुष स्वकार्यसिद्धि के आगे मान-अपमान और दुःख-सुख को कोई चीज नही समझते।

भूमिशयन कहुँ पलंग पै, शाक हार कहुँ मिष्ट।
कहुँ कन्था सिरपाव कहुं, अर्थी सुख दुख इंष्ट ॥८२॥

82. A resolute person, who has made up his mind to do a thing, does not care for hardships or comfort. He sometimes sleeps on (bare) ground an sometimes on a (luxurious) bed. Often he eats vegetables only and when available takes rice for his food. When necessary, he would clothe himself with a single sheet of patched rags and sometimes would put on a valuable dress.



ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्यपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेपामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूपणम् ॥८३॥

ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता, शूरता का भूषण अभिमान-रहित बात कहना, ज्ञान का भूषण शान्ति, शास्त्र देखने का भूषण विनय, धन का भूपण सुपात्र को दान देना, तप का भूपण क्रोध-हीनता, प्रभुता का भूषण क्षमा और धर्म का भषण निश्छलता है। किन्तु अन्य सब गुणों का कारण और सर्वोत्तम भूषण 'शील' है ॥८३॥

शङ्कराचार्यकृत प्रश्नोत्तरमाला मे लिखा है:—

किम्भूषणाद् भूषणमस्ति शीलं
तीर्थम्परं किं स्वमनो विशुद्धम्।

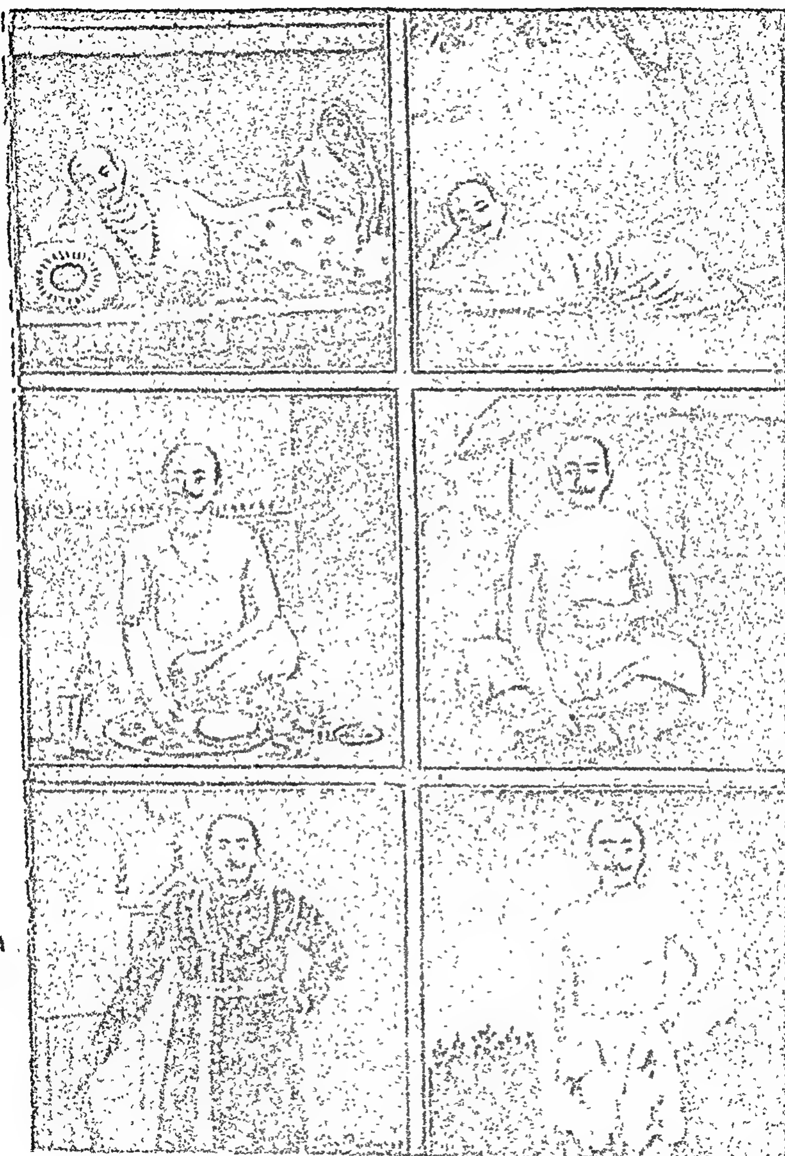
किमत्र हेयं कनकं च कान्ता
श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥

उत्तम-से-उत्तम आभूषण क्या है ? शील । उत्तम-से-उत्तम तीर्थ कौन-सा है ? अपने मन की शुद्धता । इस जगत में त्यागने-योग्य क्या है ? धन और स्त्री । सदा सुनने लायक क्या है ? गुरु और वेद का वाक्य ।

संसार में 'स्वभाव' सबसे ऊपर समझा जाता है । जिसका स्वभाव अच्छा नहीं, वह हजार-हजार गुण होने पर भी निकम्मा है । जिसके स्वभाव में शील है, वह सब गुणियों का सरदार है । शीलवान ही जगत की सम्पत्तियों का स्वामी होता है । कार्य-निपुण पुरुष सम्पत्ति पाता है, पथ्यसेवी मंगल, सुख और निरोगता पाता है, अभ्यासी विद्या की सीमा पा जाता है; पर विनयी (शीलवान) पुरुष धन, धर्म और यश—तीनों को पाता है ।

हमें एक शीलवान की कहानी याद आ गई है । पाठक उसे सुनें । एक गाँव में दो भाई रहते थे । उनमें एक अत्यन्त विद्वान, मधुरभाषी, शान्त और सब की सह लेने वाला था । उस पर कोई क्रोध करता तो वह दब जाता और हमेशा ऐसी जगह बैठता था, जहाँ से उसे कोई न उठा सके । दूसरा भाई एकदम निरक्षर भट्टाचार्य और अत्यन्त कड़वा बोलनेवाला था । अगर उस पर कोई क्रोध करता, तो वह उसका सिर फोड़ने को तैयार हो जाता । विद्वान भाई से गाँव के सब लोग खुश रहते थे । उसके काम के लिए तन-मन से तैयार हो जाते थे । अगर वह किसी से कुछ मदद माँगता, तो लोग फौरन ही उसे मदद देते । किन्तु दूसरे भाई से कोई बात भी नहीं करता था । एक दिन उसने भाई से पूछा—"भाई ! तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी तरकीब है, जिसके कारण तुमसे सब लोग राजी रहते हैं और तुम चाहते हो सो फौरन कर देते हैं । मुझसे तो कोई बात भी नहीं करता ।' उसने कहा—'मेरे पास शील है; तेरे पास वह नहीं है ।' कहा है—

गिरि ते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग ।
अग्नि माँहि जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग ॥



सारांश—यदि इहलोक और परलोक में सुख चाहो, तो शील-व्रत धारण करो। शील सब गुणों का राजा है। शीलवान को जगत मस्तक झुकाता है। शीलवान के लिये अग्नि शीतल हो जाती है, समुद्र में टखनों-टखनों पानी हो जाता है, बड़ा भारी सुमेरु पर्वत जरा-से बालू के दाने के बराबर हो जाता है, सिंह बकरी-सा हो जाता है, जङ्गल शहर हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, त्रिलोकी की सम्पदा चरणों में आप-आप आ जाती है, स्वर्ग उसकी बाट देखता है। बहुत क्या—शीलवान को जगदीश भी मिल जाते हैं। हम तो क्या चीज हैं; शील की महिमा का शायद गणेश और सरस्वती भी कठिनता से बखान कर सकें।

मण्डन है ऐश्वर्य को, सज्जनता सनमान।
वाणी सज्जन शूरता, मण्डन धन को दान॥
मण्डन धन को दान, ज्ञान मण्डन इन्द्रीदम।
तप मण्डन अक्रोध, विनय मण्डन सोहत सम॥
प्रभुता मण्डन छमा, धर्म मण्डन चल खण्डन।
सबहिन में सरदार, शीलता सब को मण्डन॥८३॥

83. Gentlemanliness is the ornament of wealth and power, a softened speech that of bravery, self-control that of knowledge, humility that of a study of the scriptures, appropriate spending that of riches, checking of anger that of penance, mercy that of kings and straight-forwardness that of Dharma. (But) good manners, which are necessary above all, are the best ornament of everything.



निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥८४॥

नीति-निपुण लोग निन्दा करें चाहें स्तुति, लक्ष्मी आये और चाहे चली जाय, प्राण अभी नष्ट हो जाँय और चाहे कल्पान्त में हों—पर धीर पुरुष न्यायमार्ग से जरा भी इधर-उधर नहीं होते ॥८४॥

धीर-वीर पुरुष किसी प्रकार के लालच या भय से अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्ग से जरा भी विचलित नहीं होते; जब कि नीच पुरुष, जरा-सा लालच या भय दिखाने से ही, नीतिमार्ग स फिसल पड़ते हैं। महाराणा प्रताप को अकबर की ओर से अनेक प्रकार के प्रलोभन और भय दिखाये गये, पर वे जरा भी न डिगे—अपने निश्चित किये हुए नीतिमार्ग पर अटल होकर जमे रहे। महात्मा प्रह्लाद को उनके पिता हिरण्यकश्यप ने अनेक तरह के लालच दिये, भय दिखाये और शेष में उन्हें पर्वत-शिखर से समुद्र में गिराया, अग्नि में जलाया; पर वे अपने निश्चित किये नीति या धर्म-मार्ग से जरा भी विचलित न हुए सच्चा मर्द वही है, जो सर्वस्व नष्ट होने या फाँसी चढ़ाये जाने के भय से भी, न्यायमार्ग को न छोड़े। कहा है—

चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः॥

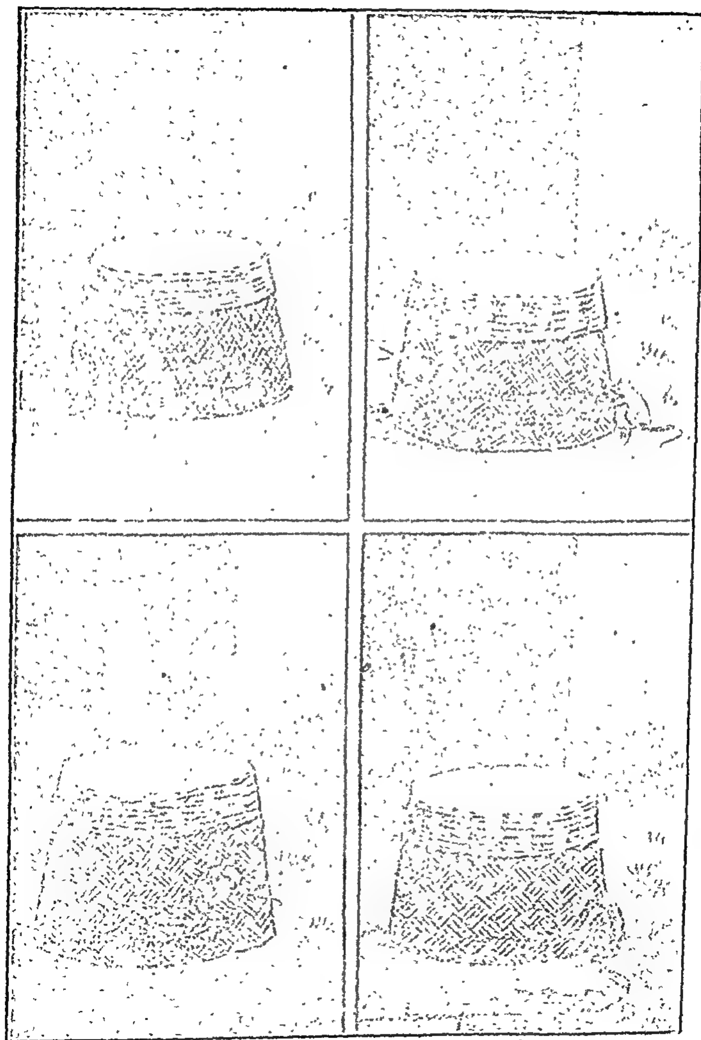
प्रलय काल के पवन से पर्वत चलायमान हो जाते हैं; पर घोर कष्ट पड़ने पर भी, धीर-पुरुषों का निश्चल चित्त चलायमान नहीं होता।

और भी—

अकृत्यं नैव कर्त्तव्यं प्राणात्यागेऽपि संस्थिते।
न च कृत्यं परित्यज्य धर्म एव सनातनः॥

प्राणनाश का समय आने पर भी, न करने योग्य काम को न करना चाहिये और करने योग्य को बिना किये न छोड़ना चाहिये। यही सनातन धर्म है।

चित्र नं० १८



इस चित्र के सर्प को देखने से ज्ञात होता है, कि मनुष्यों की क्षय-वृद्धि दैवाधीन है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा है—

सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मीरुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधाराः ।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो मम तु मतिर्न मनागपैतु धर्मात् ॥

चाहे शीघ्र ही राजलक्ष्मी नष्ट हो जाय, चाहे कृपाणधारा ऊपर से गिरे, चाहे कृतान्त शिरच्छेदन करे; परन्तु मेरा मन धर्म से जरा भी न डिगे।

सारांश—किसी दशा में भी न्यायमार्ग से विचलित न होना चाहिये। वशिष्ठ जी कहते हैं—"विन्ध्याचल पर्वत भी हवा या प्रलयाग्नि से विदीर्ण हो जाता है; पर बुद्धिमान शास्त्रानुमोदित मार्ग को नहीं त्यागते।"

नीति निपुण नर धीर वीर, कुछ सुयश करो किन ।
अथवा निन्दा कोटि कहौ, दुर्वचन छिनहि छिन ॥
सम्पत हू चलि जाउ, रहौ अथवा अगणित धन ।
अबहि मृतक किन होहु, होउ अथवा निश्चल तन ॥
पर न्याय-पंथ को तजत नहिं, बुद्धि विवेक गुण ज्ञान निधि ।
वै सङ्ग सहायक रहत नित, देत लोक परलोक सिधि ॥८४॥

81. The wise do not go astray even a single step from the path of justice, whether they are upbraided or praised by politicians, whether riches come to them or leave them of their own free will and whether they have to die to-day or after a Yuga.



भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं सुखे भोगिनः ।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाः पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥८५॥

एक सर्प पिटारी में बन्द पड़ा हुआ, जीवन से निराश, शरीर से शिथिल और भूख से व्याकुल हो रहा था। उस समय एक चूहा, रात के वक्त, कुछ खाने की चीज पाने की आशा से, पिटारी में छेद करके घुसा और सर्प के मुँह में गिरा। सर्प उसे खाकर तृप्त हो गया और उसी चूहे के किये हुए छेद की राह से बाहर निकलकर स्वतन्त्र—आजाद हो गया। इस घटना को देखकर, मनुष्यों को अपनी वृद्धि और क्षय का एकमात्र कारण दैव को ही समझना चाहिये ॥८५॥

यही बात वृन्द कवि ने अपनी कविता में इस भाँति कही है:—

दुख सुख दीबे को दई, है आतुर इहि ठाट।
अहि करण्ड मूसा पर्यो, भखि निकस्यो वुहि बाट ॥

प्राणी दैवाधीन है

मनुष्य का बुरा और भला सब दैव या प्रारब्ध के अधीन है। मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, प्रारब्ध के वश में है। प्रारब्ध जो खेल खिलाती है, वही खेल खेलता है। मनुष्य के पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों को ही प्रारब्ध कहते हैं; यानी पहले जन्म के बुरे-भले कर्मों से ही प्रारब्ध या अदृष्ट बनता है। अगर समय पर पुण्यों का उदय होता है, तो मनुष्य सुख पाता है और यदि पापों का उदय होता है, तो दुःख-भोग करता है। दुःख का उद्यम न करने पर भी मनुष्य दुःख पाता है, यही इस बात का पक्का प्रमाण है।

कहा है—

अन उद्यम सुख पाइये, जो पूरबकृत होय।
दुख को उद्यम को करत, पावत है नर सोय ॥
को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर।
उरझे सुरझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर ॥

और भी—

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥

जीव आप ही कर्म करता है; आप ही उसका फल भोगता है; आप ही संसार में भ्रमता है और आप ही उससे छुटकारा पाता है ।

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ।
दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनव्यसनानि च ॥

दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति—ये सब मनुष्य के अपराध-रूपी वृक्ष के फल होते है ।

यस्माच्च येन च यदा च यथा च यच्च यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्मः ।
तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति ॥

जिसने, जिस वजह से, जब, जैसा, जो, जितना और जहाँ शुभ और अशुभ कर्म किया है; उसे उसीसे, तभी, तैसा ही, वह, उतना ही और वहाँ ही, काल की प्रेरणा से, फल मिलता है ।

इन प्रमाणों से स्पष्ट समझ में आ सकता है कि मनुष्य अपने कर्मों से बन्धन मे फँसकर दुःख और सुख भोगता है । जो लोग दुःख या सुख को मनुष्य या परमात्मा-कृत समझते है, वे बड़ी भारी गलती करते है । जिस समय पिटारी वाले सर्प पापों का उदय हुआ, वह पिटारी में बन्द हुआ । जबतक पापों का अन्त न हुआ, वह भूख-प्यास से कष्ट पाता रहा । ज्यों ही पुण्यों का उदय हुआ, दैव की प्रेरणा से, चूहा उसके पिटारे में छेद करके घुसा । उससे सर्प की क्षुधा शान्त हुई और वह उसी छेद की राह से निकलकर स्वतन्त्र भी हो गया । इसी तरह मनुष्य भी दैव के अधीन होकर सुख-दुःख भोगते है ।

सारांश—मनुष्यों की क्षय और वृद्धि, सुख और दुःख, सम्पद और विपद् सफलता और असफलता प्रभृति का एक-मात्र कारण दैव या प्रारब्ध है । दैव जो नाच नचाता है, प्राणी वही नाच नाचता है ।

जैसे काहू सरप कों, छवरें पकर धर्‌यो सु ।
सब की आशा छोड़ के, दै सिर हूद पर्‌यो सु ।।
दै सिर कूद पर्‌यो सु, भयौ पीड़ित अति कँदी ।
इन्द्री विह्वल भूख, पिटारी मूसें छेदी ।।
वाही को भखि मांस, छेद ह्वै निकस्यो कैसे ।
तैसे क्षय अरु वृद्धि, दैव-वस ऐसे-जैसे ।।८५।।

45. There was a snake which had lost all hopes, its body all aching owing to its having been imprisoned in a cage and its senses made feeble by hunger A mouse having made a hole into the cage at night entered into its mouth of itself. The snake, its hunger satisfied with the flesh of the mouse, speedily went out of that very hole and was free. Thus see, O men, Fate is the only cause of people's prosperity and loss.



पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ।।८६।।

जिस तरह हाथ से गिराने पर भी गेंद ऊँची ही उठती है, उसी तरह साधु-वृत्ति पर चलने वालों की विपत्ति भी सदा नहीं रहती है ।।८६।।

सदा किसी के भी दिन समान नहीं रहते । सदा न कोई सुखी ही रहता है और न सदा कोई दुःखी ही रहता है । इस परिवर्तनशील ससार मे दुःख और सुख गाड़ी के पहिये की तरह चक्कर काटते है । समय के साथ मनुष्यो की अवस्थाएँ बदलती हैं । सूर्य की जिस तरह एक दिन में तीन अवस्थाएँ हो जाती

हैं। उसी तरह मनुष्य की अवस्थाएँ भी बदला करती हैं। इन बातों को समझ कर, धीर पुरुष अपनी विपद् में नहीं घबराते।

जो लोग, भारी-से-भारी विपद् पड़ने पर, धनहीन होने पर, शत्रुओं के जाल में फँसने पर अपने आचरण को अच्छा रखते है, धीरज और धर्म को नहीं त्यागते हैं और प्राचीन काल के महापुरुषों की राह पर चलते हैं—उसकी विपत्ति, निश्चय ही, उसी तरह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, जिस तरह जमीन पर फेंकी हुई गेंद शीघ्र ही ऊपर उठ आती है। महाराज रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र, नल और पाण्डु-पुत्रों ने धर्मात्माओ की चाल पर चलकर शीघ्र हो अपनी-अपनी विपत्तियों से छुटकारा पाया। जो मनुष्य अपनी विपत्ति में सब्र नहीं करता, धैर्य और धर्म को छोड़ देता है, उसकी विपत्ति उसे बड़े-बड़े कष्ट भुगाती और शीघ्र नहीं जाती।

शिक्षा—विपत्ति में धीरज और धर्म को न छोड़ो; धमत्मिाओं की चाल पर चलो; परमात्मा की दया से शीघ्र ही विपत्ति नष्ट हो जायगी।

कर को मार्‌यो गेंद ज्यों, लागि भूमि उठि जात।
साधु जनन की त्यों विपति, छिन ही माहिं नशात ॥८६॥

86. A ball dashed against the ground with the stroke of a hand rebounds upwards. (Similary) as a general rule, the downfall of good-natured men does not last long,



आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युमद्यसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ॥८७॥

आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला घोर शत्रु है और उद्योग के समान उनका कोई बन्धु नहीं है; क्योंकि उद्योग करने से मनुष्य के पास दुःख नहीं आते ॥८७॥

इसमें जरा भी शक नहीं कि आलस्य मनुष्य का परम शत्रु और उद्योग उसका परम बन्धु है। आलस्य से मनुष्य रोगी, दुःखी और दरिद्री होता है; जब कि उद्योग से निरोग, सुखी और धनी होता है। आलस्य असफलता का भण्डार और उद्योग सफलता की कुञ्जी है। आलस्य मृत्यु और उद्योग जीवन है। आलसी सदा मुहताज रहता है और उद्योगी सदा आनन्द करता है। आलसी की जिन्दगी दिन-दिन छीजती है, पर उद्योगी की जिन्दगी बढ़ती है। रूसो महोदय कहते है—"Temperance and labour are the two best physicians of man." परहेजगारी और मिहनत मनुष्य के दो सर्वोत्तम हकीम हैं। विण्डल फिलिप्स महोदय कहते है—"Health lies in labour and there is no royal road to it, but through toil." तन्दुरस्ती मिहनत में है। मिहनत के सिवा तन्दुरुस्ती तक पहुँचने की और कोई शाही राह नहीं है। हिलर्ड महाशय कहते है—"Life is but another name for action; and he, who is without opportunity, exists, but does not live."—कर्म या काम का ही दूसरा नाम जीवन है; निकम्मे का अस्तित्व है, पर वह जीवित नहीं। शंकराचार्य महाराज ने कहा है—

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णा श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः।
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः को वाऽमृतस्स्यात्सुखदा निराशा॥

दरिद्री कौन है? जिसे तृष्णा बहुत है। धनवान कौन है? जिसे सब तरह सन्तोष है। जीता हुआ ही मृतक कौन है? जो उद्यम-रहित या आलसी है। अमृत क्या है? सुखदायी निराशा।

आलस्य से ही सब आपदाओं की मूल निर्धनता आती है। डच लोगो में एक कहावत है—"Poverty is the reward of idleness." दरिद्रता आलस्य का पुरस्कार है। दरिद्रता से मनुष्य के मन मे लाज-सी आने लगती है; लज्जा से मनुष्य में कमजोरी आती है; कमजोर की सभी बेइज्जती करते है; बेइज्जती होने से मन मे दुःख और शोक पैदा होते हैं; जो दिन-रात शोक

में गर्क रहता है, उसी अक्ल मारी जाती है; जब अक्ल ही नहीं रहती, तब मनुष्य बहुधा आत्म-हत्या करके प्राण-विसर्जन कर देता है। बेंजामिन फ्रैंकलिन महोदय कहते हैं—"Poverty often deprives a man of all spirit and virtue." दरिद्रता बहुधा मनुष्य को सम्पूर्ण साहस और धर्म से हीन कर देती है। जिसमें साहस और धर्म नहीं, वह तो जीता हुआ ही मरा है; वह चाहे अपघात करके मरे, चाहे न मरे, जिस आलस्य से इतने उपद्रव या घोर संकट पैदा होते है, वह मनुष्य का घोर शत्रु नहीं तो क्या है ? और तो और; जिस सुयश की मनुष्य को प्राण देकर भी परिपालना करनी चाहिये, वह भी आलस्य से नष्ट हो जाता है। कहा है—

स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः।
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं
राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य॥

आलसी का यश नष्ट हो जाता है, दुष्टों की मैत्री नष्ट हो जाती है, नष्टेन्द्रिय पुरुष का कुल नहीं चलता, व्यसनी की विद्या नष्ट हो जाती है, कंजूस का सुख नष्ट हो जाता है और मतवाले मन्त्री वाले राजा का राज्य नष्ट हो जाता है।

आलस्य में संसार के सारे ही दोष है। आलसी को न इस लोक में सुख मिलता है ओर न परलोक में। आल्सी इस लोक में निर्धनता प्रभृति नाना प्रकार के दुःखों को भोगकर मरता है और मरने पर फिर इस लोक में आता और नाना प्रकार के दुःख भोगता है। आलसी का जन्म-मरण के बन्धनों से छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यों ! यदि तुम सुख-सम्पत्ति और ऐश्वर्य चाहो, यदि तुम ससार-बन्धन से मुक्त होना चाहो, तो 'आलस्य शत्रु' से सदा अलग रहो। इस शत्रु से मैत्री न करो। जो आलस्य से मैत्री रखता है, उससे संसार की सम्पत्तियाँ दूर भागती है और लक्ष्मी उसकी सूरत से नफरत करती है। नीति ग्रन्थों में कहा है—

षड्दोषा पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधमालस्यं दीर्घसूत्रता ॥
आलस्यं स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् ।
सन्तोषो भीरुत्वं षड्व्याघाता महत्त्वस्य ॥
अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्च परिहीनम् ।
प्रमदेव हि वृद्धपतिं नेच्छत्युपगूहणी लक्ष्मी ॥
क्लेशस्याङ्गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभन्ते ।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिष्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम् ॥

जिन्हें धन की इच्छा हो, उन्हें निन्द्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—ये दोष त्याग देने चाहिए ।

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्म-भूमि से प्रेम, सन्तोष और भय—ये छह बडप्पन का नाश करने वाले हैं ।

जिस तरह जवान स्त्री बूढे पति का आलिङ्गन करना नहीं चाहती, उसी तरह लक्ष्मी उद्योगहीन, आलसी, तकदीर को बड़ी समझने वाले और साहस-हीन—पस्तहिम्मत मनुष्य को नहीं चाहती ।

इस जगत मे विना शरीर को दुःख दिये सुख नही मिलता । मधुसूदन भगवान ने समुद्र-मंथन से थकी भुजाओ द्वारा ही लक्ष्मी पाई थी ।

आशा है, हमारे पाठक अब आलस्य के घोर शत्रु होने की बात अच्छी तरह समझ गये होगे । आगे चलकर हम उद्योग के परमबन्धु होने की बात इसी तरह समझायेंगे; पर बीच मे आलसियो के एक उज्र का जवाब और देंगे ।

आलसी और काहिलो को भाग्य और तकदीर पर बड़ा भरोसा होता है । वे लोग पुरुषार्थ या तदबीर के मुकाबले मे भाग्य या तकदीर को बड़ी समझते है और अक्सर कहा करते है—"अगर हमारे भाग्य में होगा, हमारी तकदीर अच्छी होगी, हमने पूर्वजन्म मे शुभ-कर्म किये होगे, तो हमारे विना उद्योग किये ही, विना हाथ-पाँव हिलाये ही, पलंग पर पड़े-पड़े ही, हमे सब कुछ मिल जायगा—लक्ष्मी हमारे कदमो मे लोटेगी । हाँ, यदि हमारा भाग्य

ही अच्छा न होगा, हमने पहले जन्म में पुण्यकर्म किये न होंगे; तो हमारे कोशिश करने पर भी, हमें कुछ न मिलेगा। फल की प्राप्ति का हेतु प्रत्यक्ष नहीं दीखता। फल की प्राप्ति पूर्वकर्मानुसार होती है, अन्यथा नहीं। देखते है, किसी की थोड़ी ही मिहनत से बड़ा फल मिलता है और किसी को घोर परिश्रम करने पर भी खाने को नहीं मिलता, और कोई जरा-सा भी उद्योग किये बिना करोड़ों का मालिक बन बैठता है।" बस आलसी अपने इसी विश्वास से घरों में पड़े रहते है। माता-पिता यदि कुछ छोड़ जाते है, तो जब तक वह रहता है, बेच-बेच कर खाया करते हैं। आलसियों से उठकर पानी नहीं पिया जाता; कुत्ता मुँह में मूतता हो, तो उसे भगाया नहीं जाता। हमें इस मौके पर आलसियों का एक किस्सा याद आया है, उसे हम अपने पाठकों के लिये यहाँ लिखते है।

एक बार एक मनुष्य ने कहा—"पोस्ती ने पी पोस्त, नौ दिन चला अढ़ाई कोस।"

दूसरे ने कहा—"अबे! पोस्ती न होगा, वह कोई डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने पी पोस्त, तो कूँडा के इस पार या उस पार।"

और सुनिये—

एक बाग में दो आलसी एक आम के पेड़ के नीचे लेट रहे थे। उनमें से एक की छाती पर एक आम पड़ा हुआ था, पर वह उसे उठाकर खा नहीं सकता था। इतने में उधर से एक सवार निकला। आमवाला आलसी बोला—"ओ भाई सवार! मेरी छाती पर एक आम पड़ा है, कृपया इसे मेरे मुँह में निचोड़ते जाइये।" सवार ने कहा—"तू बड़ा ही आलसी है जो अपनी छाती पर पड़ा हुआ आम भी उठाकर नहीं चूस सकता; दूसरे से आम निचोड़ने को कहता है।" यह सुनते ही दूसरे आलसी ने कहा—"बेशक साहब! यह बड़ा ही आलसी है। रात-भर मेरे मुँह को कुत्ता चाटता रहा; मैंने इससे कहा कि जरा दुत्कार दे, पर इसने 'दुत' भी न किया।" यह सुनकर सवार उन्हें लानत-मलामत करता हुआ चला गया। आलसियों की यह दशा होती है, तभी तो वे संसार में नर्क से भी बढ़कर दुःख भोगते हैं।

आलसियों पर 'मीर' ने खूब ही कहा है:—

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पर उठके कहीं जाना नहीं अच्छा॥
विस्तर पै मिस्ल लोथ पड़े रहना है अच्छा।
बन्दर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा॥
रहने दो जमीं पै मुझे, आराम यहीं है।
छेड़ो न नक्शे-पा है मिटाना नहीं अच्छा॥
उठ करके घर से कौन चले, यार के घर तक।
मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा॥
धोती भी पहनें जब कि कोई गैर पिन्हाये।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा॥
सिर भारी चीज है, इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ वेचारी को सताना नहीं अच्छा॥
फाकों से मरिये पर न कोई काम कीजिये।
दुनिया नहीं अच्छी है, जमाना नहीं अच्छा॥
सिजदे से गर बहिश्त मिले, दूर कीजिये।
दोजख ही सही, सर का झुकाना नहीं अच्छा॥
मिल जाय हिन्द खाक में, हम काहिलों को क्या।
ऐ 'मीर'! फर्स रंज मिटाना नहीं अच्छा॥

आलसी हाथ-पैर नहीं हिला सकते; इसी से भाग्य की आड़ लेते है। शुक्राचार्य महाराज ने वहुत ठीक कहा है :—

धीमन्तो वंद्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्तपौरुषं कर्त्तुं क्लीबा दैवमुपासते॥

बुद्धिमान और माननीय लोग पुरुषार्थ को वड़ा मानते है, परन्तु नपुंसक—हिजड़े, जो पुरुषार्थ नही कर सकते—दैव या प्रारब्ध की उपासना करते है।

प्रारब्ध कोई चीज न हो, यह बात नहीं। यह जगत प्रारब्ध और पुरुषार्थ में ही विद्यमान है। पूर्वजन्म के कर्म को 'प्रारब्ध और इस जन्म के कर्म को 'पुरुषार्थ' कहते है। एक ही कर्म के दो नाम है। प्रारब्ध और पुरुषार्थ गाड़ी के दो पहियों के समान है। जिस तरह एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती, उसी तरह बिना पुरुषार्थ—खाली भाग्य से फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। बिना पुरुषार्थ प्रारब्ध-फल नहीं मिल सकता। जिस तरह कुम्हार मिट्टी के ढेले से अपनी इच्छानुसार चीजें बनाता है, उसी तरह मनुष्य अपने पूर्व-जन्म के किए हुए कर्मो का फल आप ही प्राप्त करता है। अचानक सामने आये हुए खजाने के लेने के लिए भी पुरुषार्थ की दरकार होती है। सोते सिंह के मुख मे, बिना उद्योग किये ही, हाथी या हिरन घुस नहीं जाते। तिलों मे तेल होने पर भी बिना पेरे नही निकलता। तात्पर्य यह है कि बिना पुरुषार्थ हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से, प्रारब्ध का फल मिल नहीं सकता।

उद्योग की सर्वत्र जरूरत है। उद्योग करना मनुष्य का धर्म है। फल मनुष्य के हाथ नहीं; फल देना विधाता का काम है। महात्मा कारलाइल कहते है— 'Let a man do his work; the fruit of it is the care of another than he' मनुष्य परिश्रम करे; फल की प्राप्ति करना उसके हाथ की बात नहीं, फल देनेवाला दूसरा ही है। नीति में लिखा है:—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
र्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥

उद्योगी पुरुष सिंह के पास लक्ष्मी आती है*। "प्रारब्ध से लक्ष्मी आती है"—ऐसी बात कायर लोग कहते है। दैव या प्रारब्ध को त्यागकर, अपनी सामर्थ्य-भर उद्योग करो। उद्योग करने पर भी यदि सिद्धि न हो, तो किसका दोष है?

* He that labours and perseveres spins gold.

निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः ।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्वसम्पदः ।।

जिस प्रकार कुएँ के पास के छोटे जलाशय—पोखरे में मेढक और भरे सरोवर मे पक्षी आप-से-आप आते हैं; उसी तरह उद्योगी पुरुष के पास सारी सम्पत्तियाँ आप-से-आप आती है ।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ।।

उत्साही, काम करने में निरालसी, काम की विधि को जाननेवाला, किसी प्रकार के व्यसन के वशीभूत न रहनेवाला, शूर-वीर, पराया एहसान माननेवाला और मित्रता में दृढ़ रहनेवाला—ऐसे पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं बसने के लिए आती है ।

संसार में सारे काम लक्ष्मी से ही होते हैं । और तो क्या—लक्ष्मी से स्वर्ग में भी सीढ़ी लग जाती है । जिसके पास धन है, वह जीता हुआ है; जिसके पास धन नहीं, वह जीवित रहने पर भी मृतक है । यह सर्वगुण-सम्पन्ना लक्ष्मी एकमात्र 'उद्योग' से मिलती है; इसलिये उद्योग ही मनुष्य का परम बन्धु है । उद्योग बिना दरिद्रता और दुःख पीछा नहीं छोड़ते; अतः मनुष्य को उद्योग से घनिष्ट मैत्री करनी चाहिये । कहा है—

सहि संकट उद्योग को, लहै सम्पदा प्रानि ।
सिन्धु-मथन-दुःख सुर सह्यो, लह्यो अमृत ज्यों पानि ।।
फल विडाल-सम रहत जन, उद्यम तजिये न भूल ।
गाय नहीं जिमि जन्म सों, दूध पीय भो स्थूल ।।

हो सचेत श्रम करो सदा तुम, चाहे कुछ भी हो परिणाम ।
सदा उद्यमी होकर सीखो, धीरज धरना करना काम ।।

धन कमाने की तरकीबें

मनुष्य को धन प्रायः ६ उपायो से मिलता है,—(१) भीख माँगना,

(२) राजा या किसी धनी की चाकरी करना, (३) खेती करना, (४) लेन-देन करना, (५) विद्या पढ़ना, और (६) वाणिज्य व्यापार करना ।

इन छहों उपायो से धन आता है; पर इन सब मे वाणिज्य या व्यापार सर्वश्रेष्ठ है । भिक्षा से कोई धनी नही हुआ; पराई चाकरी से यथेष्ट धन नहीं मिलता; खेती में धन है, पर कष्ट बहुत, काम बेशक उत्तम है; ब्याज पर रुपया उधार देने से रकम के मारे जाने का भय रहता है; इसलिये वाणिज्य ही रुपया कमाने का सर्वोत्तम उपाय है । सस्ते भाव में अनाज या कपड़ा प्रभृति खरीद कर रख छोड़ने और महँगी के समय बेच देने से, सहज में, अच्छा लाभ हो सकता है । इसके सिवा, आजकल के समय में, गोधन बढाने से भी अच्छे लाभ की आशा है । थोड़ी पूँजी लगे और खूब नफा हो—एक-एक के सौ-सौ हो, ऐसा व्यापार इत्र, फुलेल, तेल और दवाओं का बेचना है । पर सभी कामों में सचाई और ईमानदारी की बडी जरूरत है । व्यापारी लोग बहुधा कहा करते है कि बिना मिथ्या और कपट के व्यापार चल नही सकता; पर हमारी राय इसके खिलाफ है । ईमानदारी से धन आता है और खूब आता है; पर पहले कुछ कठिनाइयों का सामना जरूर करना पड़ता है । आशा है, हमारे आलसी पाठक, अब से आलस्य को त्यागकर, कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य करेंगे* ।

आलस तन में रिपु बड़ो, सब सुख को हर लेत ।
त्यों ही उद्यम बन्धु सम, किये सकल सुख देत ।।८७।।

87. Idleness is the great enemy of mankind. There is no friend like activity finding which nobody ever sustains a loss.



* अगर पास पूँजी न हो, तो हमारी 'स्वास्थ्यरक्षा' मंगाकर उसमें से हमारी परीक्षित चीजें बनाकर धन पैदा कीजिये । अनेक लोग उसकी बदौलत मालामाल हो रहे है । मूल्य १०)

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥८८॥

कटा हुआ वृक्ष फिर बढ़कर फैल जाता है। क्षीण हुआ चन्द्रमा भी फिर आहिस्ते-आहिस्ते बढ़कर पूर्ण हो जाता है। इस बात को समझकर, सन्त पुरुष अपनी विपत्ति में नहीं घबराते ॥८८॥

संसार की परिवर्तनशीलता

यह संसार परिवर्तनशील है; गाड़ी के पहिये की तरह घूमता रहता है। हर क्षण और हर घडी इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। एक वर्ष में ६ ऋतुएँ बदल जाती है। ग्रीष्म के बाद, वर्षा, वर्षा के बाद शरद, शरद के बाद हेमन्त, हेमन्त के बाद शिशिर और शिशिर के बाद वसन्त आता है। वसन्त ऋतु में वृक्षों के पुराने पत्ते झड़ जाते हैं और नये पत्ते उनका स्थान ग्रहण करते है। सूर्य की भी दिन भर में तीन अवस्थाएँ बदल जाती है। सवेरे उसका बचपन, दोपहर के समय उसकी जवानी और साँझ को उसका बुढ़ापा आकर वह अस्त हो जाता है। इसी तरह मनुष्य की दशाएँ बदलती रहती है। समय की गति के साथ मनुष्य भी रंग बदलने को मजबूर होता है। कैसर लूथर प्रथम ने ठीक ही कहा है—"Times change and we change with them." समय बदलते है और समय के साथ हम भी बदलते है। महामना गेटे ने भी कहा है—"जिन्दगी का सम्बन्ध जिन्दों से है और जो जिन्दा हैं, उन्हें जिन्दगी की तब्दीलियों के लिये तैयार रहना चाहिए।" कभी मनुष्य सुखी होता है, कभी दुःखी; कभी रोगी होता है, कभी निरोग; कभी धनी या राजा होता हे और कभी दर-दर का भिखारी! कभी एक-सी अवस्था रह ही नहीं सकती*। मनुष्य धर्म का है, कि वह हर हालत में खुश रहे। कहा है—

---

* Empires and nations flourish and decay.
By turns command, and in their turns obey.—Ovid,

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥

मनुष्य को चाहिए, सुख के समय सुख का और दुःख के समय दुःख का सेवन करे। दुःख और सुख चाक की तरह घूमा करते है।

शेख सादी ने कहा है—

शगूफा गाह शगुफतस्तो गाह खोशीदह ।
दरख्त वक्त बिरहनस्तो वक्त पोशीदह ॥

संसार परिवर्तनशील है। फूल कभी मुर्झाता है और कभी खिलता है। वृक्ष के पत्ते कभी गिर जाते है और कभी हरे-हरे पत्तों से उसकी शोभा हो जाती है।

जिस तरह काटा हुआ वृक्ष फिर हरा-भरा होकर फैल जाता है, क्षीण चन्द्र फिर पूर्ण हो जाता है; सूर्य और चन्द्रमा ग्रहण लगने पर भी, फिर ग्रहण-मुक्त हो जाते है; पत्रहीन सूखे वृक्ष फिर सपत्र हो जाते है; मेघाच्छन्न आकाश फिर निर्मल और निर्मेघ हो जाता है; वर्षा और तूफान सदा नहीं बने रहते; उसी तरह ही मनुष्य भी एक-न-एक दिन विपत्ति से छुटकारा पाकर सुखी और स्वतन्त्र होता है; इसमे अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

विपद् से लाभ

लोग विपद् को जैसी भयावनी समझते है, वह वैसा नही है। विपद् के फूल कडवे होते है; पर उसके फल मीठे होते है। जिसपर ईश्वर की पूर्ण कृपा होती है, जिसके धैर्य और धर्म की वह परीक्षा करना चाहता है, उसपर ही वह विपद् डालता है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, महाराजा नल और महाराजा रामचन्द्र तथा पञ्च पाण्डव इसके सच्चे दृष्टान्त है*।

* एक जमाने में हम स्वयं घोर विपत्ति में फँसे हुए थे। सभी इस जन्म में हमारा विपत्ति से छुटकारा पाना असम्भव कहते थे। हम भी ऐसा ही समझते थे। आत्म गोपन किये हम अपने दिन काटते थे; पर शत्रुओं से हमारा ज्यों-त्यों दिन काटना भी देखा न गया। वे हमारे पीछे हाथ धोकर पड़ गये। श्रीकृष्ण

दैवी विपत्तियाँ कुछ-न-कुछ उत्तम फल देनेवाली होती है, तब क्या मानवीय विपत्तियों से लाभ न होते होंगे ? नदी की बाढ़ को लोग बुरी कहते हैं; पर जब वह चली जाती है, तब खेती को उपजाऊ करके छोड़ जाती है। ज्वालामुखी पर्वतों के फटने की बातों से ही लोगों की आत्माएँ काँप उठती हैं; पर अनेक ज्वालामुखी पहाड़ों ने फटकर अनेक देशों को धन-दौलत से निहाल कर दिया है। भूकम्प के नाम से प्राणिमात्र घबरा उठते हैं; पर ये भूचाल भी फायदे से खाली नहीं। इनके आने से कोसों नयी जमीन निकल आती है और समुद्र अपनी सीमा के भीतर बना रहता है। इसी तरह मानवी विपत्तियों से भी बड़े-बड़े लाभ होते हैं। विपत्ति यद्यपि कालसर्प-सी भयङ्कर मालूम होती है, पर उसके फल काल सर्प की मणि से कम कीमती नहीं होते। विपत्ति मित्रों की सच्ची कसौटी है। स्त्री, पुत्र, सेवक; सचिव, मित्र और नाते-रिश्तेदारों की सच्ची परीक्षा इसी समय होती है। विपत्ति में ही बहुधा मनुष्य देश-देशान्तरों में भ्रमण करता, भाँति-भाँति के मनुष्यों की संगति से लाभ

की पूर्ण कृपा और श्रीमान् लार्ड चेम्सफ़ोर्ड की दया से हमारा छुटकारा हो गया। २५ वर्ष बाद असम्भव सम्भव हो गया। आज हम स्वतन्त्र और सुखी हैं। जिस तरह हमें विपत्ति से मुक्ति मिली, उसी तरह औरों को भी निश्चय ही मिलेगी। विपत्ति से हमें बड़े लाभ हुए। विद्या की वृद्धि हुई, संसार की असलियत का ज्ञान हुआ, नास्तिकता गई, परमात्मा से प्रीति हुई, देश-भ्रमण का आनन्द आया और संसार का अनुभव हुआ। हम चाहते है, हमारे और भाई हमारे अनुभव से फायदा उठायें और हमारी तरह गलतियाँ न करके कष्ट से बचें। अकेले इस लाभ को ही हम सब-से बड़ा लाभ समझते हैं। यदि कर्मानुसार हमारी बुद्धि वैसी न हो जाती, तो हम या तो हाईकोर्ट के वकील होते या सरकार की सेवा करते होते। पर हमें विपद में जो मजा आया, वह हमें वकालत करने या किसी उच्च पद होने से हरगिज न आता। आरम्भ में हमें विपद बहुत बुरी मालूम होती थी; पर अब नतीजा देखकर हमें कहना पड़ता है, कि परमात्मा ने हमें विपद देकर हमारा बड़ा उपकार किया। दीनबन्धु, अनाथ-नाथ भगवान कृष्ण को हमारा बारम्बार धन्यवाद है।

उठाता और नाना प्रकार के कला-कौशल और भाषाएँ तथा रीति-रिवाज सीख कर अनुभवी और जहाँदीदा होता है। जिस तरह बादल के बिना बिजली का प्रकाश नहीं होता; उसी तरह विपत्ति बिना मनुष्य के गुणों का प्रकाश नहीं होता*। विपत्ति हर पहलू से अच्छी है, बशर्ते कि वह सदा न रहे।

कहा है—

विपत बरोबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।
इष्ट मित्र और बन्धु सब, जान पड़े सब कोय॥

और भी कहा है—

बन्धुस्त्रीभृत्यवर्गस्य बुद्धेः सत्त्वस्य चात्मनः।
आपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम्॥

कसौटी पर कसकर सर्राफ जिस तरह सोने के गुण-दोषों की परीक्षा करते है; उसी तरह विपत्ति-रूपी कसौटी पर पुरुष अपने मित्र, स्त्री, दासगण, बुद्धि, बल और शरीर के सार की परीक्षा करते है।

कहिये पाठक, अब भी क्या विपत्ति को बुरी ही कहेंगे ? परमात्मा जो कुछ करता है, वह मनुष्य के भले के लिये ही करता है; पर मनुष्य अपनी बुद्धि की संकीर्णता के कारण, उसके मतलब को समझ नहीं सकता; इसी से दुःख में ईश्वर और भाग्य को दोष देता और हाय-हाय करता है। इसी मौके का एक किस्सा हमें याद आया है। पाठकों को उसे सुनाये बिना हमारी तबियत नहीं मानती।

ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है

एक राजा के मन्त्री का यह सच्चा विश्वास था कि 'ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छा ही करता है।' एक दिन राजा और मन्त्री शिकार के लिये एक भयानक वन में निकल गये। शिकार खेलते समय किसी हथियार से राजा की एक उँगली कट गयी। मन्त्री ने इस पर कहा—'महाराज ! ईश्वर जो करता है,

---

*"Disasters are wont to reveal the abilities of a General, good fortune to conceal them."—Hor.

मनुष्य के अच्छे के लिये ही करता है।' राजा इस बात से चिढ़ गया और मन्त्री को अपने यहाँ से निकाल दिया। दूसरे दिन राजा फिर शिकार को गया और हिरन के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ, एक और राजा के राज्य मे पहुँच गया। वहाँ के राजा को बलि देने के लिये एक मनुष्य की दरकार थी। लोग इसे ही पकड़कर बलिदान की वेदी के पास ले गये। पण्डितो ने इसकी उँगली कटी देखकर राजा से कहा—'महाराज! यह तो अंग-भग है; अग-भग की बलि नहीं दी जाती।' पण्डितों के कहने से राजा ने उस राजा को छोड़ दिया। वह अपने राज्य में आ गया। आते ही मन्त्री को बुलाया और उससे कहा—'मन्त्री तुम्हारी वह बात रत्ती-रत्ती सच है कि ईश्वर जो कुछ करता है, मनुष्य की भलाई के लिये ही करता है। अगर मेरी उँगली कटी न होती, तो मेरे प्राण न बचते।' मन्त्री ने कहा—'महाराज! आपने मुझे निकाल दिया, यह भी अच्छा ही हुआ। अगर आप मुझे निकाल न देते; तो मैं आपके साथ वहाँ होता ही। वे लोग आपको तो अंग-भंग समझकर छोड़ देते, पर मेरा तो बलिदान कर ही देते।' राजा मन्त्री से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे इनाम देकर फिर उसकी जगह पर बहाल कर दिया।

महात्मा बेकन ने कहा है—"कौन जानता है, जिस मृत्यु से लोग इतना डरते और घबराते है और जिसे सबमे बड़ी बुराई समझते है, वही सबसे बड़ी भलाई करने वाली हो* ?' बात ऐसी ही है। मृत्यु हमारे दु:खों का अन्त करके हमें नया चोला देने वाली है। वेबर महोदय करते है—"Life is a disease, sleep a palliative, death the radical cure." जीवन एक व्याधि है, निद्रा उस व्याधि को कम करने वाली और मृत्यु उसे समूल नष्ट करने वाली या जड़ से चंगा करने वाली है। लवेल महोदय कहते है—"जिन्दगी जेल का दरोगा है और मौत वह फरिश्ता है, जो जेलखाने के कपाट खोलकर हमें आजाद करने के लिये भेजा जाता है।"

जब कि मृत्यु तक हमारे सुख के लिये है, तब विपत्ति प्रभृत्ति से सुख क्यों

---

*Out of a great evil there springs a great good.

न होगा ? परमात्मा कोई भी काम ऐसा नहीं करता जिससे मनुष्य का अनिष्ट हो। दुख है कि मनुष्य परमात्मा की लीलाओं को समझने की सामर्थ्य नहीं रखता। इसीलिये विद्वानों ने कहा है कि मनुष्य परमात्मा पर पूरा भरोसा करके अपने तईं उसपर छोड़ दे और वह जिस हालत में रखे, अपने तईं उसी हालत में सुखी माने :—

राजी हूँ उसी में जिसमें तेरी रजा है !

विपत्ति का सामना करने के लिये मनुष्य को मिल्टन की यह बात याद रखनी चाहिये,—'मैं परमात्मा की इच्छा के प्रतिकूल आपत्ति नहीं करता। हे ईश्वर ! राजी हूँ उसी में, जिसमें तेरी रजा है। मैं अपना काम करता हूँ, तू अपना काम कर।"

महाकवि दाग़ भी कहते हैं :—

आपकी जिसमें हो मर्जी, वह मुसीबत बेहतर।
आपकी जिसमें खुशी हो, वह मलाल अच्छा है ॥

प्लूटार्क नामक एक यूरोपीय विद्वान कहते है—"हर हालत में प्रसन्न रहना सीखो। यदि तुम्हारे धन से दूसरों का उपकार होता है, तो धनावस्था से सुख मानो; अगर दरिद्रता हो, तो इसलिये सुखी रहो, कि तुम पर हजारों तरह की चिन्ताओं का भार नहीं। अगर तुम अप्रसिद्ध हो, तो इसलिये सुख मानो कि तुम लोगों के ईर्षा-द्वेष से बचोगे।"

कर्मफल भोगने ही पड़ते हैं

सुख और दुःख पूर्वजन्म के पुण्य और पापों के अवश्यम्भावी कर्म-फल है। पूर्वजन्म मे बुरा या भला जैसा कर्म किया जाता है, उसका फल प्रारब्ध में लिख दिया जाता है। उस प्रारब्ध के लिखे को कोई मिटा नहीं सकता। नाना प्रकार की तपस्या और देवताओं की उपासना करने का भी कोई फल नहीं होता। देवता तो देवता—स्वयं शिव और विष्णु भी भाग्य के लिखे को मिटा नहीं सकते। समुद्र चन्दमा का पिता है; पर ऐसा बलवान समुद्र भी अपने पुत्र के कलङ्क को मिटा नहीं सकता। शिवजी

महेश्वर है, सर्वशक्तिमान हे; पर वे भी अपने सिर पर रहनेवाले चन्द्रमा को पूर्ण नही कर सकते—उसके घटने-बढ़ने के दोष का हरण नही कर सकते। शिवजी स्वय महेश्वर हैं, उनके पुत्र गणेश सर्वसिद्धियो के दाता है, उनके दूसरे पुत्र स्वामी कार्तिकेय देव-सेना के सेनापति हे, स्वय महाशक्ति उनकी अर्द्धाङ्गिनी है, स्वयं धन के स्वामी कुवेर उनके घनिष्ट मित्र हैं; तिस पर भी शिवजी का खप्पर लेकर भीख माँगना नही छुटता। मतलव यह, कि कर्म के लिखे को कोई भी मिटा नही सकता।

कहा है—

अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकंठस्य महाहिशयनं हरेः॥

जो होनहार है, वह अवश्य होता है; उससे बड़े भी वच नहीं सकते। देखिये, शिवजी नगे रहते है और विष्णु भगवान महासर्प के ऊपर सोते हैं।

और भी—

अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मूलयति कः।

बुरा या भला जो कुछ विधाता ने लिख दिया है; उसे मिटाने मे कौन समर्थ है—

वृन्द कवि ने कहा है—

निहचै भावी को कछु, प्रतीकार जो होय।
तो नल से हरचन्द से, विपत न भरते कोय॥

आग्ल भाषा की भी एक कहावत है–"The fated will happen."

जो भाग्य मे लिखा है, वह होगा।

पूर्वजन्म के कर्म-फलो से प्रारब्ध वनता है। प्रारब्ध का लिखा अवश्य होता है। उसके भोगने से मनुष्य क्या, देवता तक नहीं वच सकते। भोगने वाला चाहे रो-रोकर और हाय-हाय करके भोगे, चाहे शान्ति से भोगे*।

* "The life of a man is a journey; a journey that must be travelled however bad the roads or the accomodation."
—Goldsmith.

गिरधर कविराय कहते है—

अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृत कर्म शुभाशुभ जोय।
ज्ञानी हँसि करि भोगिहै, अज्ञानी भोगे रोय॥
अज्ञानी भोगे रोय, पुनः पुनि मस्तक कूटे।
प्रारब्ध जो होय, बिना भोगे नहिं छूटे॥
कह गिरधर कविराय, न दीरघ होत रहस्या।
जैसे जैसे भाग पुरुष को फलै अवश्या॥

विपद् में मान-अपमान

विपद् में मान-अपमान और निन्दा-स्तुति का खयाल करना दुःखदायी है। विपद् में तो जो मनुष्य गूंगा बहरा, अन्धा, लँगडा या लूला हो जाता है, अपने तई पत्थर या मिट्टी समझ लेता है, उसकी विपद् सुख से कटती है—उसे शारीरिक और मानसिक दोनों ही कष्ट कम होते है। किन्तु जो मान-अपमान का खयाल रखते है, उनकी आत्माएँ जल-जलकर खाक हुआ करती हैं—उनको क्षण-भर भी सुख की नींद नहीं आती। विपद् में बड़े-बड़ों को नीचा देखना पड़ा है, पग-पग पर अपमानित और लांछित होना पड़ता है। साधारण मनुष्य उनके सामने कौन खेत की मूली है? ऐसा कौन है, जिसे विपद् में नीचा देखना नही पड़ा?

जिन अर्जुन ने अपनी भुजाओं के द्वारा समस्त पृथ्वी को जीतकर विपुल धन सञ्चय किया था, जिन्होंने सदेह स्वर्ग में जाकर इन्द्र के शत्रु—राक्षसों का संहार किया था, जिन्होने कृष्ण के साथ खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया था, जिनके समान धनुर्धर भूतल पर दूसरा नहीं था उन्हीं धनञ्जय को, हाथ में स्त्रियों-का-सा कङ्कन और कमर में कर्द्धनी पहनकर विराट्राज की कन्या को नाचना-गाना सिखाना पड़ा था।

जिन भीमसेन में अपार वल-वीर्य था, जो बड़े-बड़े वृक्षों को सहज में समूल उखाड़-उखाड़कर शत्रुओं पर फेंक मारते थे, जिन्होने कीचक और वकासुर प्रभृति राक्षसों को हँसते-हँसते मार डाला था, जिनसे सारे ही

कौरव-भाई गण जिनसे डरते रहते थे, उन्हीं भीम को, विराटराज के रसोईघर में, रसोइये का काम करके, अपने दिनों को धकका देना पड़ा था ! जब विराट् के गर्वित कुटुम्बी उन्हें 'भो रसोइया' कहकर पुकारते थे, तब द्रौपदी का आत्मा जलकर भस्म हो जाता था। पर कर्मफल अवश्य भोगने होंगे, यह समझकर पाण्डव सब सहते थे।

जिन धर्मराज युधिष्ठिर के अर्जुन-भीम और नकुल-सहदेव सरीखे त्रिभुवन-विजयी भाई मौजूद थे, जिनके पाञ्चालपति धृष्टद्युम्न जैसे महा बलवान योद्धा नातेदार थे, जिनके ऊपर स्वयं त्रिलोकीनाथ कृष्ण की पूर्ण कृपा थी, उन धर्म-राज को भी अपने तेज, बल और उत्साह को छिपाकर वनवास में दिन काटने पड़े और विराट्राज की सभा में राजा को जुआ खिलाना पड़ा ! एक बार विराट् ने क्रोध मे आकर, उनके पासा फेंक मारा। नाक से रक्त की धार बह निकली। एक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा का यह अपमान क्या कम था ? पर बेचारों ने समय देखकर सब सहा। क्या करते ? विधाता वाम था। प्रारब्ध में यह जिल्लत भी लिखी थी।

इस जगत में जो अनुपम रूपवती थी, जिनका यौवन स्थिर था, जो गुणों की आगार थी, जो महाबली पाञ्चालस्वामी धृष्टद्युम्न की सगी बहिन थी, जो जगत-विजयी पाण्डवों की धर्मपत्नी और पटरानी थी, जो त्रिभुवनपति श्री कृष्ण की प्यारी सखी थीं, उन्हीं कृष्ण या द्रौपदी को, महारानी होने पर भी, मत्स्यराज के रनवास में, सैरन्ध्री—नायन का काम करना पड़ा ! रनवास की गर्वीली स्त्रियाँ जब उन्हें सैरन्ध्री—नायन कहकर पुकारती होंगी तब-महारानी द्रौपदी को क्या कष्ट न होता होगा ? उनका दिल इस तरह अपमानित होने मे क्या जल-जलकर क्षार-क्षार न होता होगा ? पर वे बुद्धिमती थीं; जानती थीं कि पूर्व-जन्म के कर्म-फल अवश्य ही भोगने होंगे; इसलिये सब सहती थी।

जो महाराजा नल अस्त्र-विद्या और पाक-क्रिया में जगत मे अद्वितीय थे; जो मन्त्र-बल से, बिना आग के आग जला देते थे; जिनके अनुपम गुणों के कारण देवता भी उनसे डाह रखते थे—उनको भी वन-वन की खाक छाननी पड़ी; और अपनी प्राणप्यारी अनुपम सुन्दरी त्रिलोक-मोहिनी सहधर्मिणी

महारानी दमयन्ती को वन में अकेली छोड़कर, अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण की कोचवानगीरी करके दिन काटने पड़े।

जिन्होंने श्रेष्ठ सूर्य-वंश में जन्म लिया था, जिनके पिता महेन्द्र-मित्र महाराजा दशरथ थे, जिनके गुरु स्वयं महामुनि वशिष्ठजी जैसे महात्मा थे, जिनके श्वसुर जगत के ज्ञानियों में अग्रगण्य महाराज विदेह—जनक थे, जिनकी सहधर्मिणी स्वयं जनकतनया जानकी थीं, जो स्वयं विष्णु भगवान के अवतार थे,—उन भगवान रामचन्द्रजी को भी अपनी प्राण-प्यारी लक्ष्मी-स्वरूपा महासुकुमारी सीता को लेकर वन-वन डोलना पड़ा!

दिल्लीश्वर शहन्शाह सम्राट् हुमायूँ को शेरशाह से पराजित होने पर सिन्ध के निर्जल और निर्जन रेगिस्तानों में अपनी गर्भवती बेगम को साथ लिये-लिये महाकष्ट भोगने पड़े।

बादशाहों के बादशाह, यूरोप-विजयी महावीर नेपोलियन को भी अनेक बार कारागार प्रभृति के सैकड़ो असहनीय कष्ट झेलने पड़े।

भूतपूर्व जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम, जिनके समान कूटनीतिज्ञ और राजनीति की बारीकियों को जानने वाला इस भूतल पर, इस जमाने में, दूसरा समझा नहीं जाता, जिन्होंने अपनी राजनीति की चालों से अच्छे-अच्छे चतुर राजनीतिज्ञों की बुद्धि के दिवाले निकलवा दिये, जिन्होंने अपनी शक्ति और बुद्धि से चार साल तक पृथ्वी के प्रायः सभी नरपालों से लोहा लिया और पृथ्वी को अपनी उँगली पर नचाया, जिनकी युद्ध-चातुरी के कारण पृथ्वी के कई सर्वश्रेष्ठ महाप्रतापी राज्यो को अपने अस्तित्व तक मे सन्देह हो गया था, उन्हीं महाबली महापराक्रमी अद्वितीय राजनीतिज्ञ सम्राट् के कर्मों मे क्या लिखा था, सो पाँच साल पहले कौन जानता था? जिनकी हुङ्कार से मही के प्रायः सभी महीपाल काँप उठते थे, उन्हीं सम्राट् ने अपने जीते जी भूतपूर्व सम्राट् कहलाते हुए, एक छोटे से राज्य हालैण्ड की शरण में रहकर अपना समय काटा*।

* जगत जानता है, कि भू० पू० जर्मन-सम्राट् कैसर विलियम, अति का अभिमान करने और अधर्म का पक्ष लेने से हारे; अदृष्टवादी यही कहेंगे कि

बहुत कहने से क्या? कर्मफल सभी को भोगने पड़ते है। कोई भी बच नहीं सकता। बुद्धिमानों को ऐसे-ऐसे महात्मा और महाबलियों की विपद्-कहानियाँ याद करके अपने चित्त को शान्त रखना चाहिये और जिस राह से प्राचीन काल के महापुरुष गये हैं, उसी राह पर चलकर, उनके पद-चिह्नों का सहारा लेकर, उनको आदर्श मानकर, अपने दुःख के दिन काटने चाहिए। प्राचीन काल के महापुरुषों के पद-चिह्नों का अनुसरण करने से विपद् उसी तरह सहज में कट जाती है, जिस तरह रेगिस्तानों में अपने से पहले राह तय करने वालों के पद-चिह्नों को देख-देखकर चलने से यात्री अपनी-अपनी मञ्जिले-मकसूद पर आराम से पहुँच जाते हैं*। किसी कवि ने कहा है:—

सज्जन-चरित सिखाये हम भी, कर सकते हैं निज उज्ज्वल।
जग से जाते समय रेत पर, छोड़ें चरण-चिह्न निर्मल॥
चरण-चिह्न ये देख कदाचित्, उत्साहित हों वे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर, नौका जिनकी टकराई॥

विपद् अकेले नहीं आती

सर्वस्व नष्ट हो जाना या छिन जाना एक विपद् है। राजा पर दूसरे राजा का चढ़ आना एक विपद् है। रोजगार मे एकदम से घाटा लग जाना और उस समय धन का घर मे अभाव होना और बाजार से उधार न मिलना एक घोर विपद् है* स्त्री-पुरुष प्रभृति प्यारो का मर जाना या किसी तरह वियोग हो जाना भी एक विपद् है। इसी तरह मनुष्य पर अनेक प्रकार की मुसीबतें आया करती है। एक विपद् के आते ही, फिर और भी अनेक उपद्रव होने लगते है। इधर रोजगार में घाटा लगता है, उधर साहूकार नालिश करते है,

---

उनके पूर्वजन्म के पुण्य क्षीण हो गये थे, इसी से हारे और दुःख भोगा।

* "A noble example makes difficult enterprises easy."
—Goethe.

साथ ही घर में आग लग जाती है और बाल-बच्चे बीमार हो जाते है इत्यादि*। अंग्रेजी में एक कहावत है—"Misfortune never comes singly." विपत्ति अकेली नहीं आया करती। नीति-शास्त्र में भी कहा है—

> क्षते प्रहारा विपतन्त्यभीक्ष्णमन्नक्षये वर्द्धति जाठराग्निः।
> आपत्सु वैराणि समुद्भवन्ति वामे विधौ सर्वमिदं नराणाम् ॥

घाव में बारम्बार चोट लगती है; अन्न न होने पर भूख बढ़ जाती है; आफत में बैरी बढ़ जाते है। विधाता के प्रतिकूल होने से मनुष्यों को ये सब होते हैं।

विपद् में कोई संगी नहीं

विपद् में भाई-बन्धु भाईबन्दी का नाता तोड़ देते है। अपने नातेदार को नातेदार कहने में भी उन्हे कहीं लज्जा और कहीं भय होता है। अपने मुसीबतजदा रिश्तेदार को दो-चार दिन के लिये अपने घर ठहराना भी वे बुरा समझते है और काम पड़ने से, जेल होता हो तो भी, फाँसी होती हो तो भी, पैसा होते हुए भी पैसे से सहायता नहीं देते। रात-दिन पास बैठने वाले, हर तरह गुलछर्रे उड़ाने वाले, विपद् में साथ रहने की प्रतिज्ञा करनेवाले और समय पर जान तक दे देने की डींग मारनेवाले दुर्दिन में मुँह से भी नहीं बोलते†। बोलते है तो ऐसी बातें कहते है, जिससे दुनिया के दिल में हजारों बिच्छुओं के डंक मारने की-सी घोर वेदना होने लगती है। गवार और निर्बुद्धि लोग, चतुर-चूड़ामणि को भी गँवार और बे-अक्ल कहने लगते है—गधे, घोड़ो के लात मारने लगते है। और तो क्या—बाज-बाज पिता भी पुत्र से वैरभाव रखने लगते है; उसके दुःखों पर हँसते है और

* इटली म एक कहावत है—"Blessed is the misfortune that comes alone" स्पेन मे भी एक कहावत है—"Welcome misfortune, if thou comest alone."

† "So long as you are prosperous you will reckon many friends; if fortune frowns on you, you will be alone."—Ovid.

उसका अनिष्ट-चिन्तन करते हैं। अग्नि की साक्षी देकर, वेदमन्त्रों द्वारा परिणीता, सुख-दुःख में हिस्सा बँटाने वाली बाज-बाज धर्मपत्नियाँ तक विपद् में फँसे हुए पतियों से नफरत करने लगती हैं और वाक्यबाणों से उनके हृदय को चलनी बना डालती हैं। बहुत कहाँ तक कहूँ ? हर समय जी हुजूर, जी हाँ, जो आज्ञा सरकार, कहने वाले, जरा भृकुटी टेढ़ी करने से काँप उठने वाले नौकर और दास-दासी तक विपद्ग्रस्त के शत्रु हो जाते हैं। स्वामी की विपद् की खबर पाते ही, सब एक हो जाते हैं। रात-दिन सिर जोड़-जोड़ कर मालिक के छिद्र ढूंढा करते हैं। और स्वामी के शत्रुओं को, स्वामी के अनिष्ट-साधन में साहाय्य किया करते हैं। किसी ने बहुत ही ठीक कहा है—"So many servants, so many enemies." जितने नौकर, उतने दुश्मन। बात एकदम सच है। हम कई बार स्वयं ऐसा भोग चुके हैं। नौकर-चाकर सबसे बुरे शत्रु होते हैं। इन्हें नमक का जरा भी ख्याल नहीं आता। और शत्रुओं को चाहे दिया जाय, पर इन्हें दया नहीं आती। ये लोग स्वामी के सभी पुराने उपकारों पर पानी फेरकर, स्वामी के शत्रुओं में जा मिलते हैं। उन्हें अपने स्वामी की सच्ची-झूठी निन्दायें सुना-सुनाकर रिझाते हैं और फिर अपने स्वामी का महासंकट में परित्याग करके शत्रुओं में से किसी के यहाँ लग जाते हैं। हाय ! विपद् में सिवा ईश्वर के कोई भी साथी नहीं रहता। अपने तन के कपड़े भी अपने दुश्मन हो जाते हैं। महाकवि दाग़ ने कहा है और राई-रत्ती सच कहा है:—

होता नहीं है कोई बुरे वक्त में शरीक।
पत्ते भी भागते हैं खिजां में शजर से दूर॥

पुतलियाँ तक भी तो फिर जाती हैं देखो दमनिजा।
वक्त पड़ता है, तो सब आँख चुरा जाते हैं॥

मनुष्य जब सब तरफ से निराश हो जाता है, आँख पसारकर देखने पर जब उसे कोई भी मददगार नजर नहीं आता, तब उसे दीनबन्धु, दयासिन्धु, अनाथनाथ भगवान की याद आती है। ज्यों ही वह आर्त्त होकर प्रभु को

पुकारता है, आशुतोष का आसन तत्काल हिलने लगता है। वे संकट-भञ्जन भक्त-मनरञ्जन, फौरन ही नंगे पैर भक्त को विपद् से बचाने के लिये दौड़ते और उसकी रक्षा करते हैं *। नीचे की गजल में इसका चित्र खूब खींचा गया है—

दुख दूर कर हमारा, संसार के रचैया।
जल्दी से दो सहारा, मझधार में है नैया॥
तुम बिन कोई हमारा, रक्षक नहीं यहां पर।
ढूँढ़ा जहान सारा, तुम-सा नहीं रखैया॥
दुनिया में खूब देखा, आँखें पसार करके।
साथी नहीं हमारा, मां बाप और भैया॥
सुख के हैं सब संगाती, दुनिया के यार सारे।
तेरा ही नाम प्यारा, दुःखदर्द से बचैया॥
दुनिया में फंस के हमको, हासिल हुआ न कुछ फल।
तेरे बिना हमारा, कोई नहीं सुनैया॥
चारों तरफ से हमपर, गम की घटा है छाई।
सुख का करो उजेरा, परकाश के करैया॥
अच्छा बुरा है जैसा, राजी में राम रहता।
चेरा है यह तुम्हारा' सुख देउ सुख दिवैया॥

तक को घुगाते हैं। इनके हर समय मनहूस की-सी सूरत बनाये रहने से उनकी स्त्री और छोटे बच्चे भी चिन्तामग्न या उदास रहने से पीले पड़ जाते हैं।

कहते हैं, चिन्ता से चिता भली। चिता एक बार ही मनुष्य को जला-जलाकर खाक कर देती है; पर चिन्ता पिचाशिनी बड़े-बड़े दुःख देकर बुरी तरह से जलाती है। जिस पर चिन्ता की कृपा होती है, उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता और आयु भी कम हो जाती है। किसी ने सच कहा है—"Anxiety is the posion of life." चिन्ता जीवन का विष है *। अतः भूलकर भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। विपद् आने के पहले तूम्बी का तूफान करना मूर्खता है; क्योंकि अनेक बार जिस विपद् की आशंका ही आशंका में लोग उसके आने के पहले ही पूरे हो लेते हैं, वह आती भी है और कभी नहीं भी आती है इसलिये किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है—"Never trouble yourself with troubles, till trouble troubles you." जब तक दुःख न आये, तब तक अपने को दुःख से दुःखी न करो।

इसमें दोनों ही तरह हानि है। अगर विपद् न आई, तो शरीर का खुन-मांस जलाना, घरवालों को कष्ट देना और धन्धे-रोजगार को सत्यानाश में मिलाना वृथा ही हुआ। मान लो विपद् आई; तो आपका पहले से ही अपने बुद्धि, बल, साहस प्रभृति का क्षय कर लेना भला न हुआ; क्योंकि विपद् में मनुष्य इनके बल से ही छुटकारा पाता है। जो हर हालत में हँसता रहता है, उसके बल और बुद्धि नष्ट नहीं होते—उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है! । यदि दैवात् विपद् आ भी जाती है, तो वह आसानी से उसके पार हो जाता है। इसलिये दुःख में खुश ही रहना अच्छा है। महाकवि दाग ने खूब कहा है—

दिल दे तो इस मिजाज का परवरदिगार दे,
जो रंज की घड़ी भी खुशी में गुजार दे।

---

* "Care's an enemy of life,"—Shakespeare.

! "Cheerfulness is heath; the opposite melancholy is disease."—Haliburton.

"Cheerfulness is the very flover of health."-Schopenhauer.

विपद् में क्या करना चाहिये ?

जब तक विपद् न आये उससे घबराना न चाहिये। हां उसका खयाल जरूर रखना चाहिये। जब विपद् आ जाय, तब उसके नाश का यथोचित उपाय करना चाहिये। जो विपद् में फँसकर मोह से केवल रोता है, हर समय चिन्तित और शोकाकुल रहता है, उसका मन बीमार हो जाता है*। मन के बीमार होने से हाथ-पैरों का बल निकल जाता है; क्योंकि बल का सारा दार-मदार मन पर ही है। इसलिए विपद् में रोना, घबराना और चिन्तित रहना अपनी विपद् को बढ़ाना है। घबराने वाले की विपद् का अन्त नहीं आता। विपद् में मनुष्य को विचार बचाता है; इसलिये विपद् में विचार से काम लेना ही चतुराई है। अविचारवानों को विपद् पद-पद पर सताती है। कहा है:—

केवलं व्यसनस्योक्तं भेषजं नयपण्डितैः ।
तस्योच्छेदसमारम्भो विषादपरिवर्जनम् ॥

नीतिकुशल पण्डितों ने विपद् की एक ही मुख्य औषध कही है—"दुःख का नाश करने का उपाय करना और विषाद त्यागना।"

विपद् में धैर्य ही सच्चा रक्षक है

विपद् में अच्छे-अच्छे साहसिकों के साहस के दिवाले हो जाते हैं; बड़े-बड़े बहादुर घबरा उठते हैं। जो विपद् में घबरा जाते हैं और सब्र को हाथ से छोड़ देते हैं, वे शीघ्र ही मारे जाते हैं। विपद् में न घबराने वाले और धैर्यावलम्बन करने वाले बहुधा बच जाते हैं†। इसलिये विपद् में धैर्य को हर्गिज न त्यागना चाहिये। कहा है—

* "Cheerfulness is the best promoter of health and is as friendly to the mind as to the body."—Addison.

† The man, who in wavering times is inclined to be wavering only increases the evil and spreads it wider and wider, but the man of firm decision fashions the universe."
—Goethe.

"Who despises death escapes it; while it overtakes him who is afraid of it."—Curt.

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि दैवे धैर्य्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्सः ।
याते समुद्रेऽपि हि पोतभंगे सांयात्रिको वाञ्छति कर्म्म एव ॥

दैव के नाराज होने पर भी धीरज न छोड़ना चाहिये; क्योंकि धीरज से कदाचित् स्थिति सुधर जाय । जहाज के डूबने पर भी, पोत-वणिक उद्यम करने की ही इच्छा करता है ।

सारांश—विपद् में घबराओ मत, धीरज रखो; चित्त को चिन्ताओं से शुद्ध करके ठंडे दिमाग से विपद् से छुटकारा पाने के उपाय सोचो । परमात्मा की कृपा हुई, पुण्यबल हुआ, तो निश्चय ही आपकी बुद्धि द्वारा ही घोर विपद् से आपकी मुक्ति हो जायगी । विपत्ति में बुद्धि ही बचाती है इसपर हमें एक किस्सा याद आया है सुनिये:—

एक दिन एक बन्दर यमुना नदी में तैर रहा था । किसी घड़ियाल ने उसका पैर पकड़ लिया । बन्दर ने बहुत कुछ कोशिश की, पर घड़ियाल ने बन्दर का पैर न छोड़ा । इतने में एक दूसरा बन्दर किनारे से बोला—'अरे क्या हुआ ? क्यों रह गया ?' उसने जवाब दिया—'यार ! क्या बतायें, घड़ियाल ने एक लकड़ी अपने मुँह में दबा रखी है और समझता है कि उसने मेरा पैर पकड़ रखा है ।' यह सुनते ही घड़ियाल ने बन्दर का पैर छोड़ दिया । बन्दर की जान बच गई । अगर बन्दर घबरा जाता और होश भूल जाता, तो क्या वह बचता ? कहा है—

उत्पन्ने विपत्तिषु बुद्धिर्यस्य न हीयते ।
स एव दुर्गं तरति जलस्थो वानरो यथा ॥

विपत्ति में जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती, वह निश्चय ही बच जाता है ।

छीनं पत्र पल्लवित तरु छीन चन्द्र बढ़वार ।
यह लखि सज्जन दुःखहु, पाय न लहहि विकार ॥८८॥

88. A tree bieng pruned expands (anew). The moon after having lost her brightness is sure to regain it. Considering this the holy men do not feel much sorrow when they are beset by calamities in this world.

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलिभिद्भग्नः परैः सगरे
तद्युक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥८९॥

जिनके बृहस्पति के समान मन्त्री, वज्र-सदृश शस्त्र, देवताओं की सेना, स्वर्ग जैसा किला, ऐरावत-जैसा वाहन और स्वयं विष्णु भगवान का जिसपर कृपा है—ऐसे अनुपम ऐश्वर्य-वाला इन्द्र भी शत्रुओं से युद्ध में हारता ही रहा; इससे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थ वृथा और धिक्कार योग्य है । एकमात्र दैव ही सब की शरण है ॥८९॥

मतलब यही है, कि प्रारब्ध या दैव के मुकाबले मे पुरुषार्थ कोई चीज नही । जिस इन्द्र का इतना वैभव है और जिसके सिर पर स्वयं जगदीश्वर का हाथ है, वह इन्द्र भी युद्ध मे सदा हारता ही रहा—इस घटना को देखकर पुरुषार्थ को तुच्छ और देव को सर्वोपरि मानना ही पड़ता है । और भी दृष्टान्त लीजिये—

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधा धनदश्चवित्तम् ।
शास्त्रञ्च यस्योशनसा प्रणीतं स रावणो दैववशाद्विपन्नः ॥

जिसका किला त्रिकूट पर्वत, समुद्र खाई, राक्षस योद्धा, कुबेर से धन की प्राप्ति और जिसके यहां शुक्राचार्य-प्रणीत शास्त्र था, वह रावण भी दैव-वश नष्ट हो गया ।

'शुक्रनीति' में लिखा है—

कालानुकूल्यं विस्पष्टं राघवारयार्जुनस्य च ।
अनुकूले यदा दैवे क्रियाल्पा सुफला भवेत् ॥
महती सत्क्रियानिष्टफलास्यात्प्रतिकूलके ।
बलिदानेन संबद्धो हरिश्चन्द्रस्तथैव च ॥

रामचन्द्र और अर्जुन की काल-सम्बन्धी अनुकूलता संसार-प्रसिद्ध है। जब दैव अनुकूल होता है, तब स्वल्प क्रिया भी सफल होती है; किन्तु जब प्रारब्ध प्रतिकूल होता है, तब बड़े भारी सत्कर्म का फल भी अनिष्ट ही होता है। देखिये, बलि और राजा हरिश्चन्द्र दान करने से भी बन्धन में पड़े।

जो भीष्म वसुओं के अवतार थे, जो भीष्म देवताओं से भी अजेय थे, जिन भीष्म ने क्षत्रिय-कुलनाशक परशुराम जी को भी युद्ध में नीचा दिखाया था, जिनके जोड़ का योद्धा उस समय पृथ्वी पर दूसरा न था, उन्ही भीष्म की, गो-हरण के समय, विराट-नगरी में अर्जुन द्वारा पराजय हुई। जिस अर्जुन ने स्वर्ग में जाकर इन्द्र का कार्य-साधन किया, जिस अर्जुन ने अपने बाहुबल से पृथ्वी के समस्त राजाओं को पराजित करके धनदण्ड लिया, जिस अर्जुन ने भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के भी छक्के छुड़ा दिये, जिस अर्जुन ने महातेजस्वी सूर्यपुत्र कर्ण को युद्धक्षेत्र में परास्त कर दिया, जिस अर्जुन ने गन्धर्वों को भी अपनी युद्ध-कला-कुशलता से नीचा दिखा दिया, वही अर्जुन, प्रभासतीर्थ में यादव स्त्रियों की भीलों से रक्षा न कर सके! क्या यह कम आश्चर्य की बात है? परमात्मा की विचित्र गति है! उस लीलामय की लीलाओं को समझना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। सूरदासजी ने क्या खूब कहा है:—

दयानिधि! तोरी गति लखि ना परे ॥ टेक ॥
गुरु वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरे।
सीता-हरण मरण दशरथ को, विपति में विपति परे ॥
एक गऊ जो देत विप्र कों, सो सुरलोक तरे।
कोटि गऊ राजा नृग दीनो, सो भव-कूप परे ॥
पिता-वचन पलटे सो पापी, सो प्रहलाद करे।
जिनकी रक्षा कारण तुम प्रभु, नरसिंह-रूप धरे ॥
पाण्डवजन के आप सारथी, तिन पर विपत परे।
दुर्योधन को मान घटायो, यदुकुल नाश करे ॥
तीन लोक इस विपति के वश में, विपता वश ना परे।
सूरदास याको सोच न कीजे, होनी तो होके रहे ॥

and strengh. (This proves that) one should take shelter in Fate alone. (Dependence on) one's own energies is worthless.



कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥९०॥

यद्यपि मनुष्यों को कर्मानुसार फल मिलते हैं और बुद्धि भी कर्मानुसार हो जाती है; तथापि बुद्धिमानों को खूब सोच-विचार कर ही काम करने चाहिये ॥९०॥

बुद्धि कर्मानुसार कैसे हो जाती है ?

मनुष्यों को पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही बुरे या भले फल मिलते हैं। जैसे फल मिलने वाले होते हे, वैसी ही होनहार होती है, जैसी होनी होती है वैसी ही मनुष्य की बुद्धि हो जाती है। अगर भली होनी होती है, तो बुद्धि भली हो जाती है और अगर बुरी होनी होती है, तो बुद्धि बुरी हो जाती है। होनहार के आगे बड़े-से-बड़े बुद्धिमानों की भी नहीं चलती। वृन्द कवि महाशय कहते हैं —

जैसी हो होतव्यता तैसी उपजे बुद्ध।
होनहार हिरदै बसे बिसर जाय सब सुद्ध ॥
जैसी हो भवितव्यता तैसी बुद्धि प्रकाश।
सीता हरवे ते भयो रावण-कुल को नाश ॥
सब की समै विनाश में उपजत मति विपरीत।
रघुपति मारयो लंकपति जो हर ले गयो सीत ॥
मति फिर जाय विपत्ति में राव रंक इन रीत।
हेम हिरन पाछे गये राम गँवाई सीत ॥

जब मनुष्य की होनहार बुरी होती है, जब उसपर विपद् आनेवाली होती है, तब वह जान-बूझकर ऐसे काम करता है, जिससे विपद् न आती हो तो

उपस्थित होने पर बुद्धिमान-से-बुद्धिमान की बुद्धि मारी जाती है। अगर यह बात न होती, तो पण्डित-शिरोमणि रावण और विष्णु के अवतार जगदीश रामचन्द्रजी क्यों विपद् भोगते ? जब स्वयं राम और रावण से ही भूलें हुईं; तब और मनुष्यों की की क्या गिनती ?

फिर भी विचार कर काम करना चाहिये

कर्म-फलों के अनुसार बुद्धि हो जाती है, इसमें जरा भी शक नहीं; फिर भी नीतिज्ञ पण्डित विचार कर काम करने की सलाह देते है। विचार-पूर्वक काम करने से मनुष्य दोष का भागी नहीं होता और स्वयं उसके दिल में खटक नहीं रहती। 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के दूसरे सर्ग में कहा है—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

हठात् किसी काम को न करना चाहिये। बिना विचार काम करने से बड़ी भारी विपत्ति की सम्भावना रहती है। विचारपूर्वक काम करने वाले के पास गुण-लोभी सम्पत्तियाँ आप-से-आप आ जाती है।

सारांश—यह सच है कि बुद्धि होनहार के अनुसार हो जाती है। फिर भी; बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि वे खूब सोच-विचार कर काम करें। कहा है—

फलहू पावत कर्म तें, बुद्धिहु कर्म अधीन।
तद्यपि बुद्धि विचार के, कारज करो प्रवीन ॥९०॥

90. (Although) fruits are dependent upon actions and one's reason also follows the same, yet a wise man should do everything after considering it well.



खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥९१॥



किसी गंजे आदमी का सिर धूप से जलने लगा। वह छाया की इच्छा से, दैवात्, एक ताड़ के वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो गया। उसके वहाँ पहुँचते ही, एक बड़ा ताड़-फल उसके सिर पर बड़े जोर से गिरा। उससे उसकी खोपड़ी फट गई। इससे सिद्ध होता है कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है, उसकी विपत्ति भी प्रायः उसके साथ-ही-साथ जाती है ॥९१॥

किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है: —

अकृतेऽप्युद्यमे पुंसामन्यजन्मकृतं फलम् ।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना सन्नियोजितम् ॥
यस्मिन् देशे च काले च वयसा यादृशेन च ।
फलं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥

सुख ठौर जानि विरम्यो सुव, तहाँ इतै दुख को सहत ।
निर्भाग्य पुरुष जित जात तित, वैर विपति पीछहिं रहत ॥९१॥

91. A bald-headed man, his head being scorched by the rays of the sun, desirous of finding a shady place went under a Tala (palm) tree by ill-luck. There his head was broken by a big fruit falling on it with a great noise. Often wheresover an unlucky person may go, he is pursued by misfortunes.



शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं
गजभुजङ्गमयोरपि वन्धनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो वलवानिति में मतिः ॥९२॥

हाथी और सर्प को वन्धन में देखकर, सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगते देखकर और बुद्धिमानों को दरिद्री देखकर मेरी समझ में यही आता है कि विधाता ही सबसे वलवान है ? ॥९२॥

निस्सन्देह विधाता सबसे वलवान है। वह जो कुछ भाग्य में लिख देता है, उसे कोई वड़े-से-वड़ा नहीं मिटा सकता। कपाल के दोष से ही शिवजी नंगे रहते हैं और कपाल के दोष से ही विष्णु सर्प-शय्या पर सोते हैं। कुवेर के मित्र होने पर भी, महादेव जी चर्मवस्त्र पहनते और भिक्षा माँगते फिरते हैं। जो पक्षी सौ योजन की ऊँचाई से भी अधिक दूर से अपने भक्ष्य मांस को देख लेता है, वही, जव प्रारव्ध खोटा होता है, जाल के फन्दे को पास से भी नहीं देख सकता; क्योंकि भाग्य का लिखा होकर रहता है। कहा है—

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।

विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणासौ
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ॥

वह आकाश में विहार करने वाला, अन्धकार का नाश करने वाला, सहस्र किरणोंवाला, प्रकाशमान, तारागणों के बीच में घूमने वाला चन्द्रमा भी भाग्य-वश, राहु से ग्रसा जाता है। इससे सिद्ध है कि माथे पर लिखे को कोई मेट नहीं सकता।

रवि शशि निश दिन फिरें, ग्रहण सों पीड़ा पावें।
बृहत्काय गज तुरत, तन्तु लघु सों बँध जावें॥
महा भयंकर सर्प, मंत्र बस रहें मौन गह।
योगी अटल अकाय, होय कामी इक छिन महँ॥
मतिमान पुरुष दारिद्र-बस, या जग बिच घूमत रहै।
बलवान दैवगति है बड़ी, यह आश्चर्य सुकवि कहैं॥९२॥

92. Seeing the sun and the moon being attacked by an eclipse, the elephant and the serpent being made captive and the wise falling a prey to poverty, I conclude that Fats is a powerful thing.

❦

सृजति तावदशेषगुणाकरं
पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभंगिकरोति चेत्
अहह कष्टमपण्डितता विधेः॥९३॥

बड़े ही दुःख की बात है कि विधाता सब गुणों की खान और पृथ्वी के भूषण पुरुषरत्न को सिरज कर भी, उसकी देह को क्षण-भंगुर कर देता है। इससे विधाता की मूर्खता ही प्रकट होती है॥९३॥

मनुष्य, अशरफुल मखलूनात—ईश्वर की सृष्टि की शोभा और पृथ्वी का भूषण होने पर भी, क्षणभगुर है—उसकी आयु कुछ नही। वह पानी के बुलबुले की तरह क्षण-भर मे ही नष्ट हो जाता है। ब्रह्मा गुणो की खान—पृथ्वी की शोभा-रूप मनुष्यों को बनाता है, यह तो अच्छी बात है; पर उसे पलक मारते नष्ट कर देता है, यह दुःख की बात है। यह विधाता की मूर्खता नही तो क्या है ? यदि वह मनुष्य को सदा स्थिर रहने वाला अजर और अमर बनाता, तो अच्छा होता। इसमे उसकी बुद्धिमत्ता दीखती; क्योंकि अपने बाग मे आप ही वृक्ष लगाकर, आप ही जल सींच कर और बढाकर, अपने ही हाथों से उसे कोई नही काटता। जो ऐसा करता है वह मूर्ख ही समझा जाता है।

सार—मनुष्य क्षणभगुर है; पलक मारते नष्ट होता है। और चीजो की उम्र है, पर मनुष्य की कुछ भी उम्र नही; इसलिये इस चपला की चमक के समान चञ्चल धन, यौवन और जीवन पर अभिमान न करके, दिन-रात परोपकार करना चाहिये। अपना एक दिन और एक क्षण भी परोपकार और परमात्मा के नाम बिना न गँवाना चाहिये। नीचे के भजन और गजल प्रभृति से गलफत की नीद मे पडे हुए पाठकों को होश हो जायगा।

भजन

[राग काफी]

मुखड़ा क्या देखे दर्पन में, तेरे दया धरम ना मन में।'टेक॥
हरी-हरी पाग केसरिया जामा, सोहत गोरे तन में।
वा दिन की तोहे खबर नहीं, जब आग लगेगी तन में॥१॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, सुरत लगी है धन में।
जब जमदूत पकड़ ले जायें, रह जाय मन की मन में॥२॥
अम्ब की डाली तोता राजी, कोयल राजी बागन में।
घरबारी तो घर में ही राजी, साधु राजी बन में॥३॥
ऐंठत चलत मरोड़त मूँछें, तेल चुवे जुलफन में।
कहें कबीर भाई ऐसा हिजडा, कैसे लड़ेगा रन में ?॥३॥

गजल

रहेगी मुख पर ये आब कब तक, रहेगा साहब शबाब कब तक ।
यह नीद गफलत का ख्वाब कब तक, बचोगे आखिर जनाब कब तक ॥१॥
यह शानशौकत गजब नजाकत, ये नाजनखरें अजब कयामत ।
यह जुल्म जोरो सितम शरारत, बने रहोगे नवाब कब तक ॥२॥
है चन्दरोजा बहार गुलशन, न ये हमेशा रहे जवानी ।
फरेब दे-दे पुलाव जर्दा, पकेगा कीमाँ कबाब कब तक ॥३॥
सताते हो बेगुनाह नाहक, किस घमण्ड में फिरो हो भूले ।
डरो भी यारो गजब खुदा से, करोगे लाखों अजाब कब तक ॥४॥
रोते चले गये यहाँ से कितने, तुम्हीं अनोखे नहीं सितमगर ।
खेलोगे छुप छुप के दाव कब तक, चलेगी पट पर ये नाव कब तक ॥५॥
झूठी हजारों बातें बनाते, बदी से अब तक न बाज आते ।
लाखों गले पर छुरी चलाते, रहे यह कातिल खिताब कब तक ॥६॥
गरीबों का जब गला दबाते, तरस न दिल में जरा भी खाते ।
हरामजादों को जर लुटाते, उड़े यह गुलगूँ शराब कब तक ॥७॥
कजा का पैगाम है आने वाला, चलोगे आखिर करके मुँह काला ।
पूछेगा हाकिम इसका हवाला, दोगे आखिर जवाब कब तक ॥८॥
दुनिया मे है ये दो दिन का मेला, हिलमिल के रहना है सब को लाजिम ।
इस चार दिन की ही चांदनी में, करोगे हमसे हिजाब कब तक ॥९॥
यह उमदा मौका मिले न हरदम, ए सोने वाले विचार देखो ।
अब खोल आंखें दुनिया को देखो, रहेगा मुँह पर नकाब कब तक ॥१०॥

वेदार होकर वलदेव जल्दी, अव याद हक में लगा दे दिल को ।
पड़ा रहेगा वुतों के दर पर; वता दे खाना खराव कव तक ॥११॥

भजन सोरठा

जोवन धन पावना दिन चारा, याको गर्व करे सो गँवारा ॥टेक॥
हाड़ माँस का वना पींजरा, भीतर भरा भँडारा ।
रंग पतंग लगायो ऊपर, कारीगर करतारा ॥१॥
पशू चाम की वनत पनहिया, नौवत और नकारा ।
या देही को कछु न वनैगो, समुझत नाहि गँवारा ॥२॥
एक लख पुत्र सवा लख नाती, पुत्र-पौत्र परिवारा ।
ऐसा मर्द गर्द में मिल गया, लंका का रखवारा ॥३॥
यह संसार हाट का मेला, वाणिज करो व्योपारा ।
कहत कवीर सुनो भाई साधो, हरि भज उतरो पारा ॥४॥

गज़ल

उठ जाग रे मुसाफिर, किस नींद सो रहा है ।
जीवन अमूल्य प्यारे, क्यों मुफ्त खो रहा है ॥१॥
रहा न याँ पै होगा, दुनिया सराय फानी ।
फँस कर वदी में प्यारे, क्यों मस्त हो रहा है ॥२॥
ले ले धरम का तोषा, मत भूल ऐ दीवाने !
नेकी की खेती कर ले, क्यों पाप वो रहा है ॥३॥
माता पिता वो भाई, होंगे न कोई साथी ।
क्यों मोहरूपी वोझा, नाहक को ढो रहा है ॥४॥
किश्ती तेरी पुरानी, हिकमत से पार कर ले ।
ऐ दिल ! अथाह जल में, तू क्यों डुवो रहा है ॥५॥

गजल

नर तन को पाके मूरख, खोता फिजूल क्यों है ।।टेक।।
सुत मित्र बन्धु मित्र दारा, समझे तू किसको प्यारा ।
मतलब की है ये दुनिया, रोता फिजूल क्यों है ।।१।।
जिससे तू यारी करता, कुर्बान हो हो मरता ।
अश्कों से अपने मुँह को, धोता फिजूल क्यों है ।।२।।
यारों यार हैं बहुरंगे, दो दिन के तेरे संगी ।
नफरत का बीज दिल में, बोता फिजूल क्यों है ।।३।।
क्यों बनता है दीवाना, जग है मुसाफिरखाना ।
ईश्वरराह से बेहूदे, सोता फिजूल क्यों है ।।४।।
परदेश सामद सौदाई, सुध-बुध कहाँ गँवाई ।
दलका कुत्तों के पीछे, रोता फिजूल क्यों है ।।५।।

धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥९४॥

अगर करील के पेड़ में पत्ते नहीं लगते, तो इसमें वसन्त का क्या दोष है ? अगर उल्लू को दिन में नहीं सूझता, तो इसमें सूर्य का क्या दोष है ? अगर पपीहे के मुख में जलधारा नहीं गिरती, तो इसमें मेघ का क्या दोष है ? विधाता ने जो कुछ भाग्य में लिख दिया है, उसे कोई मिटा नहीं सकता ॥९४॥

कहा है—

कोऊ दूर न कर सकै, विधि के उल्टे अंक ।
उदधि पिता तउ चन्द्र को, धोय न सक्यो कलंक ॥

और भी कहा है—

यद्दैवेन ललाटपट्टलिखितं तत्प्रोज्झितं कः क्षमः ।

कहा वसन्तहि दोष, करीरहि पात न आहीं ।
उल्लुहि लगे अँधार दिवस, रवि दूषण नाहीं ॥
जो चातक मुख माहिं, पड़ै नहिं जल की धारा ।
दूषण देवै योग नहीं, घन देख विचारा ॥
यह सत्य जानु रे जीव जो, लिखे भाल में अंक विधि ।
कह हरिजन इहि जग तेही, मेटनहार न कोय विधि ॥९४॥

94. If no leaves sprout from a Karira tree, when is the fault of the Spring ? If an owl can not see in the day, is the sun to blame ? If the drops of rain do not fall into the mouth of a Chataka bird, surely the could is not responsible

for it. Whatever the God Brahma has destsned to be the fate of a man (has written on his forhead) can not be effaced by any one.



कर्म-प्रशंसा



नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोपि प्रतिनियतकर्मफलप्रदः ।
फलं कर्मायित्तं किममरगणैः किं च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥९५॥

देवताओं को हम वन्दना करते हैं, पर वे सब विधाता के अधीन दीखते हैं, इसलिये हम विधाता की वन्दना करते हैं। पर विधाता भी हमारे पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ही फल देता है। जब फल और विधाता दोनों ही कर्म के वश में हैं, तब देवताओं और विधाता से क्या मतलब? कर्म ही सर्वोपरि है; इसलिये हम कर्म को नमस्कार करते हैं, जिसके खिलाफ विधाता भी कुछ नहीं कर सकता ॥९५॥

असल में कर्म ही सर्व प्रधान है। मनुष्य जैसा कर्म करता है, विधाता उसे वैसा ही फल देता है। इसमें विधाता न तो किसी तरह की रियायत ही कर सकता है और न कर्म के विपरीत ही फल दे सकता है। मतलब यह है, हमने जो कर्म किये हैं, उनके अनुसार ही फल हमें मिलेंगे। हम देवताओं की लाख खुशामद करें, वे कर्म के खिलाफ कुछ भी कर नहीं सकते। वे तो क्या स्वयं विधाता भी रेख पर मेख नहीं मार सकता। जो लोग दुःख के समय परमात्मा को बुरा-भला कहा करते हैं, वे बड़े ही नासमझ हैं। परमात्मा न

किसी को सुख देता है और न दुःख। सुख-दुःख मनुष्य के प्रारब्धाधीन हैं। प्रारब्ध मनुष्य के किये हुए कर्मों से बनता है; इसलिये मुख्य कर्म है।

सार—कर्म प्रधान है; विधाता भी कर्म के अधीन है।

वन्दहु सुर ते जानि वस, विधि कों वन्दी ताहि ।
देत विरञ्चिहु कर्म फल वन्दौ कर्म सदाहि ॥९५॥

95. We salute the gods, but really they are under rhe authority of Brahma. We salute Brahma, but he only awards the natural fruits of our various actions. Hence what have we to do with either Brahma or the most of gods? Let us then salute the actions which even Brahma can not go against.

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥९६॥

जिस कर्म के वल से ब्रह्मा इस ब्रह्माण्डभाण्डोदर में सदा कुम्हार का काम कर रहा है, विष्णु भगवान दस अवतार लेने के महासंकट में पड़े हुए हैं, रुद्र हाथ में कपाल लेकर भीख माँगते रहते हैं और सूर्य आकाश में चक्कर लगाता रहता है, उस कर्म को हम नमस्कार करते हैं ॥९६॥

किसी कवि ने और भी कहा है—

रामो येन विडम्बितो नघुमयश्चन्द्रः कलङ्कीकृतः
क्षाराम्बु सरितांपतिश्च नहुषः सर्पः कपाली हरः ।

माण्डव्यो मुनि शूलपीडिततनुर्भिक्षाभुजः पाण्डवाः
नीतो येन रसातलं बलिरसौ तस्मै नमः कर्मणे ॥

राम को जिसने वन-वन फिराया, सुन्दर चन्द्रमा को कलंक लगाया, समुद्र को खारा किया, नहुष को सर्प बनाया, महादेव को कापालिक बनाया, माण्डव मुनि को सूली पर चढ़ाया, पाण्डवों से भीख मँगाई और राजा बलि को जिसने पाताल पठाया, उस कर्म को नमस्कार है।

सारांश यही है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश और भास्कर भगवान—ये सभी कर्म के अधीन है। इनके कर्मानुसार, इनके प्रारब्ध में जो लिखा है, वही ये करते हैं। ये भी स्वाधीन नहीं, कर्म के अधीन हैं; इसलिये कर्म इनसे बड़ा है।

विधि को कियो कुम्हार जिन, हरि को दस अवतार।
भीख मँगावत ईश सों, ऐसो कर्म उदार ॥९६॥

96. Let us salute the actions that have given Brahma the duty of creating (the different objects in) the world like a potter making (all sorts of earthen vessels, that have thrown Vishnu into the great inconvenience of undergoing the ten incarnations, that have made Shiva go a-begging with a mendicant's cup in his hand and that cause the sun to be always wandering in the sky.



नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥९७॥

मनुष्य को सुन्दर आकृति, उत्तम कुल, शील, विद्या और खूब

अच्छी तरह की हुई सेवा—ये सब कुछ फल नहीं देते; किन्तु पूर्वजन्म के कर्म ही, समय पर, वृक्ष की तरह फल देते हैं ॥९७॥

वृक्ष जिस तरह समय पर अनेक फल देता है, उसी तरह पहले जन्म के किये हुए कर्म भी, समय पर अपना बुरा या भला फल देते हैं। सुन्दर सूरत-शक्ल, शील, विद्या और उत्तम सेवा से कुछ भी लाभ नहीं होता। किसी कवि ने खूब कहा है—

भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम् ।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥

सब जगह भाग्य फलता है; विद्या और पौरुष नहीं फलते। हरि और हर दोनों ने मिलकर समुद्र मथा; पर हरि को लक्ष्मी मिली और महादेव को विष।

शेख सादी भी कहते हैं:—

हुनरवर जो बख्तश न बाशद बकाम ।
बजाये रवद केश न दानन्द नाम ॥

जब भाग्य अनुकूल नहीं होता, तब हुनरमन्द जहाँ जाता है, वहीं उसको कोई नहीं पूछता—अथवा वह जाता ही ऐसी जगह है, जहाँ उसका कोई नाम तक नहीं लेता।

गिरधर कविराय कहते हैं:—

भाग्य सर्वत्र फलत है न च विद्या पौरुष सरल ।
हरि हर सागर मथ्यो हर को मिल्यो गरल ॥
हर को मिल्यो गरल, हरि ने लक्ष्मी पाई ।
घट भाग दो सम्पन्न, भाग की कही न जाई ॥
कह गिरधर कविराय, कोऊ मिल खेलें फाग ।
कोऊ हमेशा रोवें, आयो अपने भाग ॥

उस्ताद ज़ौक ने भी कहा है:—

चित्र नं० २०



क़िस्मत से ही लाचार हूँ, ऐ ज़ौक वगर्ना ।
सब फ़न में हूँ मैं ताक़, मुझे क्या नहीं आता ॥

भाग्य से ही लाचार हूँ, वर्ना कौन-सा है, जिसको मैं अच्छी तरह नहीं जानता ? मुझे क्या नही आता ?

योगिराज ने बहुत ही ठीक बात कही है। रोज आँखों से देखते है कि बड़े-बड़े विद्वान और उद्योगी मारे-मारे फिरते है, पूरा खाना-कपड़ा भी नसीब नही होता। दूसरी ओर ऐसे लोग भी नजर आते है, जो एक अक्षर भी पढ़े-लिखे नही; जिन्हें धोती बाँधना और बात करना भी नही आता; पर वे सहज मे ही, मामूली से उद्योग से लाखो-करोड़ों के स्वामी हो जाते हैं। इन बातों से साफ मालूम होता है कि सभी अपने-अपने कर्मानुसार फल पाते है।

जिन्होंने पूर्व जन्म मे अच्छे कर्म नहीं किये है, जिन्होंने कुछ भी नही बोया है, वे इस जन्म में कैसे काट सकते है ? जिसने आम बोये है, वह आम पाता है; पर जिसने बबूल बोये है, वह आम कैसे पा सकता है ? पूर्व जन्म के अच्छे या बुरे कर्मों का फल मिलता है, पर समय पर ही मिलता है; क्योंकि वृक्ष अपने मौसम मे ही फल देता है। कहा है—

काल पाय ही फलत है, शुभरु अशुभ निज कर्म ।
ग्रीषम बोये धान ज्यों, फलत शरद यो मर्म ॥

मनुष्य ख़ूब याद रखे कि इल्म, अक्ल, ख़ूबसूरती और की हुई मिहनत में कोई फायदा नहीं—इनसे सुख नहीं मिलता। सुख मिलता है तो पहले जन्म के किये हुए पुण्यों से। यदि पुण्य होते है, तो उत्तम फल मिलता है, पर समय पर। इसलिये कभी अधीन और निराश न होना चाहिये। कर्म को मुख्य समझ कर सन्तोष करना चाहिये।

सार—सुख एकमात्र पूर्व जन्म के पुण्यों से मिलता है।

भजन (राग देश)

जब टेढ़े दिन आवें ऊधो, टेढ़े दिन जावें ॥टेर॥
कञ्चन धूल होत कर माटी, माँगे भीख न पावै ॥

यार-दोस्त मुख से ना बोलें, ढिग बैठत सकुचावें ।।
पढ़ा लिखा कुछ काम न आवे, मूरख ज्ञान सिखावें ।।
टेढ़ी लोंडी बनी कूबरी, जाको कंठ लगावें ।।
चन्द्रकला सी बनी राधिका, ताकूँ जोग पठावें ।।
अपना-अपना भाग सखी री, काकू दोष लगावें ।।
सूरदास विधना के अक्षर, तिल भर घटन न पावें ।।

कर्म-फल अपरिहार्य है—सबको भोगना ही पड़ता है।

विद्या आकृति शील कुल, सेवा फल नहिं देत ।
फलत कर्महु समय में, ज्यों तरु फलत समेत ।।९७।।

97. A fine shape, a high family, good manners, knowledge or willing service are of no avail. Only the good actions done in a previous birth bear fruit at the proper time, just as trees do.



वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषयस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ।।९८।।

वन में, रण में, शत्रुओं में, आग में, समुद्र अथवा पर्वत की चोटी पर, सोते हुए, गाफिल या आफत में पड़े हुए मनुष्य की रक्षा, पूर्व जन्म के पुण्य ही करते हैं ? ।।९८।।

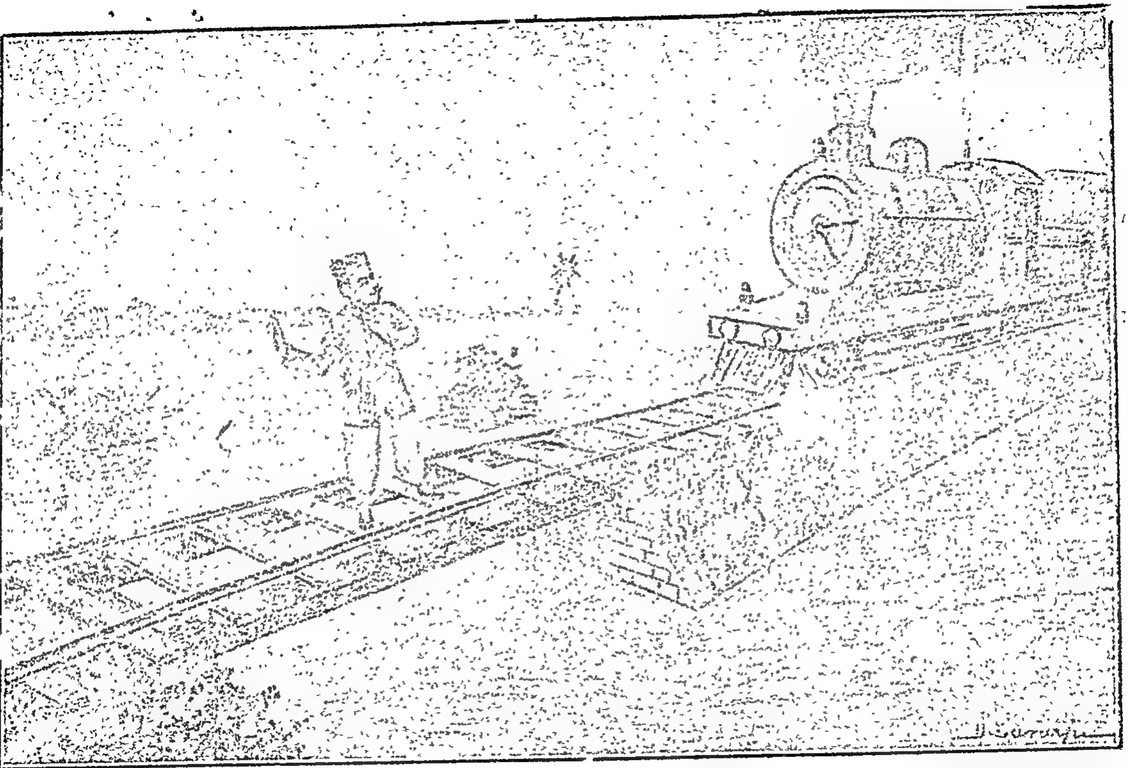
मनुष्य चाहे गहन वन में हो, चाहे भीषण रणक्षेत्र में हो, चाहे शत्रुओं के जाल में हो, चाहे अग्नि के बीच में हो, चाहे अगाध जल में हो, चाहे पहाड़ की चोटी पर बेहोश पड़ा हो और चाहे और किसी भयंकर आफत में हो—अगर उसके पूर्व जन्म के शुभ कर्म होते हैं, तो वह सब खतरों से बच जाता है;

अगर पूर्व जन्म के कर्म नहीं होते, तो वह मर जाता है या कष्ट भोगता है। नीति में कहा है:—

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ॥

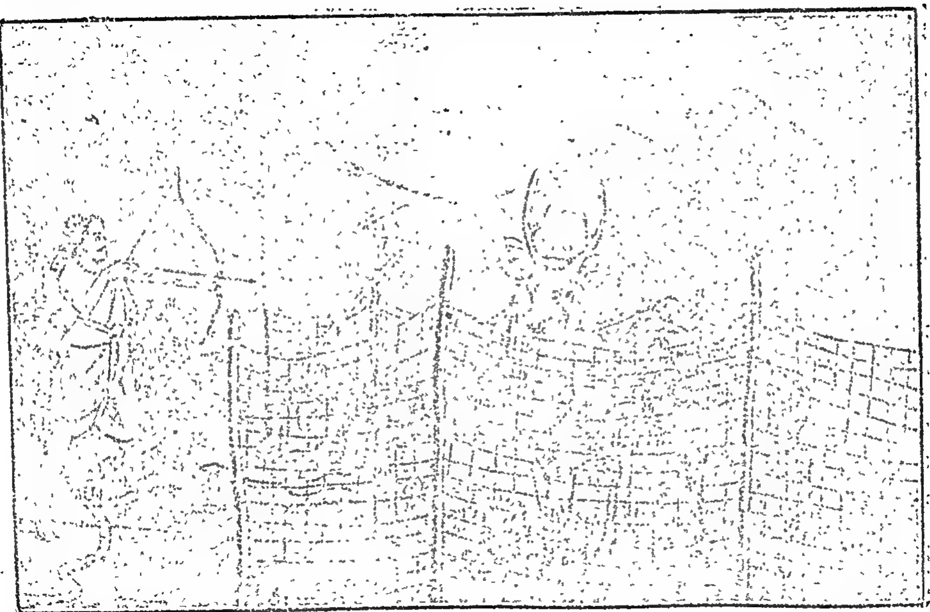
स्तान की बालू जलकर अंगारवत् हो रही थी। उस समय कन्या को लेकर राह चलने से माता के भी मर जाने का भय था, इसलिये पति के बारम्बार समझाने से माता अपनी आँखों की पुतली को वहाँ ही छोड़ देने पर राजी हो गई। पिता ने कन्या को एक जगह लिटा दिया और दोनों राह चलने लगे। थोड़ी दूर चलकर ही माता ने कहा—"मैं मर भले ही जाऊँ, पर अपनी बच्ची को यहाँ न छोड़ूँगी।" लाचार होकर, पति फिर कन्या को लेने गया। पर वहाँ पहुँचते ही देखता क्या है कि एक बड़ा भारी कालसर्प कन्या के ऊपर अपने फन से छाया किये हुए बैठा है। पिता की हिम्मत कन्या को वहाँ से उठाने की न पड़ी। वह लौटने लगा। इतने में सर्प उसका मतलब समझकर वहीं लुप्त हो गया और अपनी पुत्री को छाती से लगाकर ले आया। अगर उस नवजात कन्या के पूर्व जन्म के शुभ कर्म न होते, तो वह क्षण-भर में ही उस अङ्गार-समान तपती रेती पर जलकर प्राणत्याग कर देती। पूर्व जन्म के शुभ कर्मों ने ही सर्प बनकर उसकी रक्षा की।

एक बार स्वय हम पर ही बीत चुकी है मुसीबत के मारे, एक दिन हम जंगल में रेल की सड़क-सड़क चल रहे थे। सिन्धु नदी के फट जाने या बाढ़ आने से सैकड़ों कोस तक जल-ही-जल हो गया था। कहीं किनारा या वृक्ष इत्यादि दिखाई न देते थे। चलते-चलते हम एक रेलवे पुल पर पहुँचे। पुल के नीचे अथाह जल, दोनों ओर दाहिने बायें अगम्य जल। ऊपर आकाश और नीचे जल ही जल था। उस अनन्त जलराशि के बीच में पाँच-सात फुट चौड़ी रेल की लाइन मात्र दीखती थी। जल की भयङ्कर गर्जना से हृदय काँपता था। अगर पुल पर मनुष्य हो और रेल-गाड़ी आ जाय, तो उसकी रक्षा का कोई उपाय न था। हम डरते हुए जा रहे थे, कि कहीं पुल पर हमारे रहते हुए ट्रेन आ गइ तो हमारे प्राण न बचेंगे। आखिरकार, जिस बात की आशङ्का थी, वही हुई। हम पुल के बीच में पहुँचे और पुल के उस कोने पर हमें रेलगाड़ी का इञ्जन दीखा। हमारे प्राण काँप उठे, पर हमने उस नाजुक समय में घबराना उचित न समझा। तत्काल बचने का उपाय सोचा। पीछे पटरियों के बीच में, हम एक जरा गहरा-सा खड्डा देख आये थे। पलक मारते-मारते हम गड्ढे में



दो ओर अगम जल, सामने धड़धड़ाती मेल ट्रेन, ऐसे संकट के समय में पूर्व जन्म के पुण्यों ने ही इस ग्रन्थ के अनुवादक की प्राण रक्षा की।

चित्र नं० २२



जाको राखे साइयाँ, मार सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय।

जमीन पकड़ चिपट गये। एक क्षण में ही यह सब काम हुए। रेल धड़धड़ाती हुई हमारे सिर के ऊपर होकर निकल गई। पूर्व जन्म के शुभ कर्मों से हमारी जीवन-रक्षा हो गई। किसी ने ठीक ही कहा है—

निमग्नस्य पयोराशौ पर्वतात् पतितस्य च।
तक्षकेनापि दष्टस्य त्वायुर्मर्माणि रक्षति॥

अगाध जल में डूबे हुए की, पर्वत से गिरे हुए की और साँप के काटे हुए की पूर्व जन्म के पुण्यबल या आयुर्बल से ही रक्षा होती है। और भी कहा है—

नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि।
कुशाग्रेणैव संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति॥

सौ बाणों से बिंधा हुआ शरीरधारी भी बिना समय नहीं मरता; पर काल आने पर कुशा की नोक छू जाने पर ही मर जाता है। किसी कवि ने कहा है—

जाको राखें साँइयाँ, मार सके नहि कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग वैरी होय॥

हमें दो दृष्टान्त और याद आये हैं; उन्हें अपने प्यारे पाठकों की भेंट किये बिना हमारा जी नहीं मानता।

शिकारी और हिरन

एक शिकारी ने दो ओर, दाहिने-बाये, जाल लगा दिया सामने की तरफ जङ्गल में आग लगा दी और चौथी ओर अपना कुत्ता लेकर आप खड़ा हो गया। उस जाल के बीच में एक हिरनी मय अपने बच्चे के घिर गई। जब हिरनी घिर गई, तब शिकारी ने अपना कुत्ता छोड़ा और आप तीर-कमान लेकर तीर छोड़ने लगा। हिरनी न दाहिने जा सकती थी, न बांये और न सामने ही; क्योंकि दो ओर जाल और तीसरी ओर आग जल रही थी। सामने की ओर शिकारी और उसका कुत्ता था। हिरनी ने अनाथनाथ जगन्नाथ को याद किया। आकाश में फौरन ही बदली छाई और बिजली चमकने लगी। शिकारी का पैर एक सर्प ने पकड़ लिया और कुत्ते पर बिजली गिरी। इस तरह

जगदीश ने हिरनी और उनके बच्चे की प्राणरक्षा की। परमात्मा की विचित्र लीला है। जिसे वह बचाना चाहता है, उसे कौन मार सकता है * ?

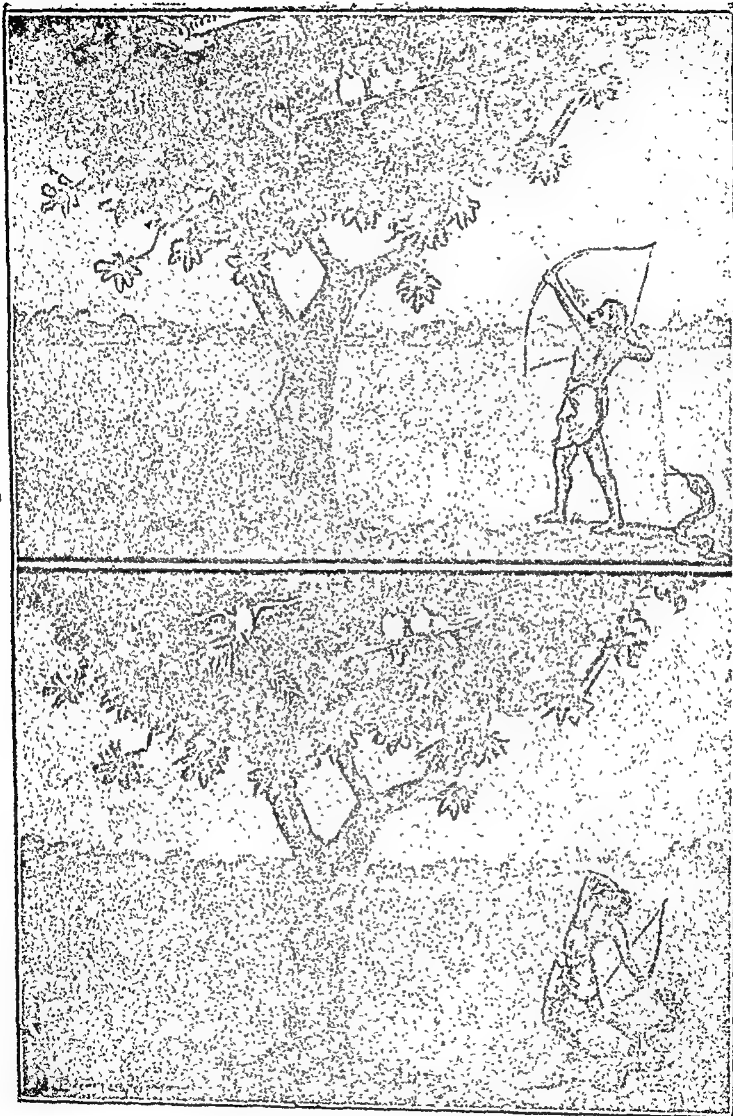
कबूतर और शिकारी

एक वृक्ष पर एक कबूतर और कबूतरी का जोड़ा बैठा हुआ था। इतने मे एक शिकारी वहाँ पहुँचा। उसने इनके मारने को निशाना लगाया। इतने मे एक बाज भी कही से उड़ता हुआ वही आ पहुँचा। उसने भी अपनी घात लगाई। नीचे शिकारी और ऊपर बाज—इन दोनो के बीच में वह कबूतर का जोडा पड़ गया। मृत्यु-मुख में जाने मे कोई कसर न रही। यह हालत देखकर, कबूतरी ने अपने पति से घबराकर कहा—"हे नाथ! काल सिर पर आ गया! देखिये, नीचे शिकारी कमान पर तीर चढाये खड़ा है और क्षणमात्र मे तीर छोड़ना ही चाहता है। ऊपर बाज इसी घात मे उड़ रहा है और झपट्टा मारना ही चाहता है। अब प्राणरक्षा कैसे हो?" मारनेवालो से बचाने वाला बड़ा जबर्दस्त है। शिकारी ने ज्यो ही कमान से तीर छोड़ना चाहा, कि एक सर्प कही से आकर उसके पैरों मे चिपट गया और उसे डस लिया। इससे शिकारी का निशाना कबूतर के जोड़े की सीध से हटकर बाज की ओर हो गया और तीर छूटते ही बाज के जा लगा। इस तरह बाज और शिकारी दोनो काल के गाल मे समा गये और कबूतर का जोड़ा, जिसके प्राणनाश मे जरा भी देर नही थी, अपने पूर्व जन्म के पुण्यबल अथवा जगदीश की दया से बाल-बाल बच गया। दैव की गति बड़ी विचित्र है।

बन रन जल अरु अग्नि में, गिरि समुद्र के मध्य।
निद्रा मद अरु कठिन थल, पूरब पुन्यहि सध्य ॥९८॥

98. Virtuous deed done in a previous birth guard a person in the forest, in a battle, from an enemy, in the midst of water or fire, on the ocean and on the top of a mountain whether he is asleep, unconscious or fallen into an awkward position.

* If God is our defence, who his against us ?



यद्यपि इस चित्र के कबूतर के जोड़े की मृत्यु होने में तनिक भी कसर नहीं थी, तथापि ईश्वर की दया और अपने पूर्व जन्म के कर्मों के फलों से वे बाल-बाल बच गये।

या साधूंश्च खलान्करोति विदुपो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं
हे साधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेस्वास्थ्यां वृथा मा कृथाः ॥८८॥

हे सज्जनो ! अगर आप मनोवांछित फल चाहते हैं, तो आप और गुणों के संग्रह करने में कष्ट और हठ से वृथा परिश्रम न करके, केवल सत्क्रिय-रूपी भगवती की आराधना कीजिये। वह दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को पण्डित, शत्रुओं को मित्र, गुप्त विपयों को प्रकट और हलाहल विप को तत्काल अमृत कर सकती हैं ॥८८॥

खुलासा—अगर आप इस जगत में अपनी इच्छानुसार सुख भोगने की अभिलाषा रखते है, तो आप और गुणों के संग्रह करने में वृथा परिश्रम न करें, इसके लिये आप केवल 'सदाचरण' की सच्ची आराधना कीजिये। सदाचरण (Good conduct) में दुष्ट को सज्जन, मूर्ख को पण्डित, शत्रु को मित्र, परोक्ष को प्रत्यक्ष और हलाहल विप को तत्काल अमृत कर देने की सामर्थ्य है। 'शुक्रनीति' मे कहा है—

भवतीष्टं सत्क्रिययानिष्टं तद्विपरीतया ।
शास्त्रतः सदसज्ज्ञात्वा त्यक्त्वाऽसत्सत्समाचरेत् ॥

अच्छे कामों से अच्छा और बुरे कामों से बुरा फल मिलता है; इसलिये शास्त्र-द्वारा अच्छे और बुरे का ज्ञान प्राप्त करके बुरे कामों को त्याग दो और अच्छे काम करो।

संसार में जितने ऋषि, मुनि और अवतार तथा पैगम्बर हुए हैं, सभी ने जगत के प्राणियों को सदाचार करने का उपदेश दिया है; इसलिये सदाचार की जरा लम्बी-चौड़ी व्याख्या करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सदाचार इस जगत का व्यवस्थापक नियम है। सदाचार-रूपी स्तम्भों पर

ही यह जगत ठहरा हुआ है। अगर पृथ्वी से सदाचार उठ जाय, तो शायद प्रलय ही हो जाय।

सदाचारी सारे संसार को अपना ही समझता है; सबके दु:खों में सहानुभूति प्रकट करता है; सत्यपरायणता; क्षमा, दया प्रभृति सद्गुणों को धारण करता है और प्राण सकट में आने पर भी, न्यायमार्ग से विचलित नहीं होता। सदाचारी सब प्राणियों को प्रेम की नजर से देखता हुआ मधुर भाषण करता है, किसी से भी कठोर वचन नहीं कहता और परोपकार को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझता है। सदाचारी के जो मन मे होता है, वही कहता है; और जो कहता है, वही करता है तथा प्राणनाश की सम्भावना होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग नही करता। सदाचारी की हँसी में कही हुई बात भी पत्थर की लकीर होती है। सदाचारी मिथ्या, कपट, अन्याय, अनीति, अत्याचार, कठोर भाषण, प्रतिज्ञा-भंग, विषयासक्ति क्रोध, लोभ, मोह, मद और अभिमान प्रभृति दुर्गुणों से हजार कोस दूर भागता है। सदाचारी कर्त्तव्यपालन को हरदम तैयार रहता है; क्योंकि कर्त्तव्य-परायण ही सदाचार का उच्च स्वरूप है।

सदाचारी अपने विशुद्ध और निर्मल चरित्र तथा अपनी प्रामाणिकता और शुद्ध वासना से जगत को अपने वश में कर लेता है। संसार उसका विश्वास करता है और उसके इशारों पर नाचता है। नाचता ही नहीं—उसकी आज्ञा से प्राण तक देने को तैयार रहता है। जगत के प्राणिमात्र उसकी वन्दना करते है। सदाचारी, अपनी कठिन तपस्या के कारण, सबका पूजनीय होता है। सदाचारी ऊँची-से-ऊँची पदवी पाता और संसार के सभी सुख भोगता है। सदाचारी का शत्रु कोई नहीं; सभी उसके हितैषी मित्र होते है।

आज तक इस धरा-धाम पर जितने ऋषि मुनि और अवतार-औलिया हुए है, उन सबकी उतनी प्रतिष्ठा और ईज्जत केवल उनके सदाचार के कारण से ही हुई है। सदाचारी होने की वजह से ही, उनकी ईश्वर के समान पूजा और आराधना होती है। महात्मा बुद्ध, हजरत ईसा और हजरत मुहम्मद साहब

के करोड़ों अनुयायी उनके सदाचार के कारण से ही हुए हैं। सदाचार के कारण ही राम और कृष्ण भगवान माने जाते हैं।

सदाचारियों के सिर पर तलवार रख दी जाय, उन्हें फाँसी का भय दिखाया जाय, उन्हें आग में जलाया जाय, अथवा उन्हें दुनिया की बड़ी-से-बड़ी न्यामत का लालच दिखाया जाय, पर वे अपना आचरण कभी खराब नहीं करते। रावण ने सीता माता को बहुत डराया, धमकाया और लालच भी दिखाया; पर वह सती अपने सत पर डटी रहीं; उन्होंने अपने चरित्र में जरा भी धब्बा नहीं लगाया और अपना शील नहीं छोड़ा। इसलिये आज तक उनका नाम है और यावत् चन्द्र-दिवाकर इसी तरह रहेगा। देखिये, जगज्जननी रावण से क्या कहती है:—

भजन [राग कव्वाली]

अरे रावण ! तू धमकी दिखाता किसे ?
मुझे मारने का खौफो खतर ही नहीं।
मुझे मारेगा क्या ? अपनी खैर मना,
तुझे होनी की अपनी खबर ही नहीं ॥१॥
क्या तू सोने की लंका का मान करे ?
मेरे आगे यह मिट्टी का घर ही नहीं।
मेरे मन का सुमेरु हिलेगा नहीं,
मेरे मन में किसी का भी डर ही नहीं ॥२॥
क्यों न जीत स्वयंवर में लाया मुझे,
मेरी चाह जो मन में थी तेरे बसी।
था तू कौन से देश में यह तो बता,
क्या स्वयंवर की पहुंची खबर ही नहीं ॥३॥

तू ने सहस्र अठारह जो रानी वरीं,
हाय ! उनपर भी तुझको सबर ही नहीं ।
परत्रिया पै है तू ने जो ध्यान दिया,
क्या निगोद नरक का खतरा ही नहीं ॥४॥
चल हुआ सो हुआ, अब तो मान कहा,
मुझे राम पै जल्दी से दे तू पठा ।
हैगा ताज्जुब यह, वरना तू देखेगा फिर,
तेरे सर की कसम, तेरा सर ही नहीं ॥५॥
आवें इन्द्र नरेन्द्र मिल करके सभी,
क्या मजाल जो शील को मेरे हरें ।
तेरी हस्ती ही क्या, सिवा राम पिया,
मेरी नजरों में कोई बशर ही नहीं ॥६॥

सार—जिन मनुष्यों को संसार में उच्च-सेउच्च पद प्राप्त करना हो, वे सदाचारी बनें। सदाचार से उनके सभी मनोरथ सफल होंगे, ऋद्धि-सिद्धियाँ उनके द्वारों पर हाथ बांधे खड़ी रहेंगी* और उनके दुश्मन उनके कदमों में गिरेंगे ।

करत दुष्ट को साधु, मूढ़ पण्डित कहलावत ।
करत शत्रु को मित्र, विषहि अमृत ठहरावत ।
नृपति सभा को नाँव, शक्ति या देवी कहिये ।
ताकी सेवा किये, सकल सुख सम्पत्ति लहिये ।
यह जो प्रसन्न ह्वै है नहीं, तौ गुण विद्या सब अफल ।
सुन बात चतुर नर तू यहै, वाही सों ह्वै है सफल ॥८८॥

* 'If I keep my character, I shall be rich enough."—Plant.

99. O good men, if you want to enjoy the fruits desired by you, you should worship the goddess of Righteous Deeds who makes evil persons virtuous, changes the ignorant into learned men, transforms enemies into friends, makes the hidden apparent and changes poison into nectar in a moment. Do not depend in vain on the acquirement of various qualifications (alone) by (making all sorts of) endeavours.



गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥१००॥

कोई काम कैसा ही अच्छा या बुरा क्यों न हो, काम करनेवाले बुद्धिमान को पहले उसके परिणाम का विचार करके तब काम में हाथ लगाना चाहिये; क्योंकि बिना विचारे, अति शीघ्रता से किये हुए काम का फल, मरण-काल तक हृदय को जलाता और काँटे की तरह खटकता रहता ॥१००॥

बुद्धिमान को किसी काम के आरम्भ करने में जल्दी न करनी चाहिये। काम करने से पहले, काम के गुण-दोष और परिणाम का खूब अच्छी तरह विचार करना चाहिये। अगर उस काम का फल या नतीजा अच्छा दीखे, तो उसे करना चाहिये*। अगर उस काम के करने से परिणाम में दुःख की

* Before you begin, consider well; and when you have considered, act.

सम्भावना हो, तो उसे भूलकर भी न करना चाहिये* । जल्दबाजी का नतीजा सदा बुरा होता है । जरा-सी चूक मनुष्य को युगों तक दुःख देती है और खान-पान छुड़ाकर नींद को हराम कर देती है । किसी ने ठीक कहा है—"एक कदम चूकने से मनुष्य का बड़ी बुरी तरह पतन होता है† ।" जरा-सी गलती से मनुष्य ऐसी ठोकर खाता है, कि सम्हाले नहीं सम्हलता । अपनी जरा-सी चूक के प्रायश्चित-स्वरूप उसे बड़े-बड़े कष्ट भोगने पड़ते हैं । इन पंक्तियों के लेखक ने, अपनी एक जरा-सी चूक के कारण दो युगों तक नाना प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगे । जब तक उस भूल का संशोधन न हुआ, वह हृदय में काँटे की तरह चुभती रही । सच तो यह है, उस जरा-सी भूल ने असमय में ही इसकी जवानी को नष्ट कर बुढापा बुला दिया, बाल पका दिये, दाँत गिरा दिये, शरीर निकम्मा कर दिया और दिल को तो चलनी बना दिया । अगर यह जरा भी विचार से काम लेता, तो शायद इसे घोर मर्मभेदी वेदनायें न सहनी पडती । यदि पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों की वजह से वह विपद् टल ही न सकती, तो भी हृदय में यह जलन तो न रहती, कि मैंने यह काम विचारपूर्वक नहीं किया । खैर, बहुत लिखने से क्या ? जिसने मनुष्य-योनि मे जन्म लिया है, जो मनुष्य कहलाता है,—उसे प्रत्येक काम, चाहे वह छोटा हो, चाहे बड़ा, खूब सोच-विचार कर अपने अन्तरात्मा–कानशेन्स की सलाह लेकर चलना चाहिये । यदि फिर भी नतीजा बद हो, तो हर्ज नहीं; मन में खटक तो न रहेगी । गिरिधर कविराय कहते हैं:—

बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय ।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय ।।
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावे ।
खान पान सन्मान, राग रंग मनहि न भावे ।।

---

* "Even in the moment of action there is room for consideration."—Goethe.

† One wrong step may give a great fall.

कह गिरधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे ।
खटकत है जिय माँहि, कियो जो बिना विचारे ॥

जो मनुष्य विना विचारे काम करता है, वह पीछे पछताता है; अपना काम बिगाड़ता है और लोक-हँसाई कराता है। उसका चित्त हर समय बेचैन रहता है और उसे खाना-पीना, आदर-सम्मान एवं राग-रङ्ग कुछ भी अच्छे नहीं लगते। गिरधर कविराय कहते हैं, दुख कुछ टालने से टल नहीं जाता। होनहार होकर रहती है। पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। फिर भी; जो काम बिना विचारे किया जाता है, वह दिल में काँटे की तरह खटका करता है। पाठक ! अविचारवानों की ठीक यही दशा होती है। वृन्द कवि ने भी कहा है:—

फिर पाछे पछताय सो, जो न करे मति सूध ।
बदन जीभ हिय जरत हैं पीवत तातो दूध ॥

मूढ़ ! ऐसा काम न कर, जिससे पीछे पछताना पड़े। जो गरम दूध पीता है, उसके मुँह, जीभ और हृदय जलते है। सहसा कोई काम करने का फल बुरा ही होता है !

सुहृद्भिराप्तैरसकृद्विचारितम्
स्वयञ्च बुद्ध्या प्रविचारिताश्रयम् ।
करोति कार्यं खलु यः स बुद्धिमान्
स एक लक्ष्म्या यशसाञ्च भाजनम् ॥

जो मित्र और आप्त पुरुषों से सलाह लेकर अपनी बुद्धि से विचार कर काम करता है, वह लक्ष्मी और यश का पात्र होता है।

सारांश—काम छोटा हो चाहे बड़ा, बुद्धिमान को खूब सोच-समझकर करना चाहिये। जल्दबाजी का नतीजा सदा बुरा होता है।

कारज अच्छो अरु बुरो, कीजे बहुत विचार ।
विना विचारे करत ही; होत रार अरु हार ॥१००॥

100. A wise man, when about to act, should carefully meditate before hand on the results of that action whether it will be good or bad. The fruit of actions done without pre-meditation burns the heart till death and give pain like a thorn.

●

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति च लशुनं चान्दनैरीन्धनोघैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ।
छित्त्वा कर्पूरखंडान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समंतात्
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मंदभाग्यः ॥१०१॥

जो मन्दभागी इस कर्मभूमि—संसार—में आकर तप नहीं करता, वह निस्सन्देह उस मूर्ख की तरह है, जो लहसन को मरकतमणि के वासन में चन्दन के ईंधन से पकाता है; अथवा खेत में सोने का हल जोतकर आक की जड़ प्राप्त करना चाहता हैं अथवा कोदों के खेत के चारों तरफ कपूर के वृक्षों को काटकर उनकी वाढ़ लगाता है ॥१०१॥

यह संसार कर्म भूमि है। मनुष्य देह बड़ी कठिनाई से मिलती है। जो मनुष्य दुर्लभ मानव जन्म को विष-रूपी विषयों में वृथा गंवाता है, तपश्चरण नहीं करता, परमात्मा की आराधना-उपासना नहीं करता, वह परीक्षा में फेल होता और भयानक भूल करता है मरकतमणि के वासन में चन्दन की लकड़ियाँ जलाकर लहसन पकाना जिस तरह मूर्खता है; उसी मानव-देह पाकर विषय-वासना में फँसे रहना भी मूर्खता है। जिस तरह कोदों के खेत के चारों ओर कपूर के वृक्षों की वाढ़ लगाना नादानी है; उसी तरह मिथ्या जगत के झूठे जंजालों में उम्र गंवाना भी नादानी है।

यदि मनुष्य को सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली अटूट लक्ष्मी मिल जाय तो क्या ? यदि उदय से अस्त तक साम्राज्य हो जाय तो क्या ? अगर

मनुष्य अपने सभी शत्रुओं को पदानत कर ले तो क्या? अगर धन से मित्र और नातेदारों की प्रतिपालना और आदर-सम्मान कर ले तो क्या? अगर सैंकड़ों चन्द्राननी स्त्रियाँ हो जायँ तो क्या? अगर वह इस देह से कल्प भर भी जी ले तो क्या? अगर भवभयहारिणी ब्रह्म की ज्योति हृदय में जगी, तो इन सब विभव से क्या? तात्पर्य यह कि ब्रह्मज्ञान या ईश्वर की सच्ची भक्ति बिना ये सब व्यर्थ है। 'भामिनी-विलास' में खूब ही कहा है:—

पातालं व्रज याहि वा सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
पारावारपरम्परां तर तथाप्याशा न शान्तास्तव।
आधिव्याधिपराहतो यदि सदा क्षेमं निजं वाञ्छसि॥
श्रीकृष्णेति रसायनंरसयत्वं शून्यैः किमन्यैः श्रमैः॥

चाहे पाताल में जा, चाहे इन्द्रपुरी में जा; चाहे सुमेरु पर्वत पर चढ़, चाहे सात समुन्द्रों के पास जा; तेरी आशा शान्त न होगी। इसलिये अधि-व्याधि से पराहत हुए मन! यदि तू अपना सदा भला चाहता है, तो श्रीकृष्ण रूपी रसायन का सेवन कर, वृथा घोर परिश्रम मे कोई लाभ नही।

कहा है:—

भरमत भरमत आइया, पाई मानुष-देह।
ऐसो अवसर फिर कहाँ नामहि जल्दी लेह॥

तुलसी बिलम न कीजिये, भजि लीजे रघुवीर।
तन तरकस ते जात है, श्वास सार सों तीर॥

धन यौवन यों जायगा, जा विधि उड़त कपूर।
नारायन गोपाल भज, क्यों चाटे जग धूर॥

श्वास श्वासपै नाम भज, श्वास न विरथा खोय।
न जाने इस श्वास का, आवन होय न होय॥

संसार में आकर मनुष्य को अपना एक क्षण भी बिना परोपकार और परमात्मा के भजन के गँवाना गहरी नादानी है। जो अपने बनाने वाले को, जो अपने सब सुख देने वाले को और क्षण क्षण रक्षा करने वाले स्वामी को

ही भूलते हैं, वे बड़े कृतघ्न कल्प-कल्पान्त तक नरक में रहेंगे। कर्त्तव्य न पालन करने वालों के लिए ही नरकों की सृष्टि की गई है। इसलिए जिन्हें नरकों से बचना हो, जिन्हें जन्म-मरण के झगड़े से बचकर सदा-सर्वदा सुख भोगना हो, वे सब चिन्ताओं को छोड़कर परमात्मा की भक्ति और परोपकार करें; क्योंकि इस लोक में मनुष्य के यही कर्त्तव्य हैं। मनुष्य इस कर्मभूमि में उत्तमोत्तम कर्त्तव्य-कर्म करने को ही भेजा गया है। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं:—

को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता
मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः।
कार्य्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः
किं जीवनं दोषविवर्जितं यत्॥

संसार में जीवों को ज्वर क्या है? चिन्ता। मूर्ख कौन है? विवेकहीन। कर्त्तव्य क्या है? शिव और विष्णु भगवान की भक्ति। उत्तम जीवन कौन-सा है? जो दूषण-रहित है।

सारांश कि जिस आयु का एक क्षण भी मृत्यु के समय से नहीं बढ़ सकता, उस अमूल्य आयु को विषय-भोगों में नष्ट करना और अपना कर्त्तव्यपालन न करना, अपनी आयु को वृथा गँवाना है। नीचे हम चन्द उत्तमोत्तम उपदेशामृत भजन और गजल प्रभृति पाठकों के उपकारार्थ लिखते हैं। पाठक उन्हें कण्ठाग्र कर लें और अवकाश के समय गाया करें।

भजन

सुधार मन मेरे, बिगड़ी हुई को सुधार ॥टेक॥
खाने में, सोने, खेलों में, मेलों में, भूला फिरे क्यों गँवार ॥१॥
खेलों तमाशों की, यारों की बातों की, थोड़े दिनों की बहार ॥२॥
दमड़ी पै चमड़ी पै मरता है गिरता है, बनता है क्यों तू चमार ॥३॥
तुलसी हटाकर बोवे बबूरी, समझे ना सार और आर ॥४॥
पावे तभी शान्ती राधेश्याम तू, सूझे जब सच्चा विचार ॥५॥

अब क्यों सिर धुनि-धुनि पछताने, रुदन करे और रौल मचावै,
कुछ नहिं तेरी पार बसावे, चूका पहिली चाल में,
क्या खड़ा-खड़ा रोता है ॥३॥
समझ सोचकर कदम उठाना, मुश्किल है मानुष तन पाना,
कहे मुरारी जो हो दाना, भज हर को हर हाल में,
क्यों पाप-बीज बोता है ॥४॥

गजल

जो मोहन में मन को लगाये हुए है ।
वह फल मुक्त जीवन का पाये हुए है ॥१॥
जो बन्दे है दुनिया के गन्दे सरासर ।
वह फन्दे में खुद को फँसाये हुए है ॥२॥
जो सोते हैं गफलत में, रोते है आखिर ।
वह खोते रतन हाथ आये हुए है ॥३॥
पकड़ पाया सतगुरु के दामन को जिसने ।
वही है मगन, सब सताये हुए है ॥४॥

भजन (राग सोरठ)

जीवन दिन चार का रे ! ये मन मूरख फिरे मस्ताना ॥टेक॥
मन्दिर महल अटारी बंगले, नकदी माल खजाना ।
जिस दिन कूच करेगा मूरख, सब कुछ हो बेगाना ॥१॥
कोड़ी-कोड़ी माया जोड़ी, बन बैठा धनवाना ।
साथ न जाये फूटी कौड़ी निकल जाय जब प्राना ॥२॥

अपने आपको बड़ा जान के, क्यों करता अभिमाना ।
तेरे जैसे तो लाखों चले गये, तू किसका मेहमाना ।।३।।
मान ले शिक्षा खन्नादास की, जो चाहे कल्याना ।
परमारथ और नित्य कर्म कर, दे दीनों को दाना ।।४।।

भजन (राग जिला)

तुम देखो रे लोगो, भूल-भुलैया का तमाशा ।।टेक।।
ना कोई आता ना कोई जाता, यही जगत का नाता ।
कौन किसी की बहन भानजी, कौन किसी का भ्राता ।।१।।
देह तलक तिरिया का नाता, पौली तक की माता ।
मरघट तक के लोग बराती, हंस अकेला जाता ।।२।।
लट्ठा पहने बुक भी पहने, पहने मलमल खासा ।
शाल-दुशाले सब ही ओढ़े, अन्त खाक में बासा ।।३।।
कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी, जोड़े पांच-पचासा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, संग चले नहिं मासा ।।४।।

भजन

क्या देख दिवाना हुआ रे ।।टेक।।
माया बनी सार की सूली, नारी नरक का कूआं रे ।।१।।
हाड़ चाम का बना पींजरा, तामें मनुआं सूआ रे ।।२।।
भाई-बन्धु और कुटुम्ब घनेरा, तिनमें पच-पच मूआ रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हार चला जग जूआ रे ।।३।।

संसार की नश्वरता का यही सच्चा चित्र है । इसे समझकर मनुष्यों को समय पर चेत जाना चाहिये ।

ज्यों हाड़ी वैदूर्य की, तामे लहसुन डारि ।
पकवत ताको बैठिके, चन्दन लकड़ी जारि ॥
जोतत महि लै हेम हल, आक वपन के हेत ।
काटत वृक्ष कपूर के, रूंधत कोदव खेत ॥
तिमि मानुष तन पाइ के, त्यागत है तप जौन ।
विषय भोग सेवत सदा, महामूढ़ है तौन ॥१०१॥

101. The wretched fellow who, being born in this world which is a field fit for (good) actions only, does not perform penances is like a man who cooks garlick in a kettle set with precious Vaidurya gems with fuel made of sandal sticks, or tills the land with a plough fitted with the golden plough-share for the sake of sowing the roots of Arka plants or cutting camphor tree into logs makes a fencing of them round the Kodrava plants (an inferior sort of grain).



मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रून्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याः कलाः शिक्षतु ।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नोऽभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ॥१०२॥

चाहे समुद्र में गोते लगाओ; चाहे सुमेरु से सिर पर चढ़ जाओ; चाहे घोर युद्ध में शत्रुओं को जीतो; चाहे खेती, वाणिज्य-व्यापार और अन्याय सारी विद्या और कलाओं को सीखो; चाहे बड़े प्रयत्न से पखेरुओं की तरह आकाश में उड़ते फिरो; परन्तु प्रारब्ध के वश से अनहोनी नहीं होती और होनहार नहीं टलती ॥१०२॥

यह बात एक और कवि महाशय ने भी कही है:—

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त-
मम्भोनिनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम् ।
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकृन्नराणां
छायेव वा त्यजति कर्मफलानुबन्धः ।।

चाहे आकाश में जाओ, चाहे दिशाओं के छोर तक जाओ, चाहे समुद्र में घुसो, अथवा मन में आये जहाँ जाओ और रहो; पर जन्मजन्मान्तर के लिये कर्म मनुष्य का पीछा इस तरह नहीं छोड़ते, जिस तरह छाया मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ती ।

और किसी ने खूब कहा है—

नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन ।
करतलगतमपि नश्यति यस्य हि भवितव्यता नास्ति ।।

जो होनहार नहीं है, वह नहीं होती और जो होनहार है, वह हर तरह से होकर रहती है । जिसकी होनहार नहीं होती, वह हाथ में आया हुआ भी नष्ट हो जाता है ।

महात्मा शेखसादी ने भी 'गुलिस्ताँ' में कहा है कि संसार में दो बातें असम्भव हैं:—

(१) भाग्य में लिखा है, उससे अधिक सुख भोगना ।

(२) नियत समय से पहले मरना ।

"ऐ रोजी—जीविका चाहने वाले ! भरोसा रख, तुझे बैठे-बैठे खाने को मिलेगा और तू, जिसको यम-मन्दिर से बुलावा आ गया है, भाग मत । तू कहीं क्यों न जाय, भागकर बच न सकेगा । हाँ अगर तेरे मरने का दिन अभी नहीं आया है, तो तू शेरों के मुँह में ही क्यों न चला जाय, वे तुझे हरगिज न खायँगे ।"

बलिहारी है इस उपदेश की ! क्या ही खूब नसीहत दी है ! मनुष्य समझे तो समझ सकता है कि उसे अपने भले-बुरे कर्मों के फल तो भोगने ही

होंगे। उनसे वह किसी तरह पीछा नहीं छुड़ा सकता। अगर भाग्य में राज्य लिखा है, तो राज्य की इच्छा त्यागकर वन में भागने से भी राज्य करना ही होगा। यदि मनुष्य निर्जन वन में भी अकेला बैठा रहे, तो वहाँ भी उसे खाने को पहुँचेगा; बशर्ते कि उसके पूर्व जन्म के पुण्य हों और पुण्यों के कारण से आयु हो। अगर मनुष्य को शत्रु शेर के पिंजरे में भी डाल दे, पर यदि उसके पूर्व जन्म के पुण्य होंगे, तो शेर उसे न खायगा; चाहे शेर के उदर-शूल प्रभृति कोई व्याधि ही खड़ी हो जाय। अगर मनुष्य के पुण्य क्षीण हो गये हैं और इससे उसकी आयु शेष हो गई है, तो वह चाहे जहाँ छिपता फिरे, चाहे सात तालों के भीतर बन्द होकर, लाखों फौज-पल्टन पहरे पर खड़ी कर रखे, पर उसके प्राण नहीं बचेंगे। उसकी मौत, उसकी छाया की तरह, हर जगह उसके साथ रहेगी *। इस मौके का एक हिस्सा हमें याद आया है; उसे हम पाठकों के ज्ञान-लाभार्थ नीचे लिखते हैं:—

राजा और मस्त हाथी

[जीवात्मा और कर्म]

एक राजा हाथी पर सवार होकर कहीं जा रहा था। वह हाथी बदमाश था। किसी काम से राजा नीचे उतरा, तो हाथी अपनी सूँड़ से राजा पर आक्रमण करने लगा। भय के मारे राजा भागा और भागते-भागते एक अन्धे कुएँ में जा गिरा। उस कुएँ की एक बगल में एक पीपल का वृक्ष खड़ा था। उस वृक्ष की जड़ें कुएँ के भीतर थीं और उसने आधा कुआँ घेर रखा था। घबराहट में भागते-भागते राजा जो कुएँ में गिरा, तो उसका सिर नीचे और पैर ऊपर को हो गये, क्योंकि वह उस पीपल के पेड़ की जड़ों में उलझ गया। राजा न नीचे ही जा सकता था और न ऊपर ही आ सकता था। वह हाथी भी राजा का पीछा करता हुआ उसी कुएँ पर आ गया और राजा के बाहर निकलने की राह देखने लगा। राजा की नजर नीचे गई, तो उसने क्या देखा,

* While we flee from our fate, we like fool rush on it.

—Buchanan.

कि भयङ्कर कालसर्प, विसखपरे, विच्छू, कनखजूरे प्रभृति भयानक-भयानक जानवर ऊपर की तरफ मुँह किये हुए खुश हो रहे है कि हमारा भक्ष्य आया। राजा उन्हें देखते ही काँप उठा। राजा ने ऊपर की ओर देखा, तो क्या देखता है, कि दो चूहे, जिनमें एक काला और एक सफेद था, जिस जड़ में राजा के पैर उलझे हुए थे, उसे काट रहे हैं। राजा घबरा गया कि थोड़ी ही देर में, इनके जड़ काट देते ही, मैं नीचे गिरूँगा और सर्प तथा विच्छू प्रभृति जीवों का भोजन बनूँगा। उसने फिर किसी तरह ऊपर चढ़कर निकल भागने का विचार किया और कुएँ के ऊपर दृष्टि फेंकी, तो क्या देखा कि वही दुष्ट हाथी खड़ा है। राजा ने सोचा कि मेरे ऊपर जाते ही हाथी मुझे चीर डालेगा। राजा सब ओर आफत देखकर बहुत ही घबराया। उस पीपल के वृक्ष में मधु-मक्खियों का एक छत्ता था। उससे मधु की बूँदें टपकती थीं। उनमें से कोई-कोई बूँद राजा के मुँह में भी जा गिरती थी। उसी शहद के चाटने में राजा सारी आफतों को भूला हुआ था। बाज-बाज वक्त तो वह शहद के मजे में ऐसा गर्क हो जाता था, कि इसे इस बात का भी खयाल न रहता था कि चूहों के जड़ काट देते ही मेरी क्या दुर्दशा होगी। किसी ने खूब कहा हैं:—

गज़ल

तू यथा उम्र की शाख पर सो रहा है।
तुझे कुछ खबर है कि क्या हो रहा है ॥१॥
कतरते हैं जिसको, चूहे रात-दिन दो।
तू इस पर पड़ा, बेखबर सो रहा है ॥२॥
खड़ा नीचे है मौत का मस्त हाथी।
तेरे गिरने का, मुन्तजिर हो रहा है ॥३॥
ऐ न्यामत ! ये ये टहनी, गिरा चाहती है।
विपय-बूँद रस क्यों तू जाँ खो रहा है ॥४॥

इस दृष्टान्त का बड़ा गहरा मतलब है* । इसके समझने से आँखें खुल जाती हैं । आयु की अस्थिरता—चंचलता आँखों के सामने आ जाती है; पर हम यहाँ इसमें इतना ही समझायेंगे, कि मनुष्य कहीं क्यों न जाय; शुभाशुभ कर्मों के फल उनके साथ ही रहेंगे । राजा ने प्राण-रक्षा की भरसक चेष्टा की; पर कर्मवश, उस कुएँ में भी हर तरफ मौत ही मौत दीखने लगी । मतलब यह है कि कर्म अपना फल भुगाये बिना हरगिज पीछा नहीं छोड़ता । इसलिये किसी ने ठीक ही कहा है—

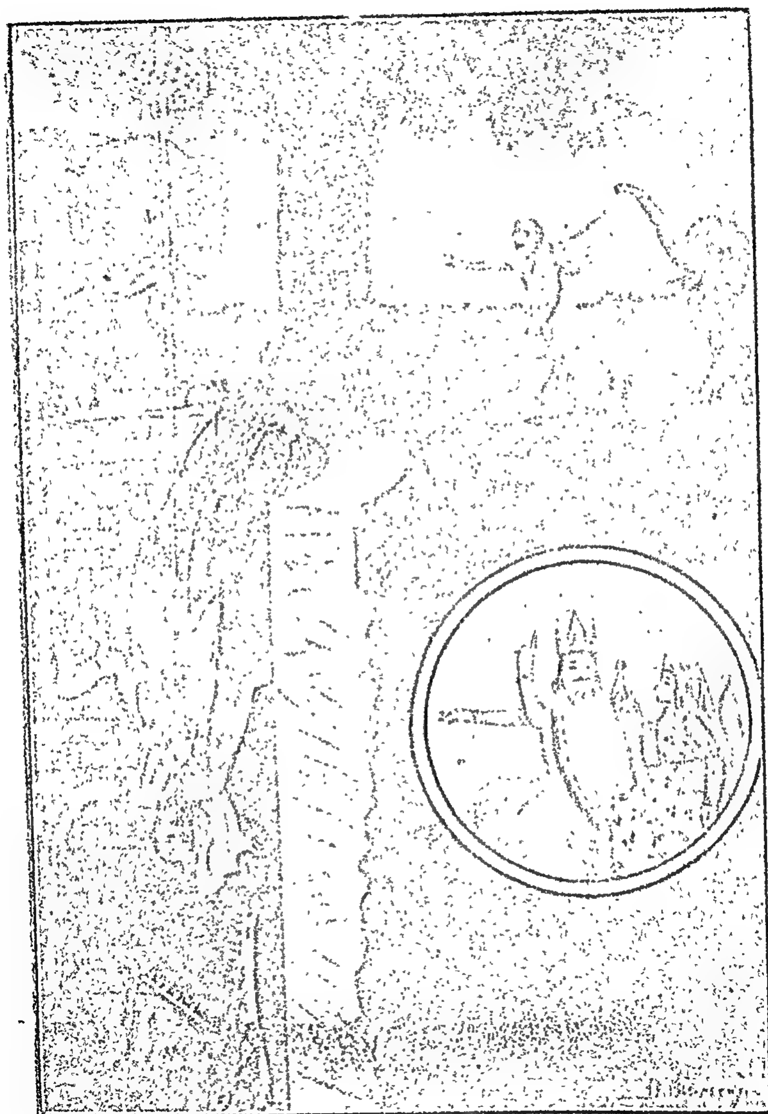
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥

---

* इसमें राजा=जीवात्मा, हाथी=कर्म, सफेद चूहा=दिन, काला चूहा=रात, पीपल का वृक्ष=आयु, अन्धा कुआँ=गर्भाशय, बिच्छू प्रभृति= काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि और मधु=विषय ।

जब जीवात्मा-रूपी राजा कर्म-रूपी हाथी से उतरना चाहता है, तब कर्म-रूपी हाथी उसे खदेड़कर गर्भाशय-रूपी अन्धे कुएँ में डाल देता है । आयु-रूपी वृक्ष की जड़ में राजा-रूपी आत्मा का पैर उलझा रहता है । गर्भाशय में बच्चा नीचे सिर और ऊपर पैर करके उसी तरह रहता है; जिस तरह राजा वृक्ष की जड़ में उलझकर लटक रहा था । राजा-रूपी जीव नीचे की ओर देखता है, तो काम-क्रोध-रूपी सर्प-बिच्छू वगैरा खाने की इच्छा से मुँह बाये दीखते हैं । ऊपर देखता है तो आयु-रूपी जड़ को दिन-रात-रूपी चूहे काटते मालूम होते हैं । कुएँ के बाहर सूँड़ से धकेलने को हाथी-रूपी कर्म दीखता है । पर राजा-रूपी-जीवात्मा-पेड़ में लगे छत्ते के विषय-रूपी शहद की बूँदों की चाट में सब दुःखों को भूलकर लटका रहता है । जब चूहे जड़ काट देते हैं, तब वह पछताता और गर्भाशय-रूपी कुएँ में जा गिरता है, यानी फिर जन्म लेता है । तात्पर्य यह, कि किये हुए कर्म का फल भोगे बिना कोई बच नहीं सकता । जो किसी तरह बच जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं, उन्हें कर्म-रूपी हाथी गर्भाशय-रूपी कुएँ में फिर गिरा देते हैं । वे फिर जन्म लेते और कर्मफल भोगते हैं ।

चित्र नं० २४



इस चित्र के देखने से मालूम होता है, कि मनुष्य कहीं जाय शुभाशुभ कर्मों के फल उसके साथ ही रहेंगे।

अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मो का फल अवश्य भोगना होता है। बिना भोगे कर्म का फल सौ करोड़ कल्प में भी क्षय नहीं होता।

सारांश—जो होनी है, वह होकर रहेगी और अनहोनी होगी नहीं।

जलधि डूब जह मेरु चढ़, विद्या रितु व्योपार।
अनहोनी होवे न कहुँ, होनी अमिट विचार ॥१०२॥

102. Let a man dive into the ocean or let him ascend the top of the (golden) Meru mountain. Let him conquer his enemies in the battlefields or let him learn all sorts of arts and sciences such as commerce and agriculture etc. Let him fly up into the sky like a bird after making strenuous efforts. (But in spite of all this) what is not to be, never happens in this world, because everything is subject to actions (done previously). Moreover, whatever is to be, cannot be prevented.



भीम वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥१०३॥

जिस मनुष्य के पूर्व जन्म के उत्तम कर्म—पुण्य—अधिक होते हैं, उसके लिए भयानक वन नगर हो जाता है; सभी मनुष्य उसके हित-चिन्तक मित्र हो जाते हैं और सारी पृथ्वी उसके लिये रत्नपूर्ण हो जाती है ॥१०३॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं —

गरल सुधा रिपु करैं मिताई, गोपद सिन्धु अनल सितलाई ।
गरुअ सुमेरु रेणु-सम ताही, राम कृपा करि चितवहिं जाही ॥

सच है; जिसके पूर्व जन्म के पुण्य होते हैं, उसके लिये जङ्गल में मङ्गल होता है, उसके पक्के शत्रु भी उसके पक्के मित्र हो जाते हैं और उसकी रात-दिन हितचिन्ता और खुशामद करते हैं। वह जहाँ नजर डालता है, वहीं उसे धन-ही-धन दिखाई देता है और वह मिट्टी छूता है तो सोना हो जाता है। जब तक पुण्य का छोर नहीं आता, तब तक सुन्दर भवन, विलासिनी युवतियाँ, दास-दासी और छत्र-चामर आदि विभूति सभी कुछ स्थिर रहते हैं; पर पुण्यों का क्षय होते ही वे सब वैभव, रस-केलि के कलह में टूटी मोतियों की लड़ी की तरह विलीयमान हो जाते हैं। तात्पर्य यह है, पुण्यवान का सर्वत्र मङ्गल है। उसका न कोई शत्रु होता है और न उसे किसी प्रकार का कष्ट या अभाव ही होता है।

वन पुर ह्वै जग मित्र ह्वै कष्टभूमि ह्वै यत्न ।
पूरव पुन्यहि पुरुष के, होत इते विन यत्न ॥१०३॥

103. A dreary forest becomes a great city and all men becomes friendly and the whole world is filled with near-lying precious gems to him, who has a store of previously done good deeds.



को लाभो गुणसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः ।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता किं धनं
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाचलम् ॥१०४॥

लाभ क्या है ? गुणियों की सङ्गति। दुःख क्या है ? मूर्खों का संसर्ग। हानि क्या है ? समय पर चूकना। निपुणता क्या है ? धर्मानुराग। शूर कौन है ? इन्द्रियविजयी। स्त्री कैसी अच्छी है ? जो अनुकूल और पतिव्रता है। धन क्या है ? विद्या। सुख क्या है ? प्रवास में न रहना। राज्य क्या है ? अपनी आज्ञा का चलना ॥१०४॥

प्रश्नोत्तर के रूप में, योगिराज कैसी अमूल्य-अमूल्य शिक्षाएँ दे रहे हैं ! हम प्रायः इन्हीं भावों के दो श्लोक, स्वामी शंकराचार्य महाराज की 'प्रश्नोत्तरमाला' से, पाठकों के लाभार्थ, नीचे देते हैं—

विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदात्री
बोधो हि को यस्तु विमुक्तिहेतुः।
को लाभ आत्मावगमो हि यो वै
जितं जगत्केन मनो हि येन
किं दुर्लभः सद्गुरुरस्ति लोके
सत्सङ्गतिर्ब्रह्मविचारणा च।
त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः
को दुर्जयस्सर्वजनैर्मनोजः ॥

विद्या क्या है ? ब्रह्मगति देनेवाली। बोध क्या है ? विमुक्ति का कारण। लाभ क्या है ? आत्म-प्राप्ति या अपने स्वरूप को पहचानना। जगत् को जीतनेवाला—जगत-विजेता कौन है ? जिसने मन को जीता है।

संसार में दुर्लभ क्या है ? सद्गुण, सत्संग और ब्रह्म-विचार। सब कुछ त्याग देनेवाला कौन है ? कल्याणरूप ज्ञान (शिवात्म-बोध)। दुर्जय कौन है ? कामदेव।

पाठक ! समझे ? कैसी अनमोल शिक्षा है ! आप इनको कई-कई बार पढ़ें और इनपर विचार करें। एकान्त में, तर्क-वितर्क के साथ, इनको समझने की चेष्टा करने से अपूर्व आनन्द आयेगा।

अगर आप चाहते है कि हम ससार मे रहकर सुख पायें, जन्म-मरण के फन्दे से वचें, परमात्मा की भक्ति करें; तो आप इनपर अमल करें। पढ़कर यदि अमल न किया, तो वृथा समय नष्ट किया। पढ़कर, पढ़े हुए पर जो अमल करता है और उसके अनुसार चलता है, यही वास्तविक विद्वान है।

कहा लाभ ? सत्संग, कहा दुख ? मूरख-संगत।
समय नाश बड़ हानि, सुघड़ रंग धर्म की रंगत॥
सुख का ? रहै स्वदेश, शूर को ? इन्द्रीजित नर।
धन का ? विद्या, प्रियतमा को ? नारि आज्ञा तत्पर॥
शुठि राज वही सुखमूल, जो आज्ञाकारी प्रजाजन।
अरु जन्म सुफल सोई जानिये, जो गिरधर महँ रहहि मन॥१०४॥

104. What is the gain ? The society of the meritorious. Where in lies the harm ? In keeping company with the ignorant. What is loss ? Missing an opportunity. What is wisdom ? Love for what is right. Who is a brave man ? One who controls his senses. What is dearest ? A faithful wife. What is wealth ? Knoweledge. What is comfortable ? Living at home. What is kingdom ? A place where one's order are obeyed.



अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवादनिवृत्तै कचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा॥१०५॥

जो अप्रिय वचनों के दरिद्री है, प्रिय वचनों के धनी हैं, अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहते हैं और पराई निन्दा से वचते हैं—ऐसे पुरुषों से कहीं-कहीं की ही पृथ्वी शोभायमान है॥१०५॥

खुलासा—जिनके यहाँ कड़वे वचनों का घाटा है, पर प्रिय वचनो का घाटा नही है; जो अपनी ही स्त्री से खुश रहते है और पराई निन्दा से नफरत करते है,—ऐसे पुरुष-रत्न इस जगत मे कहीं-कहीं है, अर्थात् विरले है।

मधुर भाषण

सत्पुरुषो के यहाँ चाहे और ससारी चीजों का अभाव हो, पर मीठे वचनों का अभाव नही होता। सत्पुरुष धन के दरिद्री हों तो हों, पर मीठे वचनों के दरिद्री नही होते। जो उनके पास जाता है, जो उनसे मिलता है, उसे वे अमृत समान प्रिय वचनो से अपने वश में कर लेते है। कहा है—

तृणानि भूमिरुदकं वाक चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

चटाई, जमीन, जल और सत्य-सहित प्रिय वाक्य,—इनसे भले आदमियों का घर कभी खाली नही होता; यानी दरिद्र होने पर भी सज्जनों के घर मे ये तो अवश्य ही होते है।

प्राणिमात्र पर दया, मित्रता, दान और मधुर वाणी—इनके समान वशीकरण जगत में और नही है कहा है—

तुलसी मीठें वचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, परिहरु वचन कठोर॥

और भी कहा है—

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥

समर्थ पुरुषों को बडा भार क्या है? व्यवसायियों को दूर कौन-सी जगह है? विद्वानों के लिए विदेश कौन-सा है? प्रिय बोलने वालों को गैर कौन है?।

मधुर भाषण से पराये भी अपने हो जाते है और वज्र-हृदय भी मोम हो जाते है। अंग्रेजी मे एक कहावत है—"Soft words win hard hearts." नर्म लफ्ज सख्त दिलों को जीत लेते है। और भी एक कहावत

है—"Kinds words are as a physician to the afflicted spirit." दुखिया के लिये दयापूर्ण शब्द चिकित्सक के समान होते हैं।

कठोर भाषण

मधुर भाषण की जगत के सभी विद्वानों और महापुरुषों ने बड़ी महिमा लिखी है; इसलिए सभी समझदारों को भूलकर भी किसी से कड़वी बात न करनी चाहिये। कठोर वचन से घनिष्ट मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। कठोर वचन बोलने वाले की सभी अहित-कामना करते हैं। कटुवादी को कोई साहाय्य नहीं करता। कटुवादी से सफलता दूर भागती है और लक्ष्मी उनसे घृणा करती है। कठोर वचन का हृदय में लगा शल्य उखड़ता नहीं, वरन् सदा खटका करता है। तीर का जख्म अच्छा हो जाता है, पर जुबान का जख्म जीवन भर अच्छा नहीं होता। कहा है—

> रोहते शायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
> वाचा दुरुक्तं बीभत्सं नापि रोहति वाक्क्षतम्॥

बाण का घाव भर जाता है; कुल्हाड़ी से काटा वृक्ष फिर हरा हो जाता है; पर कठोर वाणी से हुआ घाव कभी नहीं भरता।

> वाक्यबाण नहिं छोड़िये तीच्छनतायुत जोय।
> कटुक वचन कुरुकुल हन्यो, भीम क्रोधवस होय॥
> नाहिं विवाद मदान्ध सों, करै न पर पै खीस।
> कुरुप वचन सों कृष्ण ने, काट्यो चेदिप सीस॥

महापुरुष, भूल में भी, किसी का दिल दुखाने वाली बात नहीं कहते; क्योंकि वे पराया दिल दुखाने को ही सबसे बड़ा पाप समझते हैं। इतना ही नहीं, महापुरुष अपने तईं गाली देनेवाले को भी गाली नहीं देते; क्योंकि उनके पास कठोर वचन या गाली होती ही नहीं, दें कहाँ से? जिनके पास जिस चीज का अभाव होगा, वह उसे कहाँ से देगा?

एक महात्मा को दुष्ट लोग वृथा ही सताया करते थे। उनके ऊपर

शल्यसम कठोर वचनों और गालियों की बौछार किया करते थे; पर वे बदले में मीठी-मीठी बातें ही कहा करते थे। एक बार तंग होकर वे कहने लगे—

ददतु ददतु गालिर्गालिमन्तो भवन्तो
वयमिह तदभावाद् गालिदानेऽप्यशक्ताः।
जगति विदितमेतद् दीयते तत् परस्मै
नहि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ॥

दो, दो, आप गालीमन्त है। कोई धनवान होता है, कोई बलवान होता है; आप गालीवान है। पर मेरे पास तो कठोर वचन और गालियों का अभाव है; मैं गाली कहाँ से लाऊँ? संसार जानता है, जिसके पास जो चीज होती है, उसे ही वह दूसरे को दे सकता है। खरगोश अपने सींग क्यों नहीं देता? भैया! मैं तो पण्डितराज जगन्नाथ के इस कौल पर चलता हूँ:—

अपि बहलदहनजालं मूर्ध्नि रिपुर्मे निरन्तरं धमतु।
पातयतु वासिधारामहमणुमात्रं न किंचिदपभाषे ॥

"दुश्मन चाहे मेरे सिर पर लगातार आग जलाते रहें, चाहे मुझपर तलवार की चोटें करें; पर मैं जरा भी अप-भाषण न करूँ; यानी मेरे मुँह से कोई खराब शब्द न निकले।"

सज्जनों का स्वभाव ही होता है कि वे अपने हानि पहुँचाने वाले का भी भला ही करते है; गाली देने वालों का मधुर वचनों से समादर करते है और मारनेवाले के सामने अपना सिर कर देते है*। आम के वृक्ष पर लोग पत्थर मारते हैं, मगर वह उत्तम फल प्रदान करता है। दूध को लोग चाहे कितना ही तपायें, चाहे कितना ही विकृत करें और कितना ही मथें; पर वह प्रहार—चोट सहता हुआ भी, अपने प्रहारकर्त्ताओं के लिये चिकनाई—घी ही देता है। जो लोग सज्जनों का अनुकरण करते हैं; सज्जन और दुर्जन, मित्र और शत्रु सबसे

* Love is to be won by affectionate words.—Pr.

Yield you to oppoment, by so doing you will come off victor in end.—Ovid,

मीठा बोलते है; वे मधुर वाणी वाले मोर की तरह सबके प्यारे होते हैं। जो प्रिय बोलते है, प्रिय के सत्कार की इच्छा करते हैं, वे श्रीमान् सबके वन्दनीय है; वे मनुष्य-शरीर मे होते भी देवता है। गोस्वामी जी कहते है:—

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम वचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाँड़िये, शील सत्य सन्तोष॥

स्त्री दुःख और नरक की मूल है

स्त्री वास्तव मे विष है, पर वह अमृत-सी दीखती है। अथाह जल में डूबने से आदमी बच सकता है; पर स्त्री मे डूबने से नही बच सकता। भक्ति, मुक्ति, और ज्ञान की स्त्री दुश्मन है और परमात्मा के मिलने की राह मे दुर्गम घाटी है। स्त्री अपने तीखे नयन-बाणों से पुरुष को मदिरा की तरह मतवाला कर देती है और अपनी इच्छानुसार चलाती है। स्त्री दीपक है और पुरुष पतंग है। पुरुष अज्ञान से, उसके मिथ्या रूप पर मुग्ध होकर, अपना लोक-परलोक गँवाता है। स्त्री संसार-बन्धन में बाँधने वाली, दुःखों की मूल—ममता की जड़, नरक का द्वार और हर तरह अविश्वास-योग्य है—उसकी प्रीति का कुछ भी भरोसा नही; वह करवट बदलते-बदलते पराई हो जाती है। अपने सुख और स्वार्थ के लिये वह पुरुष को मतवाला करके, उससे कौन-कौन से नीच कर्म नहीं करती? उसी के कारण पुरुष जने-जने के कठोर वचन सहता, अपमानित होता, आदमी-आदमी की खुशामद करता और नाना प्रकार के दुःख भोगा करता है। ऐसी दुःखों की खान और नरक की नसैनी स्त्री के पीछे जो मरे मिटते है, वे क्या बुद्धिमान है? जो ऐसी एक स्त्री के घर में होने पर भी सन्तुष्ट नही रहते—और स्त्रियो को चाहते है; यहाँ तक कि पराई स्त्रियों पर नीयत डिगाते है,—उन अधर्मियों को क्या कहें? पूर्व जन्म के पापों से उनकी बुद्धि मारी गई है।

संसारी को स्त्री बिना सुख नहीं

बारीक नजर से देखने पर स्त्री महा गन्दी और लोक-परलोक का नाश करने वाली मालूम होती है; पर उसके बिना संसार चल ही नहीं सकता।

स्त्री न हो तो परमात्मा की सृष्टि का ही लोप हो जाय—उस खिलाड़ी का सारा खेल ही बिगड़ जाय; संसार मनुष्यशून्य हो जाय। स्त्री ही पुरुषों की खान है। उसी से ध्रुव, प्रह्लाद, भगीरथ, रामचन्द्र, अर्जुन, भीम, मान्धाता और हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुष पैदा हुए हैं। वह हजारों दोष होने पर भी अच्छी है; पत्थर होने पर भी रत्न है; विष होने पर भी अमृत है। स्त्री ही घर की शोभा और लक्ष्मी है। बिना स्त्री घर घर नहीं, वन है। जिस तरह बिना मित्र के पुरुष निर्जीव देह है[1]; उसी तरह बिना स्त्री के पुरुष जीवन-रहित शरीर है। स्त्री और पुरुष दोनों से एक देह बनती है। अतः बिना स्त्री पुरुष अधूरा है[2]। स्वास्थ्य और अच्छी स्त्री ये ही दो संसार के सच्चे सुख हैं। अपना घर और अपनी पतिव्रता स्त्री—दोनों सुवर्ण और मोतियों के समान मूल्यवान हैं[3]। बिना स्त्री के हमें अपने जीवन के प्रारंभ में सहाय्य करने वाला नहीं जीवन के दौरान में सुखी करने वाला नहीं; और जीवन के अन्तिम दिनों में तसल्ली और तशफ्फी करने वाला नहीं[4]। अत्यागियों को संसार में स्त्री बिना जरा भी सुख नहीं। इतना ही नहीं, बिना स्त्री धर्मकार्य भी उचित रूप से सम्पादित नहीं हो सकते। इसी से अनेक ऋषि-मुनि, वनवास करते हुए भी स्त्रियों को रखते थे और परमात्मा की सृष्टि को बढ़ाते थे। अतएव कट्टर त्यागियों या रोगी सन्यासियों के सिवा पुरुषमात्र को स्त्री त्याग देना उचित नहीं।

अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहो

अपनी स्त्री कैसी ही बुरी-बावली हो; पुरुष को उसे ही अप्सरा समझकर, उसीसे अपना चित्त सन्तुष्ट करना चाहिये। अपनी स्त्री के कुरूपा या बदशकल होने पर भी पराई स्त्री पर मन न डिगाना चाहिये—पर-स्त्रियों को अपनी माता

---

[1] He who is without a friend is like a body without a soul—Italian saying.

[2] Either sex alone is hylf itself.—Tennyson,

[3] A hearth of one's own and a good wife are worth gold and pearls.—Goethe.

[4] But for women, our life would be witout help at the outset, without pleasure in its course, and without consolation at the end.—Jony.

के समान समझना चाहिये। जैसी ही अपनी स्त्री, वैसी ही पराई। पराई स्त्री में हीरे नहीं लटकते; पर नादानों को अपनी अच्छी चीज भी अच्छी नही मालूम होती और पराई बुरी भी अच्छी मालूम होती है। इसका कारण? कारण, अपनी स्त्री हर समय नेत्रों के समाने रहती है। मनुष्य का स्वभाव है कि उसे सुलभ वस्तु बुरी और दुर्लभ अच्छी लगती है*। कहा है:—

सुलभ वस्तु सब वस्तु जनन सों, ह्वै जग आदरहीन।
परिहरि ज्यों निज नारि जन, ह्वै परनारी लीन॥

एक पाश्चात्य विद्वान ने भी प्राय, यही बात कही है—दूसरों की चीज हमें बहुत प्यारी लगती है और हमारी चीज दूसरों को प्यारी लगती है†। मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि उसे पराई थाली का भोजन अपनी थाली के भोजन से अच्छा मालूम होता है।

पर-स्त्री सब तरह हानिकर है

जो लोग कहा करते है कि अपनी व्याहता स्त्री में दोष नही; उन्हें समझना चाहिये कि प्राय: अपनी और पराई सभी स्त्रियां नागिन है। सभी पुरुषों का बलवीर्य हरण करतीं और अन्त में नरक में ले जाती हैं। अपने कुएँ में गिरने वाला क्या बच जाता है? अपने कुएँ और पराये कुएँ दोनों में ही गिरने वाला मरता है। अपना विष और पराया विष दोनों ही खाने से प्राणनाश करते हैं। अपनी आग और पराई आग दोनों ही से शरीर जलता है। तात्पर्य यहकि अपनी और पराई सभी स्त्रियाँ हानिकारक है। फिर भी, अपनी स्त्री से उतनी हानि नहीं, जितनी पराई से है। अपनी स्त्री पतिव्रता हो, तो चतुर पुरुष, गृहस्थाश्रम में रहकर भी, स्वर्ग और मोक्ष लाभ कर सकता है। पराई स्त्री मे सिवा हानि के कोई भी लाभ नहीं। पराई स्त्री धन और यौवन का नाश करने

---

* We disregards the things which lie under our eyes; inbifferent to what is close at hand; we inquire after things that are far away—Pliny.

† That which belongs to others pleases us most; that which belongs to us pleases others more.

वाली और अन्त में नरक में ले जाने वाली है। परनारियों के सम्बन्ध में अनुभवी पुरुष कहते हैं:—

परनारी पैनी छुरी, तीन ठौर तें खाय।
धन छीजे, जोबन हरे, मुए नरक ले जाय॥

जिस तरह कठोर भाषण बुरा है, जिस तरह पर स्त्रियों पर मन चलाना बुरा है, उसी तरह परनिन्दा करनी भी बुरी है। निन्दक से वढ़कर पापी नहीं, अतः बुद्धिमान को सच्ची और झूठी कैसी भी निन्दा न करनी चाहिये।

शिक्षा—सदा मीठा बोलो, अपनी ही स्त्री से प्रसन्न रहो और परनिन्दा से काल सर्प की तरह डरो। सत्पुरुष इसी राह पर चलते है। इस राह पर चलने वालों का सदा कल्याण होता है। पाठक! हम आपके गाने के लिये, इन्हीं उपदेशों से भरे हुए, चन्द गाने आपकी नजर करते है—

भजन

वचन तू मीठा बोल रे, वाणी का वाण बुरा है ॥टेक॥
जिसकी वाणी में मीठापन है, उसको सबही जगह अमन है।
दिल चाहे जहां डोल रे; वाणी का वाण बुरा है ॥१॥
इसी वाणी से मीत गहरी, हा! हा! ये ही बना दे वैरी;
कलेजा डाले छोल रे; वाणी का वाण बुरा है ॥२॥
इससे मित्र शत्रु सब जानें, कोयल और काक पहचानें,
देत सब मुखड़ा खोल रे; वाणी का वाण बुरा है ॥३॥
वाणी ने हव्वा बताया, बच्चों को लू लू बनाया;
बैठ गई सुन कर होल रे; वाणी का वाण बुरा है ॥४॥
सबकी ही कीमत होती है, हीरा माणिक मोती है,
नहिं वाणी का मोल रे; वाणी का वाण बुरा है ॥५॥
कहे तेजसिंह सच बोलो, मत असत्य का मुंह खोलो;
है जिसकी सच्ची तोल रे; वाणी का वाण बुरा है ॥६॥

भजन (राग सोरठ)

राजी हो उससे सन्तजन, जो शुद्धचित्त उदार हो ॥टेक॥
मद मोह ममता काम लालच, त्याग बुद्धि विचार हो ।
तन मन वचन निष्पाप निशि दिन, शौच और आचार हो ॥१॥
मिथ्या वचन बोले नहीं, और सत्य सब व्यवहार हो ।
तज के कपट बल छल सभी, प्रभु के जनों से प्यार हो ॥२॥
कहनी वो करनी एक सी, नहिं जिसके मन में विकार हो ।
परदारा परधन से डरै, सोई जीव जग से पार हो ॥३॥
संसार जाने स्वप्न-सम, जागृत मे नित होशियार हो ।
राखे दया उर जीव की, हिंसा तजै सुख सार हो ॥४॥
बोले रस बानी मधुर, और चित्त मे पर उपकार हो ।
जग जीत पावे परम पद, उसकी कहीं न हार हो ॥५॥

अप्रिय वचन दरिद्र तजि, प्रीति वचन धनपूर ।
निज तियरति निन्दा रहित, वे महिमण्डल शूर ॥१०५॥

105. The earth is very scantily peopled with men who are sparing in speaking harsh words, who are lavis of pleasing speech, who are contented with their own wives and who never speak ill of others.



कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तं
न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥१०६॥

धैर्यवान पुरुष घोर दुःख पड़ने पर भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ता; क्योंकि प्रज्वलित अग्नि के उल्टी कर देने पर भी उसकी शिखा ऊपर ही को रहती है, नीचे की ओर नहीं जाती ॥१०६॥

विपद् में निरादर या अपमान से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है; पर जो स्वभाव से ही धैर्यवान होते हैं, उनकी बुद्धि निरादर से भी नष्ट नहीं होती। बुद्धि के नष्ट न होने से, मनुष्य अपने बुद्धि-बल से ही घोर विपद् से पार हो जाता है। अतः मनुष्य पर कैसी भी विपत्ति पड़े, उसे धैर्य न त्यागना चाहिये; क्योंकि धैर्य के बिना बुद्धि रह नहीं सकती और बिना बुद्धि का मनुष्य बिना पतवार के नाव के समान है। जिस तरह पतवार-हीन नाव समुद्र में शीघ्र ही डूब जाती है; उसी तरह धैर्यहीन मनुष्य विपद् में शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

सारांश—धैर्यवानों का स्वभाव है कि घोर विपद् में भी अपने धैर्य को नहीं त्यागते।

धैर्यवान नहिं धैर्य तजि, यदपि दुःख विकराल।
जैसे नीचो अग्निमुख, ऊँची निकसत ज्वाल ॥१०६॥

106. The patience of a persevering person even if he is afflicted with calamity, can never be broken. The flame of a burning fire never goes downwards even if it is held upside down.

स्त्रियों के कटाक्ष-रूपी वाण जिसके हृदय को नहीं वेधते, क्रोध-रूपी अग्निज्वाला जिसके अन्तःकरण को नहीं जलाती और इन्द्रियों के विषय-भोग जिसके चित्त को लोभ-पाश में बाँधकर नहीं खींचते, वह धीर पुरुष तीनों लोक को अपने वश में कर लेता है ? ॥१०७॥

स्त्री; क्रोध और विषय—ये तीनों ही आफत की जड़ और नाश की निशानी हैं। जो इनके काबू में नहीं आता वह सचमुच बहादुर है। शंकराचार्य कृत 'प्रश्नोत्तर-माला' में लिखा है—

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा
मनोजवाणैर्व्यथितो न यस्तु।
प्राज्ञोऽतिधीरश्च शमोऽस्ति को वा
प्राप्तो न सोहं ललनाकटाक्षैः॥

संसार में सबसे बड़ा बहादुर कौन है ? जो काम-वाणों से पीड़ित न हो। प्राज्ञ, धीर और समदर्शी कौन है ? जिसे स्त्री के कटाक्ष से मोह न हो।

क्या खूब कहा है ! जो स्त्री के नयनबाणों से घायल होने के कारण होश में नहीं रहता है, उस बेहोश और विवेकहीन को काम, क्रोध, मद और लोभ प्रभृति सभी शत्रु मार लेते हैं। इसके विपरीत, जिसपर स्त्री के कटाक्ष-वाण असर नहीं करते, उसे मोह नहीं होता—उसके होश-हवास ठीक रहते हैं, उसका विवेक-ज्ञान बना रहता है; इसीलिये उसके परम शत्रु काम, क्रोध मद, मोह और लोभ प्रभृति का उसपर वश नहीं चलता। काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ आदि के परमात्मा की राह में बाधक न हो सकने की वजह से, वह स्वाधीन महापुरुष, बिना किसी अड़चन के, परमात्मा के कमल-चरणों में पहुँच जाता है और परमात्मा की दयासे ध्रुव की तरह सबके सिर पर आसन जमाता है।

निस्सन्देह, स्त्री के नयनवाणों से घायल न होने वाला ध्रुव की तरह ध्रुव-पद पाता है; पर यह काम सहज नहीं है। यह बड़ी टेढ़ी खीर है। कदाचित मनुष्य और सबसे पीछा छुड़ा ले पर कामिनी से पीछा छुड़ा लेना बड़ा कठिन

है। बड़े-बड़े मुनिराजों ने यहाँ गोते खाये है। और तो क्या—स्वयं योगेश्वर कामारि कामिनी के पीछे पागल हो गये है। पण्डितेन्द्र जगन्नाथ महाराज ने ठीक ही कहा है:—

सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता
विद्याऽपि खेयकलिता विमुखीबभूव।
सा केवलं हरिणशावकलोचना मे-
नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव ॥

सारे विषयों को भी मैं भूल गया और विद्या की मुझे याद न रही; पर वह मृग के बच्चे की-सी आँखों वाली, इष्ट देवता की तरह, मेरे हृदय से दूर होती। (मर गई है, तो भी याद नहीं भूलती।)

अज्ञानी कामी ही स्त्री को नहीं भूल सकते; किन्तु जो ज्ञानी है; जिनको विवेक-बुद्धि नष्ट नहीं हुई है, वे स्त्री के मोह-जाल में नहीं फँसते और फँस भी जाते है, तो उसकी असलियत को समझकर उसे त्याग देते हैं। सभी ज्ञानी पुरुष जानते हैं कि स्त्री महा गन्दी, अनेक दुःखों की खान और आत्मा को नरक में ले जाने वाली है। एक पाश्चात्य विद्वान भी कहते है—"सुन्दरी कामिनी आत्मा का दोजख, थैली की जहन्नुम और आँखों की जन्नत है*।" और भी किसी ने खूब कहा है—

भजन (राग सोरठा)

अनाड़ी मन ! नारी नरक का मूल ॥टेक॥
रंग रूप पर भया लुभाना, क्यों भूल गया हरिनाम दिवाना।
इस धन यौवन का नहिं ठिकाना, दो दिन में हो जाय धूल ॥१॥
कंचन भरे दो कलस वतावे, ताहि पकड़ आनन्द मनावे।
यह तो चमड़े की थैली हैं मूरख, जिन पै रह्यो तू फूल ॥२॥

* H beautiful woman is the hell of the soul, the purgatory of the purse and the paradise of the eyes.

जा मुख को तू चन्दा कर माने, थूक राल वामें लिपटाने ।
धिक-धिक-धिक तेरे या मुख पै, विष्टा में रह्यो तू भूल ॥३॥
फँसा भारी धोखा खाया, तन पर कामिनि के ललचाया ।
कहै कबीर आँख से देखा, यह तो माटी का स्थूल ॥४॥

क्रोध-शत्रु

स्त्री के कटाक्षवाणों से ही अपनी रक्षा कर लेने से मनुष्य त्रिलोक-विजयी नहीं हो सकता । इस भारी विजय के लिये उसे अपने ही शरीर में रहनेवाले गुप्त शत्रु 'क्रोध' को भी अपने अधीन करना परमावश्यक है; क्योंकि क्रोध मनुष्य के बल; बुद्धि और विवेक को सदा क्षीण करता है और उसकी मौत को सदा सिर पर रखता है । कहा है:—

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां देहस्थितो देहविनाशनाय ।
यथा स्थितः काष्ठगतो हि बह्निः स एव वह्निर्दहते च काष्ठम् ॥

मनुष्य के शरीर में छिपा हुआ क्रोध इस प्रकार देह को नष्ट कर देता है; जिस तरह काठ के भीतर छिपी हुई अग्नि, प्रज्वलित होने पर, काठ का नाश कर देती है ।

संसार में ऐसा कोई पुत्र चाण्डाल न होगा, जो अपनी जननी को ही खा जाय; पर यह चाण्डाल क्रोध जिस हृदय-भूमि-रूपी जननी से पैदा होता है, पहले उसे ही खाता है; दूसरों को पीछे । इसके सिवा, यह जिसमें रहता है, उसके धर्मज्ञान का नाश करता और उसे सदा दुःखी रखता है । तात्पर्य यह कि क्रोधी पुरुष धर्म-अधर्म को नहीं समझता । कहा है—

मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ।
लुब्धो भीरु स्त्वरायुक्तः कामुकश्च न धर्मवित् ॥

मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, लोभी, डरपोक, जल्दबाज, कामातुर, रोगार्त्त या शोकार्त्त—इनको धर्मज्ञान नहीं रहता । ऐसों के दिलों में दया-धर्म नहीं होता; इसलिये ये लोग सब तरह के दुष्कर्म कर सकते हैं । सब तरह के दुष्कर्म कर सकने की वजह से ये सदा दुःखी रहते हैं । कहा है—

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकित ।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ॥

ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, सदा असन्तुष्ट करने वाला, सदा कोप करने वाला, सदा वहम में डूबा रहने वाला और दूसरे के भाग्य-भरोसे जीने वाला—ये छह सदा दुःख भोगते है।

वाइबिल में लिखा है—"क्रोध मूर्खों की छाती में रहता है।" यह बहुत ठीक वात है। जो अज्ञानी होते है, जिन्हें संसार का अनुभव नहीं होता, जिन्हें शास्त्र-ज्ञान नही होता, जो महात्माओं की संगति नहीं करते, प्रायः उन्ही में क्रोध पाया जाता है। ज्ञानी और अनुभवी पुरुष काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मात्सर्य—इन छह वर्गों को त्यागे रहते हैं और ऐसे ही नवरत्न त्रिलोक विजयी हो सकते है।

विषयों की फाँसी

अब रही विषयों के लोभ-पाश में न फँसने की वात। सुनिये, विषयों का ध्यान ही आफत की जड़ है। विषयों का ध्यान करने वाले मनुष्य के मन में पहले विषयी से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति से इच्छा पैदा होती है। इच्छा से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से भ्रम होता है। भ्रम से स्मृति नष्ट होती है। स्मृति के नष्ट हो जाने से वुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि के नष्ट होने से मनुष्य बिल्कुल नष्ट हो जाता है। यही वात भगवान कृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय मे कही है। जब विषयों के ध्यान मात्र से यह गति होती है; तब विषयों के भोगने से क्या न होता होगा? ख्याल तो कीजिये।

असल मे विषयों का ध्यान ही पहिले किया जाता है। अगर मनुष्य विषयों का ध्यान ही न करे; तो विषयो में प्रीति क्यों हो—उनके भोगने की इच्छा क्यो हो? इच्छा न हो, तो मनुष्य वुद्धि खोकर नष्ट-भ्रष्ट क्यों हो?

अब यह सोचना चाहिये कि विषयों का ध्यान काहे से होता है? ध्यान मन से होता है। मन में ध्यान होने के बाद इन्द्रियाँ अपना काम करती है। अगर मन वश मे हो, तो इन्द्रियाँ कुछ न कर सकें। मन सारथी है और इन्द्रियाँ घोड़े है। घोड़े सारथी के वश में रहते है। वह उन्हें जिधर ले

जाता है, वे उधर ही जाते हैं। जो मनुष्य अपने मन को वश में कर लेता है, उसकी इन्द्रियाँ भी, मन के वश में होने के कारण, वश में हो जाती हैं। जिसका मन वश में नहीं, वह मन से भाँति-भाँति के विषयों का ध्यान करता हुआ नष्ट हो जाता है। इसलिये बुद्धिमान को चाहिये, कि अपने मन को वश मे करे, ताकि विषयों का ध्यान ही न हो। विषयों का ध्यान ही न होगा, तब भय क्या ? जिस मन में विषय-वासना नहीं, वही मन शुद्ध है; उसी मन की शोभा है। कहा हैः—

पंकैर्विना सरो भाति सभा खलजनैर्विना ।
कटुवर्णैर्विना काव्यं मानसं विषयैर्विना ॥

कीचड़-रहित तालाब की शोभा है; दुर्जन-रहित सभा की शोभा है; कठोर वर्ण-रहित काव्य की शोभा है और विषय-वासना-रहित मन की शोभा है।

सारा दारमदार मन के वश करने में ही है। जिसने अपना मन वश में कर लिया, उसने आत्मविजय कर ली। जिसने अपने तईं जीत लिया उसने जगत को जीत लिया। टामस कैम्प साहब कहते हैं—"जिसने अपने-आप पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, उसे अन्याय विपक्षियों के पराजित करने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ पेश न आयेंगी।" जे० जी० हार्डर महोदय कहते हैं—"सिंह को पराजित करने वाला वीर पुरुष है, संसार को परास्त करने वाला भी वीर है; पर जिसने अपने तईं पराजित किया है, वह उनसे भी बड़ा वीर है।" निश्चय ही बहादुरी अपने तईं जीतने में ही है; पर अपने तईं जीतना है बड़ा कठिन काम। मन को वश में करना लड़कों का खेल नहीं। अगर कोई हवा को वश में कर सकता है, तो मन को भी वश में कर सकता है। किसी कवि ने कहा हैः—

देखिवे को दौरे तो सटकि जाय काहो ओर,
सुनिवे को दौरे तो रसिक सिरताज है।
सूंघिवे को दौरे तो अघाय ना सुगन्धि करि,
खाइवे को दौरे तो न धापे महाराज है।
भोगिवे को दौरे तो तो तृपति हु न काहू होय,
हनुमत कहे याको नेकहू न लाज है।

काहू को न कह्यो करे, अपनी ही टेक धरे,
मन सो न कोऊ हम देख्यो दगाबाज है ॥

कबीर साहब कहते हैं:—

मन के मते न चालिये, मन का मता अनेक ।
जो मन पर असवार है, ते साधु कोई एक ॥
मन-पंछी जब लग उड़े, विषय-वासना माँहि ।
ज्ञान बाज की झपट में, तब लग आया नाँहि ॥

मन को वश में करने की तरकीब

मन केवल ज्ञान या वैराग्य से वश में होता है। जब मनुष्य को संसार की असारता मालूम हो जाती है और वह धन, यौवन प्रभृति की अनित्यता को जान जाता है, तब उसको वैराग्य होता है, यानी संसार से विरक्ति हो जाती है। उस समय मन फौरन वश में हो जाता है। हमें एक दृष्टान्त याद आया है। पाठक उसे पढ़ें और शिक्षा लाभ करें।

विषयों की असलियत

कोई राजकुमार सैर करता हुआ जा रहा था। उसने एक मकान पर किसी सेठ की कन्या को बाल सुखाते देख लिया। कन्या परम सुन्दरी, रतिमान-मर्दिनी और मुनिमनमोहिनी थी। देखते ही राजकुमार मुग्ध हो गया। घर में आकर पलँग पर पड़ा रहा और खाना-पीना सब त्याग दिया।

राजा को खबर हुई। शीघ्र ही राजा ने उसके पास जाकर पूछा—"पुत्र ! भोजन क्यों नहीं करते ? जो तुम्हारी इच्छा हो, वही किया जाय।" राजकुमार ने राजा से सेठ की कन्या के साथ शादी करा देने की प्रार्थना की। राजा ने फौरन सेठजी को बुलाया और उनसे कहा कि आप अपनी कन्या की शादी हमारे राजकुमार से कर दें। सेठजी ने कहा—"महाराज ! बड़ी खुशी की बात है; मेरा परम सौभाग्य है; पर मैं जरा कन्या से पूछ लूँ।"

सेठजी ने अपनी कन्या को यह माजरा कह सुनाया। कन्या ने कहा—"पिताजी, आप राजकुमार से कह आइये, कि मेरी लड़की आपसे सोमवार

को मिलेगी; आप खाना-पीना कीजिये।" सेठजी यह बात राजकुमार से कह आये। उधर कन्या ने किसी नौकर से जमालगोटा मँगाकर उसका जुलाब ले लिया। अब क्या था, दस्त-पर-दस्त होने लगे। जो दस्त होता, उसे वह एक सुन्दर पीतल की बाल्टी में रखवा, ऊपर से रेशमी कपड़ा ढकवा देती। इस तरह अनेक बाल्टियाँ तैयार हो गईं। सेठ की कन्या के गाल बैठ गये, चेहरा भूतनी का-सा हो गया। देखने से नफरत होती थी। एक काम उसने और भी किया। वह एक टूटी-सी चारपाई पर गूदड़े बिछवाकर लेट गई। गूदड़ों पर और अपने पहनने के कपड़ों पर उसने थोड़ा-सा पाखाना छिड़कवा लिया। जब इस तरह सब काम हो गया, तब उसने सेठजी से कहा—"पिताजी! आज का वादा है। आप राजकुमार को लिवा लाइये।"

सेठजी राजकुमार के पास पहुँचे और उनसे अपने घर चलने की प्रार्थना की। राजकुमार तो तैयार ही बैठे थे, फौरन साथ हो लिये। घर में घुसते ही बदबू के मारे उनका दिमाग सड़ने लगा; पर उन्हें तो कन्या से प्रेम था, इसलिए नाक को रूमाल से दबाकर उसके पलँग के पास पहुँचे। कन्या ने पड़े-पड़े ही कहा—"राजकुमार! अगर आपको मुझसे मुहब्बत है, तो मैं तो आपकी सेवा में मौजूद हूँ। आपकी इच्छा हो सो कीजिये और अगर आपको मेरी खूबसूरती से मुहब्बत है, तो वह उन बाल्टियों से भरी रखी है।" राजकुमार कुछ मूढ़ था। उसने पीतल की चमकदार बाल्टियों पर रेशमी कपड़े ढके देख मन में समझा, कि शायद खूबसूरती ही ढकी हो। उसने अपने ही हाथ से जो रेशमी रूमाल हटाया, तो सड़ा हुआ पाखाना नजर आया। देखते ही राजकुमार नाक दबाकर वहाँ से भाग पड़ा। अब उसे होश हो गया। संसार की और खासकर विषयों की असलियत उसे मालूम हो गई। उसने कहा—"ओह! संसार में कुछ भी नहीं है; जैसा यह दीखता है वैसा नहीं है। उसी समय उसे संसार से विरक्ति हो गई। वह राज को परित्याग कर, अंग में भस्म लगा, मृगछाला और तूम्बी ले, वन को चला गया और परमात्मा की भक्ति में लीन हो गया।

स्त्री ऊपर से ही सुन्दरी मालूम होती है—भीतर से वैसी नहीं है। स्त्री के भीतर क्या है? राध, लोहू, थूक, खखार और मल-मूत्र इत्यादि। जब तक

मनुष्य असलियत की तरफ ध्यान नहीं देता, धोखा खाता है। परीक्षा करने से ही मालूम होता है—संसार जैसा चमकदार दीखता है, वैसा नहीं है *। संसार केले के खम्भ या प्याज की तरह है। उन्हें जितना ही छीलते जाइयेगा, केवल छिलके-ही-छिलके निकलते आयेंगे।

सारांश—हरगिज न भूलिये कि स्त्री अमृत-सी दीखने पर भी विष है और बेटे-पोते-दोहिते प्रभृति मित्रवत् दीखने पर भी स्वार्थी शत्रु हैं। सब जीते जी ही मुहब्बत है। मरते ही ये सब आपसे डरने लगेंगे और मरने के बाद आपको याद भी न करेंगे। इसलिये अगर चिरस्थाई कल्याण चाहते हो, दुःखों से पीछा छुड़ाना चाहते हो, जन्म-मरण के बन्धन से बचना चाहते हो, अनन्त सुख भोगने की इच्छा रखते हो; तो स्त्री-जाति से घृणा करो; क्रोध को जीतो, सब दुःखों के मूल अभिमान को त्यागो *; अपने मन को वैराग्य के वश में करके विशरूपी विषयों के फन्दे में फँसने से बचो और आत्मज्ञान लाभ करो; यानी अपने तईं जानो*। जब आप इन सब कामों को कर सकेंगे, तब आप निश्चय त्रिलोक-विजयी हो सकेंगे और परम पद पा सकेंगे।

हमारे पाठकों के चित्त पर योगिराज महाराज भर्तृहरि के अमूल्य उपदेशों का असर पूर्ण रूप से हो जाय, इसलिये हम एक भजन भी नीचे देते हैं:—

मूरख छाँड़ वृथा अभिमान ॥टेक॥
औसर बीत चल्यो है तेरो, तू दो दिन को मेहमान।
भूप अनेक भये पृथ्वी पर, रूप तेज बल खान।
कौन बच्यो या काल बली से, मिट गये नाम निशान ॥१॥

---

* All is not gold that glitters,
That is not in the mirror which you see in the mirror.

* Egoism is the source and summary of all faults and miseries whatsoever.—Carlyle.

Earthly pride is like a passing flower that springs to fall and blossoms to die—Kirke White.

* From heaven came down the precepte—"Know thyself."
—Ino

धवल धाम धन गज रथ सेना, नारी चन्द्र समान ।
अन्त समय सबही को तजके, जाय बसै समसान ।।२।।
तज सतसंग भ्रमत विषयन में, जा विधि मर्घट खान ।
क्षण भर बैठ न सुमिरन कीनो, जासों होत कल्यान ।।३।।
रे मन मूढ़ ! अन्त मत भटके, मेरो कह्यो अब मान ।
"नारायण" ब्रजराज कुँवर से, वेग करो पहचान ।।४।।

इतना बहुत है; जो समझने वाले हैं, वे समझकर सचेत हो जायें।

तिय कटाक्ष शर विधत नहिं, दहत न कोप-कृशानु ।
लोभ-पाश खेंचत न ते, तिहुँपुर वस किये जानु ।।१०७।।

107. The wise man, whom the arrows of beautiful women's glances do not affect, whose heart is not disturbed by the heat of anger and who does not fall into the snare of evil passions conquers all the three worlds.



एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा ।।१०८।।

जिस तरह एक ही तेजस्वी सूर्य सारे जगत को प्रकाशित करता है। उसी तरह एक ही शूरवीर सारी पृथ्वी, पाँव तले दबाकर, अपने वश में कर लेता है ।।१०८।।

वड़ो साहसी होत जो, काम करत झुकझूम ।
शूरवीर अरु सूर यह, लाँघ जात रणभूमि ।।१०८।।

108 A single brave man can subdue the whole world as the Sun spreads his shining light every-where



वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥१०९॥

जिस पुरुष में समस्त जगत को मोहने वाला शील है, उसके लिये अग्नि जल-सी जान पड़ती है; समुद्र छोटी नदी-सा दीखता है; सुमेरु पर्वत छोटी-सी शिला-सा मालूम होता है; सिंह शीघ्र ही उसके आगे हिरन-सा हो जाता है; सर्प उसके लिये फूलों की माला-सा बन जाता है और विष अमृत के गुणों वाला हो जाता है ॥१०९॥

महात्माओं ने कहा:—

शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनों की खानि ।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आनि ॥
ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक ।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवन्त कोई एक ॥
शीलवन्त निर्मल दशा, पा परिसै चहुँ खूँट ।
कहै कबीर ता दास की, आस करै बैकुंठ ॥

महाकवि दाग़ ने भी कहा है:—

बशर ने खाक पाया, लाल पाया या गुहर पाया ।
मिज़ाज अच्छा अगर पाया, तो सब कुछ उसने भर पाया ॥

सच है, जिसका स्वभाव अच्छा है, जिसके स्वभाव में शील है, उसे संसार

प्यार करता है और सभी प्राणी उसके कदमों में गिरते है। पर खेद का विषय है कि सच्चे शीलवान विरले ही होते है।

अग्नि होत जल रूप, सिन्धु लघु नदी दिखावत।
होत सुमेरहु सेर, सिंह को हरिन जनावत॥
पुहुपमाल-सम व्याल, होत विषहु अमृत-सम।
बन हू नगर समान, होत सब भाँति अनूपम॥
सब शत्रु आय पाँयन परत, मित्रहू करत प्रसन्न चित।
जिनके सुपुन्य प्रचार शुभ, तिनके मंगल मोद नित॥१०९॥

109. Fire becomes (as cold) as water; the ocean itself at once becomes like a little stream; the Meru mountain a small becomesrock; a lion immediately become (as timid) as a deer, a serpant becomes like a garland of flowers and poisonous juice becomes like a rain of nectar to him in whose possession the most pleasant thing in the whole world, i. e. good mnnners are found.



लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्।
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्॥११०॥

सत्यव्रत तेजस्वी पुरुष अपनी प्रतिज्ञा भंग करने की अपेक्षा अपना प्राणत्याग करना अच्छा समझते हैं; क्योंकि प्रतिज्ञा लज्जा प्रभृति गुणों के समूह की जननी और अपनी जननी की तरह शुद्ध हृदय और स्वाधीन रहने वाली है॥११०॥

प्रतिज्ञा-पालन मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। जो प्रतिज्ञा-पालन नहीं करते, वे मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं। लोग अपने स्वार्थ के लिये प्रतिज्ञा भंग कर बैठते हैं, यह बहुत ही बुरी बात है। मनुष्य को अपने जीवन की अपेक्षा अपने शब्दों का अधिक ध्यान रखना चाहिये। जब कारथेनियन लोगों ने रेग्यूलस नामक मनुष्य को कैद किया, तब उन्होंने उसे इस प्रतिज्ञा पर छोड़ा कि वह जाकर रोमनों से सुलह करा दे और यदि उसके भाग्य से वे सुलह न करें तो वह स्वयं कैदी बनकर लौट आये। वह प्रतिज्ञा करके चला गया। रोमन लोगों ने उससे कहा कि तू अब लौटकर न जा; क्योंकि तू स्वयं प्रतिज्ञा में नहीं बँधा है। उन्होंने जोर-जबरदस्ती से तुझसे वैसी प्रतिज्ञा करा ली है। रेग्यूलस ने कहा—"तुम सब मुझे क्षुद्र बनाना चाहते हो। मैं जानता हूँ, मेरे लौटकर जाते ही वे मुझे मार डालेंगे। पर प्रतिज्ञा पूरी न करके—झूठा और दगाबाज बनने की अपेक्षा मरना हजार गुना अच्छा है। मैंने वापस लौट जाने की प्रतिज्ञा की है, इसलिये जाऊँगा और जरूर जाऊँगा।" निदान वह कारथेज गया और वहाँ उसे प्राणदण्ड दिया गया। धन्य वीर! धन्य!!

महाराज हरिश्चन्द्र ने अपनी प्रतिज्ञा-रक्षा के लिये ही अपना राज-पाट गँवाया, रानी और पुत्र का वियोग सहा। दोनों स्त्री-पुरुषों ने पराई चाकरी की। यहाँ तक कि भंगी का काम किया; पर अपनी प्रतिज्ञा रखी। सत्यपालन

जो जरा देर में ही मिट जाती है। महत् पुरुष प्राण-त्याग कर देते है; पर वचन भंग नहीं करते। सूरज पच्छिम में उदय हो तो हो, सुमेरु चलायमान हो तो हो, अग्नि शीतल हो तो हो, कमल पर्वतों पर पैदा हो तो हो, चन्द्रमा सूर्य की तरह अग्नि उगले तो उगले, किन्तु सत्पुरुषों की प्रतिज्ञा पूरी हुए बिना नहीं रह सकती।

कवियों ने कहा है—

रनसन्मुख पग सूर के, वचन कहें ते सन्त।
निकस न पीछे होत हैं, ज्यों गयन्द के दन्त॥
बड़े वचन पलटें नहीं, कहि निरवाहें धीर।
कियौ विभीखन लंकपति, पाय विजय रघुवीर॥

बातहि से दशरथ मरे, बातहि राम फिरे बन जाई।
बातहि से हरिचन्द सहे दुख, बातहि राज्य दियो मुनिराई॥
रे मन! बात विचारि सदा कहु, बात की गात में राख सचाई।
बात ठिकान नहीं जिनको, तिन बाप ठिकान न जानेहु भाई॥

और भी—

हस्तिदन्तसमानं हि निःसृतं महतां वचः।
कूर्मग्रीवेव नीचानांयु नरायाति याति च॥

बड़ों के वाक्य हाथी-दाँत के समान होते है; यानी निकले सो निकले; निकलकर फिर भीतर नहीं जाते। पर नीचों के वाक्य कछुए की गर्दन के समान होते है, जो कभी भीतर जाती है और कभी बाहर आती है।

पण्डित-शिरोमणि जगन्नाथ महोदय भी कहते हैं—

विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव॥

विद्वानों के मुँह से सहसा कोई बात नहीं निकलती और यदि निकली, तो हाथी के दाँतो की तरह निकलकर भीतर फिर नहीं जाती।

मनुष्य मात्र को, यदि वह मनुष्यत्व का दावा करे, प्रतिज्ञा-रक्षा के मुकाबले मे, प्राणों को भी तुच्छ समझना चाहिये ।

मैय्या लज्जा गुणन की, निज मैय्या सम जान ।
तेजवन्त तन को तजत, याको तजत न जान ॥
याको तजत न जान, सत्यव्रत वारेहु नर ।
करत प्राण को त्याग, तजत नहिं नेक वचनवर ॥
शरत अपनी राखि रह्यो, वह दशरथ रैया ।
राखो वल हरिचन्द, टेक यह यश की मैया ॥११०॥

110. Honourable men, true to their word, would rather give up their lives than break their vows which produce in their hearts a host of good qualities as modesty etc., and which are to them like a mother extremely pure-hearted and faithful.



नीति-शतक का श्लोकानुक्रम